प्रभु मंदिर के द्वार पर

प्रवचन-क्रम

1. प्रभु मंदिर के द्वार पर...2
2. समग्रता है द्वार...17
3. प्रवाह शीलता है द्वार..32
4. तुलना-रहितता है द्वार..45
5. ध्यान है द्वार...61
6. साक्षीभाव है द्वार...74
7. स्वयं के चित्त के प्रति जागरण...88
8. स्वयं की खोज..100

प्रभु मंदिर के द्वार पर पहला प्रवचन

प्रभु मंदिर के द्वार पर

"प्रभु मंदिर के द्वार पर" इस विषय पर कुछ भी कहने के पहले प्रभु मंदिर का द्वार एक बहुत अदभुत द्वार है यह समझ लेना जरूरी है। वह कोई साधारण द्वार नहीं। और न ही जिन्हें हम मंदिर कहते हैं उन मंदिरों का द्वार है। प्रभु के नाम से जो मंदिर बने हैं उनमें कोई भी मंदिर प्रभु का नहीं है। हिंदू के हैं मंदिर, मुसलमान के हैं, ईसाई के हैं, जैन के हैं। और जहां तक कोई विशेषण है वहां तक प्रभु से कोई संबंध नहीं है। प्रभु का मंदिर भी है, लेकिन आदमियों के द्वारा बनाए गए मंदिरों के कारण वह मंदिर दिखाई नहीं पड़ता है। धार्मिकों के कारण धर्म को समझना ही मुश्किल हो गया है। और जब तक पृथ्वी पर हिंदू होंगे, मुसलमान होंगे, ईसाई होंगे, तब तक धार्मिक आदमी का जन्म भी नहीं हो सकता है।
पृथ्वी को एक पागलखाना बना दिया है तथाकथित धार्मिक लोगों ने। और इन धार्मिक लोगों के कारण ही अधार्मिक आदमी पैदा हुआ है। अधार्मिक आदमी धार्मिक आदमी की प्रतिक्रिया है, रिएक्शन है। जिस दिन ये तथाकथित धार्मिक आदमी विदा हो जाएंगे, उसी दिन अधार्मिक आदमी की भी मृत्यु हो जाएगी। इन झूठे धार्मिकों के कारण इनके विरोध में, इनके प्रतिक्रोध के कारण, आक्रोश के कारण एक अधार्मिक हवा पैदा हो गई है। दुनिया में एक भी नास्तिक नहीं होगा अगर तथाकथित आस्तिक विदा हो जाएं। नास्तिकता आस्तिकों की छाया है। और जिस दिन न आस्तिक होंगे, न नास्तिक होंगे, उस दिन धर्म की संभावना हो सकती है। मैंने कहा, तथाकथित धार्मिक लोगों ने, तथाकथित प्रभु के मंदिरों ने, मस्जिदों ने, गुरुद्वारों ने, गिरजों ने जमीन को एक पागलखाना, एक मैडहाउस बना दिया है।
एक छोटी सी कहानी मुझे स्मरण आती है।
हिंदुस्तान और पाकिस्तान का बंटवारा हो रहा है। बंटवारा ही पागलपन का लक्षण है। जिस दिन मनुष्य की बुद्धि ठीक और संयत होगी, दुनिया एक होगी, बंटी हुई नहीं होगी। बंटा हुआ मन है, खंड-खंड मन है, इसलिए पृथ्वी को भी खंड-खंड करना पड़ता है। पृथ्वी तो अखंड है। आदमी का चित्त खंडित है, इसलिए पृथ्वी को भी खंडित कर लेता है। हिंदुस्तान-पाकिस्तान का बंटवारा हो रहा है। एक पाकिस्तान... हिंदू है या मुसलमान क्योंकि वे पागल कहते हैं कि हम सिर्फ आदमी हैं हमें पता ही नहीं कि हम हिंदू हैं या मुसलमान हैं। अधिकारी बड़े परेशान हैं, वे उन्हें समझाते हैं कि तुम रहोगे तो यहीं लेकिन तुम यह बता दो, तुम्हें हिंदुस्तान में जाना है कि पाकिस्तान में जाना है। वे पागल कहते हैं, बड़ी अजीब बातें कर रहे हैं आप, हम तो सोचते थे हम पागल अजीब बातें करते हैं। आप अजीब बातें कर रहे हैं, कहते हैं रहोगे यहीं, और यह बता दो कहां जाना है हिंदुस्तान में या पाकिस्तान में!
जब रहेंगे यहीं तो जाने का सवाल क्या है? और जब जाना ही नहीं है, रहना यहीं है, तो हिंदुस्तान-पाकिस्तान से हमें मतलब क्या है? हम जहां हैं हम ठीक हैं।
बहुत समझाया उन्हें, लेकिन उन पागलों की समझ में नहीं आया। फिर उनसे पूछा कि तुम हिंदू हो या मुसलमान, यह बता दो? --तो हिंदू हिंदुस्तान चले जाएं; हिंदू पागल हिंदुस्तान चले जाएं, मुसलमान पागल पाकिस्तान चले जाएं। तुम हिंदू हो या मुसलमान?
उन्होंने कहाः यह तो हमें पता नहीं, हम ज्यादा से ज्यादा आदमी हैं। और अगर बहुत ही कोशिश करिए तो हम कह सकते हैं, हम पागल हैं। लेकिन हिंदू- मुसलमान का हमें पता ही नहीं।
फिर कोई रास्ता न था, तो अधिकारियों ने आधे पागलखाने में रेखा खींच दी, आधे कमरे पाकिस्तान में चले गए, आधे हिंदुस्तान में। पागल बंट गए आधे- आधे। बीच से दीवाल उठा दी। वे पागल अब भी दीवाल पर चढ़ जाते हैं और एक-दूसरे से पूछते हैं, बड़े आश्चर्य की बात है, हम वहीं के वहीं हैं, कोई कहीं नहीं गया, लेकिन तुम पाकिस्तान में चले गए, हम हिंदुस्तान में चले गए। यह क्या

हो गया है? कभी-कभी वे पागल दीवाल पर एक-दूसरे से लड़ते भी हैं, उनमें जो बहुत बुद्धिमान हैं वे समझाते भी हैं कि हमें हिंदू से क्या मतलब? हमें मुसलमान से क्या मतलब? हम तो सिर्फ पागल हैं। उन पागलों की बातें कोई सुनेगा तो ख्याल में आएगा, वे पागल शायद हमसे ज्यादा बुद्धिमान हैं। हम उनसे भी ज्यादा पागल हैं।
परमात्मा के नाम पर भी आदमी ने पागलपन ईजाद किया है। परमात्मा के नाम
पर भी जो पांच हजार वर्षों में हुआ है, अगर उसका हिसाब लगाया जाए, तो हमें शक होगा, ये परमात्मा के द्वार पर प्रार्थनाएं हो रहीं थी, या शैतान के द्वार पर? ये किसके द्वार पर हो रही थीं?
मैंने सुना है, एक फकीर रात सपने में शैतान को देखा। शैतान सुस्त पड़ा हुआ सोया है। फकीर ने पूछाः शैतान! तुम और सुस्त पड़े हुए हो? हमने तो यह सुना है कि शैतान चौबीस घंटे शैतानी में लगा रहता है। तुम इतनी शांति से बैठे हुए हो, तुम्हें हो क्या गया? तुम्हें अपना काम नहीं करना है, लोगों को गुमराह नहीं करना है? लोगों को रास्ता नहीं भटकाना है? तुम जितनी देर चुप बैठोगे उतनी देर लोग ठीक रास्ते पर चले जाएंगे। तुम जाओ अपने काम में लगो। उस शैतान ने कहाः अब मुझे काम की कोई जरूरत नहीं। मेरे काम को तथाकथित भगवान के भक्तों ने सम्हाल लिया है--पुरोहित, पंडे, पुजारी, वे मेरा काम कर रहे हैं। मैं तो अब विश्राम करता हूं। अब मुझे कोई भी जरूरत नहीं है। तुम जिन्हें भगवान के मंदिर कहते हो, वे सब मेरे हो गए हैं। क्योंकि मेरे एजेंट वहां पर--पुजारी, पंडे और पुरोहित होकर बैठे हुए हैं। प्रभु मंदिर के द्वार को समझने के लिए पहले तो यह समझ लेना जरूरी है
कि जिन्हें हम प्रभु के मंदिर कहते हैं, वे प्रभु के मंदिर नहीं हैं। आदमी का बनाया हुआ कोई मंदिर प्रभु का मंदिर नहीं हो सकता। आदमी खुद ही प्रभु का बनाया हुआ एक मंदिर है। आदमी का बनाया हुआ कोई मंदिर प्रभु का मंदिर नहीं हो सकता। आदमी खुद ही प्रभु का बनाया हुआ मंदिर है। और जो हमारे चारों तरफ निर्मित है सहज, वह जो सृष्टि का विस्तार है, वह जो जीवन है, वह जो अस्तित्व है, वह जो एक्झिस्टेंस है, वही प्रभु का मंदिर है। लेकिन आदमी उस मंदिर के ऊपर मंदिर बनाता है। और इन मंदिरों को इतना महत्व देता है कि इन मंदिर की दीवालों में वह जो असली मंदिर है, छिप जाता है। सब छिप गया है, कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। और एक-एक आदमी अंधा है, धर्म के नाम पर। धर्म को खोलनी चाहिए आंख, और धर्म बनाता है अंधा, इसलिए प्रभु की चर्चा बहुत चलती है, लेकिन प्रभु से हमारा कोई संबंध नहीं हो पाता है।
प्रभु का मंदिर वही है जो है चारों तरफ। अब और कोई प्रभु-मंदिर बनाने
की जरूरत नहीं है। और आदमी बना सकेगा प्रभु का मंदिर? आदमी तो प्रभु को भी बनाने की कोशिश में लगा हुआ है, मूर्तियां ढाली जा रही हैं भगवान की। मूर्तियां बनाई जा रही हैं, रंग-रोगन किए जा रहे हैं। फिर आदमी उन्हीं मूर्तियों के सामने, खुद की बनाई हुई मूर्तियों के सामने हाथ जोड़े खड़ा है। घुटने टेक कर खड़ा है। अगर किसी दूर ग्रह पर कोई भी देखने वाला होगा तो बहुत हंसता होगा। खुद ही मूर्तियां बनाते हैं लोग, फिर उन्हीं के सामने हाथ जोड़ कर खड़े हो जाते हैं। फिर घुटने टेक लेते हैं। और मूर्तियां भी किसकी बनाते हैं, अपनी ही मूर्तियां बनाते हैं। अगर घोड़े अपने भगवान की मूर्ति बनाएं, तो घोड़ों जैसी बनाएंगे। और गधे अगर बनाएं, तो गधे जैसी बनाएंगे। और आदमी, आदमी जैसी बनाता है। अफ्रीका में जो मूर्ति बनती है उसकी नाक चपटी होती है। हिंदुस्तान में जो मूर्ति बनती है उसकी नाक लंबी होती है। पश्चिम में जो मूर्ति बनेगी वह गोरी होगी, पूरब में जो मूर्ति बनेगी वह सांवली होगी। हम अपनी शक्ल में ही तो मूर्तियां बनाते हैं। हम अपनी ही तो मूर्तियां बनाते हैं। भगवान के नाम से आदमी अपनी ही पूजा कर रहा है। और खुद ही पूजा कर रहा है। और फिर पूछता है भगवान कहां है? जब नहीं पाता इन मूर्तियों में, तो चिल्लाता है और कहता है भगवान है ही नहीं?
ये दो बातें समझ लेना है। एक तो खुद ही भगवान बनाता है, यह पागलपन, फिर खुद के बनाए हुए भगवान में जब भगवान नहीं मिलता, तो कहता है, भगवान नहीं है। और भगवान को न कभी खोजता, न भगवान से कभी संबंधित होता, अपनी ही मूर्तियों की या तो पूजा करता है या अपनी ही मूर्तियों का खंडन करता है।

और पूजा करने वाले और मूर्ति का खंडन करने वाले, दोनों सदा समान हैं। क्योंकि दोनों की निष्ठा मूर्ति में है। हिंदू मूर्ति पूजता है, मुसलमान मूर्ति फोड़ता है। लेकिन दोनों मूर्ति पूजक हैं। दोनों की दृष्टि मूर्ति पर लगी है, जैसे मूर्ति में कुछ है। न तो पूजा करने योग्य है, न तोड़ने योग्य है, मूर्ति में कुछ भी नहीं है। और जहां है वहां हमारी कोई दृष्टि ही नहीं है।
तो पहले तो आज की सुबह हम यह समझ लें कि भगवान का मंदिर कहां-कहां नहीं है, तो शायद हम समझ पाएं कि भगवान का मंदिर कहां हो सकता है? कहां-कहां उसका द्वार नहीं है, यह अगर हम जान लें तो शायद हम खोज सकें कि कहां उसका द्वार है? इतनी जगह नकली द्वार बने हुए हैं कि बहुत मुश्किल हो गया है, उसके द्वार को खोजना। और जब भी कोई खोजने निकलता है, जल्दी से कोई नकली द्वार मिल जाता है, नकली द्वार के दुकानदार मिल जाते हैं। और उस आदमी को नकली द्वार में प्रवेश करवा लेते हैं। फिर वह भटकता रहे उस नकली द्वार में, उसे कभी भी असली द्वार का कोई पता नहीं चल सकता है।
पहली बात, नकली द्वार... । जितने भी नकली द्वार हैं, उन सबका मूल आधार
है विश्वास, वे सब विश्वास पर खड़े हैं। इसलिए विश्वास के द्वार पर जो भी दस्तक देगा, वह अंधकार में उतर जाएगा, अज्ञान में उतर जाएगा, परमात्मा तक नहीं पहुंच सकता है। और सारे तथाकथित धर्मों ने यही समझाया है कि विश्वास करो।
मैंने सुना है, एक अदभुत आदमी था, मुल्ला नसरुद्दीन। वह एक दिन दोपहर
को एक वृक्ष पर चढ़ कर कुछ पत्तियां काट रहा है, कुछ शाखाएं काट रहा है। लेकिन जिस शाखा पर बैठा है उसी को काट रहा है। नीचे से एक आदमी निकला और उसने चिल्लाया कि मुल्ला यह क्या करते हो? पागल हो गए हो? जिस शाखा पर बैठे हो उसी को काटते हो--गिरोगे, मरोगे! मुल्ला ने कहाः अपने रास्ते जाओ। मैं किसी पर कभी विश्वास नहीं करता। मैं अपनी बुद्धि पर विश्वास करता हूं। और मुल्ला शाखा को काटते रहे। फिर शाखा टूटी और मुल्ला जमीन पर गिरे। चोट खाई तो ख्याल आया कि गलती हो गई। जो उसने कहा था, उस पर विश्वास करना चाहिए था। वह आदमी बड़ा ज्ञानी था। वह आदमी भविष्य का जानकार था, तब तो उसने बता दिया। कि अगर काटते रहोगे तो गिरोगे। भविष्य की घटना पहले बता दी, कोई ज्योतिषी था मालूम होता है।
मुल्ला भागे उसके पीछे, उसे रास्ते में पकड़ा और पैर पकड़ लिए और कहा कि मैं बड़ा अभागा हूं। कितना महान ज्योतिषी नीचे से गुजरता था, उसने इतनी बढ़िया बात कही, भविष्य की बात बताई, मैंने नहीं मानी। अब तो मैं तुमसे कुछ और भी पूछने आया हूं, तुम जो भी कहोगे मैं मान लूंगा।
उस आदमी ने कहाः और मैं कुछ नहीं जानता हूं, न मैं कोई ज्योतिषी हूं। न इसका भविष्य से कोई संबंध है, यह तो सीधी विचार की बात थी, कि जिस शाखा पर बैठ कर काटते हो... ।
मुल्ला ने कहाः विचार-विचार की बात मत करो, मैंने विचार करके देख लिया
और नुकसान उठाया। मैं जमीन पर गिर पड़ा, पैर टूट गए। अब तो मैं विश्वास करूंगा। तुम मुझे यह और बता दो कि मेरी मृत्यु कब आएगी?
उस आदमी ने कहाः पागल हो गए हो, मुझे कुछ भी पता नहीं, मैं कोई ज्योतिषी नहीं। लेकिन जितना उसने बचना चाहा, मुल्ला ने समझा कि वह आदमी छिपाना चाहता है। अब मुल्ला तो नासमझ थे ही, नहीं तो उस शाखा को न काटते जिस पर बैठे थे। वही नासमझ आदमी अब इसको पकड़ लिया। और जोर से कहने लगा कि मैं जाने न दूंगा जब तक यह न बताओगे कि मेरी मृत्यु कब है?
आखिर उस आदमी को क्रोध आ गया, और उसने कहा कि अभी मर जाओगे, अभी मर जाओगे। अब मुझे, मेरा... मेरा पीछा छोड़ो। मुल्ला ने सुना, अभी मर जाओगे! मुल्ला ने कहा कि जब अभी मर जाओगे, यह ज्योतिषी ने कहा, तो मर जाना जरूरी है। मुल्ला फौरन गिर पड़े और मर गए। चार लोगों में उस आदमी को भी उनकी अरथी में साथ देना पड़ा और वह आदमी भी हैरान हुआ कि बड़ी आश्चर्य की बात है! चारों आदमी अरथी लेकर चले, चौरस्ते पर पहुंचे। एक रास्ता मरघट को बाएं की तरफ से जाता था, एक दाएं की तरफ से। वे सब सोचने लगे कि बाएं की तरफ से जल्दी पहुंचेंगे कि दाएं की तरफ से? मुल्ला ने सिर उठाया और कहा कि मैं बता सकता

था, लेकिन चूंकि मैं मर गया हूं, इसलिए अब मैं कुछ भी नहीं बोल सकता। वैसे जब मैं जिंदा था तो मैं बाएं की तरफ से जाता था, वह रास्ता करीब का है। उन्होंने अरथी नीचे पटक दी कि मुल्ला तुम पागल हो? मुल्ला ने कहाः पहले एक दफा विचार करके धोखा खा चुका, अब तो मैंने विश्वास कर लिया है कि मैं मर गया हूं।
मुल्ला ने न तो पहली दफा विचार किया था, मुल्ला पहली दफे भी अंधा था बिना विचार किए। क्योंकि विचार करता तो उसी शाखा को न काटता जिस पर बैठा हुआ था। पहली दफा विचार नहीं किया था, वह अविचार था, उस अविचार से नुकसान उठाया था। नुकसान उठाने के डर से अब उसने दूसरा अविचार किया, विश्वास किया, अब वह विश्वास करके जिंदा जी मरने की कोशिश कर रहा है। आदमी ने अविचार से नुकसान उठाया है, यह सच है। और जो आदमी अविचार में जीएगा, वह खतरों में जाएगा। अविचार के कारण कुछ लोग उसका शोषण करते हैं, और उससे कहते हैं कि तुम विश्वास करो! अविचार भी खतरनाक है। जो आदमी नहीं सोचता, वह भटक जाता है। और जो आदमी दूसरों की सोच को मान लेता है, वह भी भटक जाता है। अपनी सोच चाहिए, अपना विचार चाहिए। अपने विचार के रास्ते के अतिरिक्त कोई कभी परमात्मा के द्वार पर नहीं पहुंचता है। और हम दो काम करते हैं, या तो विचार ही नहीं करेंगे, और अंधे की तरह जीएंगे। और या फिर विश्वास करेंगे, और फिर अंधे की तरह जीएंगे। लेकिन आंख हम कभी न खोलेंगे।
दुनिया अविचार में रही है, और उस अविचारपूर्ण दुनिया को यह बताया जा सकता है कि तुम अविचार के कारण कष्ट भोग रहे हो। आओ हम तुम्हें विचार देते हैं। विश्वास का अर्थ हैः दूसरे के द्वारा दिया गया विचार। और जो विचार दूसरे के लिए दिया जाता है, दूसरे के द्वारा दिया जाता है वह कभी किसी व्यक्ति की निज आत्मा को जाग्रत करने वाला नहीं होता, सुलाने वाला होता है। हम तो उससे ही जागते हैं, जो हम सोचते हैं। हम तो उससे ही उठते हैं जो हमारे भीतर मंथन होता है। लेकिन विश्वास ने मनुष्यों के भीतर मंथन की संभावना बंद कर दी है। और सिखाया जा रहा है कि श्रद्धा करो, विश्वास करो, सोचो मत, दूसरा जो कहता है उसे मान लो। कोई तीर्थंकर कहता है उसे मान लो, कोई पैगंबर कहता है उसे मान लो, कोई महात्मा कहता है उसे मान लो, कोई ईश्वर का पुत्र कहता है उसे मान लो, लेकिन तुम मत सोचना। न तुम तीर्थंकर हो, न तुम भगवान हो, न तुम ईश्वर के पुत्र हो। और कुछ लोगों ने, तीर्थंकरों ने, भगवान के पुत्रों ने, पैगंबरों ने अवतार होने का ठेका ले रखा है! और ये सारे लोग क्या हैं? अगर एक भी आदमी तीर्थंकर हुआ है दुनिया में तो सब आदमी तीर्थंकर हैं, चाहे सोए हुए हों, चाहे जागे हुए, यह फर्क हो सकता है। अगर एक आदमी भी दुनिया में ईश्वर का अवतार हुआ है, तो सब आदमी ईश्वर के अवतार हैं, चाहे कोई जागा हुआ हो, चाहे कोई सोया हुआ हो। अगर एक आदमी भी ईश्वर का पुत्र है, तो सभी आदमी ईश्वर के पुत्र हैं। लेकिन यह सिखाया जा रहा है कि कोई ईश्वर है, कोई ईश्वर का पुत्र है, कोई अवतार है, कोई तीर्थंकर है। और सबका काम क्या है, सबका काम है, आंख बंद करके उसे मानो।
सबके भीतर परमात्मा नहीं है, सबके भीतर आंख बंद करने की आवश्यकता है। अगर परमात्मा सबके भीतर है तो सबकी आंख खुली हुई होनी चाहिए। और अगर परमात्मा सबके भीतर है, तो सबके भीतर पूजा का स्थल है। और तब किसी की पूजा अनुचित है। तब किसी की भी पूजा का आग्रह शोषण है। तब किसी भी पूजा का अड्डा बनाना आदमी को भटकाना और भरमाना है। आदमी पूज्य है, यह तो समझ में आ सकता है, लेकिन कोई आदमी पूज्य है, यह खतरनाक है। मनुष्यता पूज्य है, जीवन पूज्य है, यह तो समझ में आ सकता है, लेकिन कोई जीवन का एक रूप पूज्य बनाना और सारे रूपों को अपूज्य कर देना, और सारे रूपों को कहना कि उनका काम सिर्फ विश्वास है, अंधे होकर मान लेना है, अत्यंत खतरनाक है। मनुष्य की चेतना के विकास में बड़ी से बड़ी बाधा जो बन सकती है वह इस तरह के विश्वास से बन सकती है। और आज तक के सारे धर्मों ने आदमी के भीतर विचार जगाने की नहीं विश्वास जगाने की कोशिश की है। लेकिन क्यों? असल में जिनको भी नेतृत्व करना हो, चाहे वे धार्मिक लोग हों और चाहे राजनैतिक लोग हों, जिनको भी नेतृत्व करना हो वे दूसरों में अंधापन जगाए बिना नेतृत्व नहीं कर सकते।

नेता दूसरों के अंधेपन पर जीता है। नेता दूसरों के अंधेपन से भोजन पाता है। जितने ज्यादा अंधे लोग होंगे, उतना बड़ा नेता हो सकता है कोई। जितने ज्यादा अंधे लोग होंगे, उतने ज्यादा नेता होंगे। जितनी खुली आंखों के लोग होंगे, नेता विदा हो जाएगा, धर्मगुरु भी विदा हो जाएगा, राजगुरु भी विदा हो जाएगा, राजनैतिक नेता भी विदा होंगे, सामाजिक नेता भी विदा होंगे। एक ऐसी दुनिया चाहिए जहां मनुष्य अपना नेतृत्व स्वयं करने में समर्थ
हो और कोई उसका नेता न हो। लेकिन नेताओं को बड़ा दुख और पीड़ा होती है इस बात से। इसलिए नेता प्रचार करते रहते हैं आदमी के अंधे होने का। और इस बात की कोशिश करते हैं, कोई सोचे न। सोचने की कोई जरूरत नहीं है, सोचना मत, सोचना खतरनाक है, सोचना डेंजरस है, सोचने में भय है, जोखम है। यह बच्चे को बाप सिखा रहा है। क्यों? क्योंकि बाप भी और किसी का नेतृत्व चाहे न कर सके अपने बेटे का तो कर ही रहा है। अपने बेटे की मालकियत तो कर ही रहा है, अपने बेटे को तो वह कह ही रहा हैः मैं अनुभवी, मैं ज्ञानी, मैं तुम्हारा बाप, मैं जो कहता हूं वह ठीक। दुनिया में कोई कुछ कहे, किसी के कहने से कुछ ठीक नहीं होता, ठीक होता है... कोई चीज तभी ठीक होती है, जब मेरे विवेक और विचार को ठीक होती है। सारी दुनिया कुछ कहे, लेकिन मेरे विवेक और विचार में जाग्रत होकर अगर वह चीज प्रतिफलित नहीं होती, तो वह ठीक नहीं होती। लेकिन बाप कह रहा है, कि मैं कहता हूं वह ठीक। मां कह रही है, कि मैं कहती हूं वह ठीक। स्कूल का शिक्षक कह रहा है कि मैं जो कहता हूं वह ठीक। दुकानदार कह रहा है कि मैं जो कहता हूं वह ठीक है। विज्ञापनदाता कह रहा है कि हम जो टूथपेस्ट बेचते हैं वही ठीक है; हम जो साबुन बेचते हैं वही ठीक है; सिनेमा वाला भी वही कह रहा है, राजनैतिक नेता भी वही कह रहा है कि मेरे मार्के की राजनीति ही ठीक है, मेरा शास्त्र ठीक है। सब तरफ इस तरह के लोग हैं, जो कहते हैं हम ठीक हैं। और तुम! तुम्हारा काम इतना है, तुम अच्छे आदमी हो, अगर हम जो कहते हैं तुम उसे मानो, और तुम गलत आदमी हो, अगर तुम गड़बड़ करो। अगर तुम विद्रोह करो, अगर तुम सोचो, तो तुम ठीक आदमी नहीं हो, तुम सज्जन नहीं हो। यह चारों तरफ की चेष्टा ने एक-एक आदमी की आत्मा को बंदी बना दिया है, उसे मुक्त होने के उपाय नहीं छोड़े। और जो हमें बंदी बनाए हुए हैं, हम सोचते हैं, वे ही हमारे मार्गदर्शक हैं, जो हमें सिखा रहे हैं और हमें सीखने की स्थिति में नहीं पहुंचने दे रहे हैं। हम सोचते हैं वे ही हमारे मार्गदृष्टा हैं।
एक मित्र ने मुझे एक किताब दी है और उस किताब में एक कहानी उन्होंने लिखी है, वह मुझे बहुत प्रीतिकर लगी। वह कहानी आपने भी सुनी होगी, लेकिन आधी सुनी होगी। उन मित्र ने वह कहानी पूरी कर दी है। आपने भी सुना होगा कि एक सौदागर था टोपियां बेचने वाला। वह टोपियां बेचने गया हुआ है गांव, किसी दूर बाजार में। रास्ते में ठहरा है एक झाड़ के नीचे। टोपियां रखी हैं उसकी टोकरी में, वह सो गया है, थका-मांदा है। बंदर उतरे हैं, टोपियां लगा कर झाड़ पर चढ़ गए। और झाड़ पर चढ़ कर बंदर बहुत इठला रहे हैं, अकड़ रहे हैं। बंदर ही ठहरे। और बंदर अगर टोपी लगा लें तो बहुत अकड़ने लगते हैं। सफेद टोपिया हैं, खादी की टोपियां हैं, बंदर बहुत अकड़ रहे हैं। अब बंदर ही ठहरे। और खादी की टोपी मिल जाए तो मुसीबत है न। सौदागर की नींद खुली, उसने ऊपर देखा, सब टोपियां नदारद हैं। लेकिन सौदागर ने कहा, मत घबड़ाओ बंदरों, तुमसे टोपियां छीन लेना बहुत आसान है। उसने अपनी टोपी निकाल कर सड़क पर फेंक दी है। सारे बंदरों ने अपनी टोपियां निकाल कर फेंक दी। बंदर ही ठहरे। नकलची ठहरे। लगाई थी टोपी, तो भी इसलिए लगाई थी कि सौदागर लगाए हुए था, फेंक दी तो इसलिए फेंक दी कि सौदागर ने फेंक दी है। सौदागर ने टोपियां इकट्ठी कीं और अपने घर चला गया।
इतनी कहानी तो हम सबने सुनी है, उन मित्र ने उस कहानी को पूरा किया है।
और कहानी में लिखा है कि फिर सौदागर बूढ़ा हो गया। उसका बेटा जवान हुआ और बेटे ने टोपियां बेचना शुरू किया। नालायक बेटे हमेशा वही करते हैं, जो उनके बाप करते रहे हैं। समझदार बेटे हमेशा बाप से आगे बढ़ जाते हैं, और समझदार बाप हमेशा कोशिश करता है कि बेटे उससे आगे बढ़ जाएं। नासमझ बाप कहता है, वहीं रुक जाना, लक्षमण-रेखा खिंची है, जहां तक मैं गया था, उसके आगे मत जाना, क्योंकि जिसके आगे मैं नहीं गया, तो मुझसे ज्यादा अकलमंद तुम तो

नहीं हो कि तुम आगे चले जाओगे। तुम वहीं रुक जाना। बाप के अहंकार को चोट लगती है, अगर बेटा उससे आगे बढ़ जाए। सब बाप कहते हैं कि हम चाहते हैं कि बेटा आगे बढ़े, लेकिन कोई बाप नहीं चाहता कि उससे आगे बढ़े। उससे आगे बढ़ने पर तो अहंकार को चोट लगती है, उतना बढ़े जितना बाप बढ़ा है। वहां तक बढ़े जितना बाप बढ़ा। जहां तक बाप कहे वहां तक बढ़े। तब तक ठीक है, तब तक बाप के अंहकार को तृप्ति मिलती है। जैसे ही बेटा बाप से आगे गया कि बाप को कष्ट होना शुरू हो जाता है। इसलिए जो बापपन है, यह सब बेटों की जंजीर बनता है। गुरु शिष्य की जंजीर बन जाता है।
उस बाप ने भी कहा, बेटा टोपी बेच। बेटा टोपी बेचने लगा, बेटा बुद्धू
रहा होगा, अन्यथा कुछ और भी कर सकता था। जिंदगी में बहुत कुछ करने को है। टोपी बेचने बेटा गया, उसी झाड़ के नीचे ठहरा जिसके नीचे पहले बाप ठहर चुका था। क्योंकि वहीं ठहरना चाहिए जहां बाप ठहर जाते हैं। उसने वहीं अपनी टोकरी रखी जहां बाप ने रखी थी। वह आज्ञाकारी बेटा था, और आज्ञाकारी बेटे, जब तक दुनिया में पैदा होते रहेंगे, तब तक दुनिया अच्छी नहीं हो सकती। क्योंकि आज्ञाकारी बेटे बड़े खतरनाक हैं। समझ भीतर से आनी चाहिए। आज्ञा बाहर से आती है। समझदार बेटे चाहिए दुनिया में। और समझदार बेटा होगा तो अपने मुसलमान बाप से कहेगा कि ठीक; तुम मुसलमान थे ठीक; हम मुसलमान नहीं, हम आदमी हैं। आज्ञाकारी बेटा कहेगा, तुमने दो हिंदू मारे हम चार मारेंगे। हम आज्ञाकारी हैं। आज्ञाकारी बेटे कहेंगे कि हम हिंदुस्तान-पाकिस्तान में तलवारें चलाते रहेंगे। समझदार बेटे कहेंगे, पागल थे हमारे बाप जो लड़े और कटे, हम इकट्ठे हो जाते हैं।
वह बेटा आज्ञाकारी था, वह वहीं टोपी रख कर सो गया। ऊपर बंदर थे, बंदर
तो न रहे होंगे वही, उनके बेटे रहे होंगे, बंदर भी अपने बेटे छोड़ जाते हैं। बंदर अपने बेटे छोड़ जाते हैं। अंग्रेज इस मुल्क से चले गए, अपने बेटे छोड़ गए, शक्ल हमसे मिलती-जुलती, लेकिन उनके बेटे हैं वे। और वे अंग्रेजों से ज्यादा खतरनाक सिद्ध होंगे। बेटा सो भी नहीं पाया था कि बेटे उतर गए बंदरों के और टोपियां लेकर ऊपर चढ़ गए। लेकिन उस बेटे ने सोचा कि घबड़ाओ मत, पिता ने कहानी सुनाई थी कि बंदरों से डरने की जरूरत नहीं है, अपनी टोपी फेंक देना अगर बंदर टोपी ले जाएं। उसके पास समाधान रेडीमेड था। उसने अपनी टोपी निकाल कर फेंक दी। लेकिन उसे क्या पता, बात उलटी हो गई, चमत्कार हो गया, एक बंदर बिना टोपी का रह गया था, वह नीचे उतरा और टोपी लेकर चला गया। बंदर अब तक बुद्धिमान हो गए थे। लेकिन आदमी अब तक बुद्धू था। वह पुराना समाधान काम नहीं आया। नई समस्या थी, समाधान पुराना था, सीखे हुए समाधान सदा ऐसे ही हो जाते हैं। नहीं, दूसरे से नहीं सीख लेना है समाधान। इतनी बुद्धि विकसित करनी है कि समाधान अपना आ सके। दुनिया धार्मिक नहीं हो पाती है क्योंकि धर्म के उत्तर सिखाए जाते हैं। और जब तक धर्म के उत्तर सिखाए जाएंगे, तोतों की तरह रटाए जाएंगे, तब तक दुनिया धार्मिक नहीं हो सकेगी। धर्म तो एक क्रांति है। और उस क्रांति की शुरुआत इस बात में है कि प्रत्येक व्यक्ति की प्रज्ञा का दिया जल जाए। एक-एक व्यक्ति अपनी बुद्धि की रोशनी में देखने, समझने, सोचने लगे।
लेकिन अब तक जिसे हम धर्म कहते हैं वह प्रज्ञा के दीये को जलने नहीं देता, वह कहता है, तुम अपने दीये को बुझा हुआ रखो ताकि गुरुका दिया चमकता हुआ दिखाई पड़े। सब बुझे रहो ताकि गुरुका दिया दिखाई पड़े। गुरु दीया दूसरे का जलने नहीं देता, तभी तक जब तक वह जलने नहीं देता कोई उसका शिष्य बना हुआ है। वह शिष्यों की जो भीड़ है, बुझे हुए दीयों की भीड़ है। और जब तक एक-एक आदमी का दीया नहीं जलता तब तक दस-पचास लोग दुनिया में धार्मिक हो जाएं--कोई एक बुद्ध, कोई एक महावीर, कोई एक कृष्ण, कोई एक क्राइस्ट इससे कोई फर्क नहीं पड़ने वाला है। बल्कि ये थोड़े से लोग हमें और बेचैनी देते हैं। अगर ये भी न हों तो हम यह भी भूल जाएं कि धार्मिक होना कुछ होता है? हम निश्चिंत हो जाएं अपने अधर्म में, हम अपने संसार में निश्चिंत हो जाएं, हमारी चिंता मिट जाए, हमारी एंजायटी मिट जाए। यह कभी-कभी एक आदमी पैदा हो जाता और सारे चित्त को, सारे जगत को चिंतित कर देता है। हम बेचैन हो जाते हैं, जो इसके भीतर हुआ वह हमारे भीतर भी तो हो सकता है। और तब एक बेचैनी शुरू होती है।

और इस बेचैनी का कुल परिणाम इतना होता है कि कोई शोषक हमारा शोषण करता है, कोई संप्रदाय, कोई गुरु, कोई मठ, कोई मंदिर, कोई किताब शोषण करती है। और हम उस शोषण से बंध जाते हैं।
दुनिया में कुछ लोग हुए हैं, इन कुछ लोगों की वजह से लगता है कि सारे लोग ऐसे हो सकते हैं। लेकिन ये सारे लोग नहीं हो सकेंगे, जब तक इनके ऊपर विश्वास का कारागृह बैठाया हुआ है। हम सब अपने-अपने विश्वासों में बंदी हैं। और जो कारागृह दीवाल का होता है, वह दिखाई पड़ता है, जो कारागृह विश्वास का होता है, वह दिखाई ही नहीं पड़ता। अभी आप बैठे हैं और आपके पड़ोस में एक आदमी और बैठा हुआ है, और आपको पता है कि आप हिंदू हैं और बगल का आदमी मुसलमान है, क्या आपको बीच की दीवाल दिखाई पड़ रही है? नहीं है कोई दीवाल वहां, हाथ फैलाएंगे तो दीवाल नहीं मिलेगी। लेकिन दीवाल वहां है, और बड़ी से बड़ी दीवालों से बड़ी दीवाल वहां है, जो दिखाई नहीं पड़ती। और दो आदमी पास-पास बैठे हैं, लेकिन कितनी दूरी पर हैं, उसका हिसाब लगाना मुश्किल है। हमारे विश्वास हमारे कारागृह हैं। हम सब अपने विश्वासों में बंद हैं, और विश्वास उधार हैं, बारोड हैं। यह जो बारोड माइंड है, ये जो उधार चित्त है, यह कभी प्रभु के द्वार पर नहीं पहुंचाएगा। अपना चित्त चाहिए--स्वतंत्र, मुक्त, सोच करने वाला, विचार करने वाला, साहसी, खोज करने वाला। डर भी क्या है? विश्वासी को डर लगता है कि कहीं ऐसा न हो, कि मैं खुद खोजने जाऊं और न पा सकूं।
मैं आपसे कहता हूं, खुद खोजने कोई जाए और न पाए तो भी बहुत कुछ पा लेगा। और जो खोजने नहीं गया और सोचता है पा लिया, उसने कुछ भी नहीं पाया। सवाल पाने का नहीं है, सवाल खोज से गुजर जाने का है। खोज से जो गुजरना है, वही पाना है। कहीं रखा नहीं है, कि आप पहुंच जाएंगे और उठा लेंगे, और तिजोरी में बंद कर लेंगे। आप जो विचार की तीव्र प्रक्रिया से गुजरते हैं, उस गुजरने में ही सत्य की उपलब्धि है। उस गुजरने में ही। इन दैट वैरी प्रोसेस, वह जो विचार की प्रक्रिया है, उससे गुजरना ही जैसे आग से सोना गुजर जाए। तो ऐसा तो नहीं है कि सोना आग से गुजर कर कहीं शुद्ध हो जाएगा जाकर। शुद्धि कहीं रखी नहीं है, कि सोना आग से गुजरेगा फिर शुद्धि के द्वार पर पहुंचेगा और शुद्ध हो जाएगा। सोने का आग से गुजरना ही शुद्ध हो जाना है। क्योंकि सोने का आग से गुजरना ही कचरे का जल जाना है। वह जो विचार की आग है और विचार से बड़ी आग इस पृथ्वी पर कोई दूसरी नहीं है। और अभागे हैं वे लोग जो विचार की आग से नहीं गुजरे। विचार की आग से गुजरते ही आदमी में वह सब जल जाता है जो अंधकारपूर्ण है और वह शेष रह जाता है जो ज्योतिर्मय है। विचार की आग से गुजरते ही जीवन के वे सब गलत ढांचे टूट जाते हैं। वे सब दीवालें गिर जाती हैं जो बांधती हैं और वह आकाश मिल जाता है जो मुक्त करता है, पंखों को फैलाता है और उड़ने का मौका देता है। लेकिन विचार से ही नहीं गुजरने दिया जा रहा है। विचार करने का ही मौका नहीं दिया जा रहा है।
मैं एक घर में ठहरा हुआ था। और सुबह ही सुबह मैं बगिया में टहल रहा हूं। और घर का बूढ़ा बाप अपने बेटे को समझा रहा है। ऐसे ही बात कर रहे हैं वे। और वह बेटे से कह रहा है कि भगवान ने तुम्हें इसलिए बनाया कि तुम दूसरों की सेवा करो। इसीलिए भगवान ने बनाया सबको कि दूसरों की सेवा करे। तुम्हें भी भगवान ने इसलिए बनाया है कि तुम सबकी सेवा करो। उस बेटे ने कहा, कि क्या मैं एक प्रश्न पूछ सकता हूं? जब भी कोई बेटा यह कहता है, क्या मैं एक प्रश्न पूछ सकता हूं? तभी बूढ़ी और जर्जर आत्मा एकदम चौंक जाती है। वह बूढ़ा बाप एकदम चौंक कर बैठ गया, उसने कहाः क्या पूछना है? उसके कहने का रुख यह था कि पहली तो बात कि पूछना गलत है, पूछने की हिम्मत गलत है, उसके चेहरे का ढंग यह था कि पूछो ही मत। लेकिन यह भी वह कह नहीं सकता था। उस बेटे ने कहाः आप कहें तो मैं पूछूं? उसने कहाः पूछो, क्या पूछना है? उस बेटे ने कहाः मैं यह पूछना चाहता हूं कि मुझे तो भगवान ने इसलिए बनाया कि दूसरों की सेवा करूं। दूसरों को किसलिए बनाया है? बाप ने कहाः इस तरह की फिजूल बातें मेरे सामने मत लाओ। बेकार की बातों में मत पड़ो, बेकार के विचार में मत पड़ो। हमारी किताब में यह लिखा है कि भगवान ने आदमी को दूसरों की सेवा के लिए बनाया है। सेवा करो।

वह बेटा ठीक बात पूछ रहा है। आखिर इतना तो पूछने का हक होना चाहिए। लेकिन पूछने से डर लगता है। क्योंकि जवाब नहीं है। जहां-जहां जवाब नहीं हैं, वहीं प्रश्न से भय है। जहां-जहां जवाब नहीं है, वहीं विचार से भय है। जहां-जहां जवाब नहीं है, वहीं विश्वास का आरोपण है। वहीं श्रद्धा की शिक्षा है। और अगर जवाब नहीं है, तो ठीक है यह जान लेना कि जवाब नहीं है। तो भी एक बल आएगा, लेकिन झूठे जवाबों को पकड़ कर चलना अत्यंत नपुंसकता है, बहुत इंपोटेंट है। अगर यही सच है कि कोई जवाब नहीं है हमारे पास जीवन के लिए, तो ठीक है, हिम्मतवर लोग कहेंगे, अब जवाब नहीं है। हम बिना जवाब के जीएंगे, लेकिन झूठे जवाब नहीं पकड़ेंगे। क्योंकि झूठे जवाब अगर कहीं कोई जवाब हों भी तो उन तक नहीं पहुंचा सकते। यह हिम्मत कि हम बिना जवाब के जीएंगे, बिना उत्तर के जीएंगे। प्रश्न में जीएंगे, समस्या में जीएंगे, झूठा समाधान नहीं पकड़ेंगे। यह हिम्मत शायद उस द्वार तक पहुंचा दे जहां समाधान उपलब्ध होता है, जहां उत्तर है।
परमात्मा तो है, लेकिन मिलता उन्हें है जो उसे खोजने की जोखिम, रिस्क उठाते हैं। और मजा यह हो गया है कि परमात्मा सबसे कम जोखिम का काम रह गया है। किसी को कोई जोखिम उठाने की जरूरत नहीं है। बस मान लेना काफी है। मान लेना काफी है कि परमात्मा है। पूजा कर लेनी काफी है। चंदन-तिलक लगा लेना काफी है, जनेऊ पहन लेना काफी है, कहीं मंदिर का घंटा बजा लेना काफी है, और पर्याप्त है कि आदमी को भगवान के द्वार पर पहुंच जाएगा। इतना सस्ता नहीं है मामला। और भगवान इतना सस्ता हो तो हिम्मतवर लोग ऐसे भगवान को पाने से निश्चित ही इनकार कर देंगे। इतना सस्ता भगवान पाकर भी क्या करेंगे जो मंदिर के घंटे बजाने से मिल जाता हो। ऐसा सस्ता भगवान पाकर क्या करेंगे जो भिखमंगे को दो पैसे देने से मिल जाता हो। ऐसे भगवान को पाकर क्या करेंगे जो तिलक-चंदन लगा लेने से मिल जाता हो। ऐसे भगवान की कितनी कीमत है जो रोज सुबह गीता पढ़ लेने से मिल जाता हो और रामायण पढ़ लेने से मिल जाता हो। ऐसा भगवान किसी अर्थ का नहीं हो सकता है।
भगवान की उपलब्धि आर्डुअस है, तपश्चर्यापूर्ण है। तपश्चर्या का मतलब धूप में खड़ा हो जाना नहीं है। और तपश्चर्या का मतलब कांटों पर लेट जाना नहीं है। और तपश्चर्या का मतलब भूखे मरना नहीं है। ये सब सर्कस के खेल हैं, जो कोई भी नासमझ कर सकता है। तपश्चर्या एक ही है मनुष्य के सामने और वह हैः विचार की प्रक्रिया से गुजरना। और मैं आपसे कहता हूं, विचार से बड़ा तपस नहीं है, क्योंकि विचार सारे प्राणों को छेद देता है। सारे आधार उखाड़ देता है। सारी नींव गिरा देता है। सारी सुरक्षा मिटा देता है। सब सिक्युरिटी खत्म हो जाती है। सब समाधान खो जाते हैं, सब उत्तर मिट जाते हैं, और आदमी एक गहन संदेह में, एक अनजान रास्ते पर, एक अपरिचित मार्ग पर अंधकार में खड़ा रह जाता है। उतनी हिम्मत नहीं जो जुटाता वह प्रभु के द्वार पर नहीं पहुंच सकता है।
हम सब कमजोर प्रभु के द्वार पर ऐसे खड़े हैं कि वह मुफ्त मिल जाए। मुफ्त की तरकीबों से मिल जाए। कुछ ऐसी डिवाइस हमने बना ली हैं कि हमें कुछ न करना पड़े और वह मिल जाए। इस भांति अगर वह मिलता होता तो सारी मनुष्य-जाति को कभी का मिल गया होता। इस भांति वह नहीं मिल सकता है। हम इसी भांति अपेक्षा कर रहे हैं पाने की। और इसलिए जब कोई सस्ता नुस्खा बताता है और कहता है राम-राम जपो और भगवान मिल जाएगा, तो हमें समझ में पड़ता है कि बिल्कुल ठीक है। कोई कहता है माला फेरो और भगवान मिल जाएगा। लेकिन कभी पूछो तो कि माला फेरने और भगवान के मिलने का क्या संबंध हो सकता है? एक चार पैसे की माला आप ले आएं हैं और फेर रहे हैं, बड़ी भगवान पर कृपा कर रहे हैं कि आप माला फेर रहे हैं।
तिब्बत में और भी होशियार लोग हैं, उन्होंने प्रेयर-व्हील बना रखा है, उन्होंने एक चक्का बना रखा है, चरखे की तरह का। उसके एक सौ आठ स्पोक हैं, आरे हैं, एक-एक आरे पर एक-एक मंत्र लिखा हुआ है। वह एक दफा चक्के को हाथ से धक्का मार देते हैं, वह चक्का जितने चक्कर लगा लेता है उतने गुणा एक सौ आठ मंत्रों का फायदा चक्कर लगाने वाले को मिल जाता है। दुकानदार बैठा है अपनी दुकान पर, बीच-बीच में ग्राहकों को चलाता जाता है और चक्के को धक्का

मारता जाता है। वह इतने-इतने पुण्य का भागी हो रहा है। वह बड़ी गलती में है।
अब तो बिजली चल गई, एक प्लक और जोड़ ले उसमें और लगा दें प्लक से, वह चक्का पंखे की तरह दिन भर चक्कर लगाता रहे। उतना पुण्य का उनको लाभ मिल जाएगा।
आप हाथ से क्या कर रहे हैं माला को फेर कर? गुरिए ही सरका रहे हैं। एक बिजली का यंत्र बना लें, वह गुरिया सरकाता रहे, आपको बड़े लाभ हो जाएंगे। हाथ भी एक यंत्र है और बिजली भी एक यंत्र है। और हाथ से चाहे गुरियां सरकाएं और चाहे बिजली के यंत्र से, कोई फर्क नहीं पड़ता।
इतनी सस्ती तरकीबें खोज कर आदमी सोचता है हमप्रभु के द्वार पर खड़े हो जाएंगे। प्रभु के द्वार पर खड़ा नहीं होता, हां, अपने ही बनाए हुए प्रभु के द्वार पर खड़ा हो जाता है। और अगर कोई आदमी निश्चित चेष्टा करता रहे तो अपने ही बनाए हुए प्रभु के दर्शन भी कर सकता है कि भगवान मुरली बजाते हुए खड़े हैं, कि भगवान धनुष लिए हुए खड़े हैं, कि भगवान सूली पर लटके हुए हैं। अगर कोई आदमी कल्पना, कल्पना, कल्पना करे, तो यह कल्पना स्वप्न बन सकती है, और यह प्रत्यक्ष मालूम भी हो सकता है कि हां भगवान खड़े हैं। लेकिन ये भगवान भी आपके ही निर्मित भगवान हैं, अपने ही निर्मित भगवान। चाहे कोई मूर्ति बनाए पत्थर की और चाहे कोई इमेज बनाए कल्पना का, चाहे कोई मूर्ति बनाए कल्पना की, अपना ही भगवान भगवान नहीं है। उस भगवान को पाने के लिए जो है खुद को मिटना पड़ता है। और इन भगवानों को पाने के लिए खुद को इन भगवानों को बनाना पड़ता है। ये दोनों बिल्कुल उलटी बातें हैं। जो है उसे पाने के लिए तो मुझे मिटना पड़ेगा और जो नहीं है उसे निर्मित करने के लिए मैं बना रहूंगा। और एक भगवान और निर्मित कर लूंगा। और इतनी अकड़ होती है इस अहंकार की कि...
मैंने सुना है, एक महात्मा को कृष्ण के मंदिर में ले जाया गया। उनका नाम नहीं लूंगा, क्योंकि इस मुल्क में नाम लेने से बड़ी कठिनाई होती है। लोग इतने कमजोर, इतने, इतने हीन हो गए हैं कि हिम्मत से नाम लेकर बात करने में हिम्मत भी नहीं जुटती, पर आप समझ जाएंगे वे महात्मा कौन थे? उन महात्मा को कृष्ण के मंदिर में ले जाया गया वृंदावन में। वे महात्मा राम के भक्त थे। जब कृष्ण के मंदिर में वे गए, तो उन्होंने कहा कि मैं मुरली हाथ में लिए हुए वाले भगवान के सामने सिर नहीं झुकाऊंगा, मैं तो धनुर्धारी भगवान के सामने सिर झुका सकता हूं। धनुष हाथ में लो तो मैं सिर झुकाऊंगा। मजा देखते हैं आप--भक्त भी शर्त लगाता है कि तुम इस पोज में खड़े हो जाओ,
इस आसन में खड़े होओ, इस ढंग से खड़े होओ, कंडिशन है हमारी तब हम सिर झुकाएंगे। सिर झुकाने में भी कंडिशन, शर्त! तो सिर हमारा झुका कि भगवान का झुका? सिर किसका झुका फिर? अकड़ भक्त की देखते हैं, उसके अहंकार की कि तुम ऐसे खड़े होओ, तब मैं सिर झुकाऊंगा। यानी पहले तुम झुको, तब हम झुकेंगे। और तुम्हारा झुकना जरूरी है, तभी हम झुक सकते हैं। कल्पना में आप अपने भगवान को जैसा चाहें वैसा झुका लें, असली भगवान को आप नहीं झुका सकते, आपको ही झुक जाना पड़ेगा। असली भगवान के समक्ष आपको झुकना पड़ेगा। नकली भगवान को आप जैसा चाहें वैसा झुका लें। चाहें तो मोरमुकुट लगाएं, चाहें तो बांसुरी हाथ में पकड़ाएं, जैसी तबियत हो। यह पुराने ढंग का है, अगर कोई आधुनिक आदमी नैक-टाई और कंठ-लगोट भी भगवान को बांधना चाहे तो बांध सकता है। इसमें क्या हर्जा है, वह आदमी के ऊपर निर्भर है। मत बांसुरी लगाएं, सिगरट लगवा दें, आपके हाथ में है। भगवान क्या कर लेंगे?
आदमी जिस भगवान को निर्मित कर रहा है वह उसकी ही कल्पना का खेल, उसकी मुट्ठी का खेल है। इस भगवान को भगवान मत समझ लेना। यह भक्त की अपनी कल्पना है। और भक्त की अपनी वासना है। और भक्त की अपनी इच्छा का प्रोजेक्शन है, प्रक्षेपण है। उसने जैसा चाहा है, अगर किसी स्त्री को प्रेमी की कमी रह गई है मन में, और प्रेमी नहीं मिल पाया, और किस स्त्री को मिल पाता है? प्रेमी मिलना तो बहुत मुश्किल है इस पृथ्वी पर। प्रेमी मिलना आसान है क्या? पति मिल जाते हैं, प्रेमी मिलना बहुत मुश्किल है। और पति और प्रेमी का कोई संबंध है? कहां पति और कहां प्रेमी। पति है मालिक, और प्रेमी तो बात ही और है। प्रेमी कहां मिलता है? पति मिल जाते हैं। जब स्त्रियों को पति ही पति मिलते जाते हैं, तो कोई संवेदनशील स्त्री बेचैन हो जाती है और कहती है,

नहीं, यह पति नहीं चाहिए, हमें तो प्रेमी चाहिए। तो वह कृष्ण को ही प्रेमी मान लेती है, वह आंखों में बंद किए वह कृष्ण को सजाती चली जाती है। और नाचती है, और गीत गाती है, और उसके ही रस में रहने लगती है। उसके भीतर जो प्रेमी की कमी रह गई है, वह प्रेमी की जो डिजायर, वह जो वासना रह गई है प्रेमी की, अब वह कृष्ण को बना रही है। अब यह कल्पना में वह प्रेमी को निर्मित कर लेती है, वह उसी के आस-पास नाचती है, जीती है और खुश होती है, प्रसन्न होती है। यह सब होता है। लेकिन इससे भगवान का कोई लेना-देना नहीं है। यह अपनी ही कल्पना का जाल है। अपनी ही अतृप्त वासना का जाल है। हम जैसी चाहें वैसी कल्पना कर लें, हमारे भीतर जो रह गया अतृप्त, उसको हम तृप्त कर लें।
मन की यह खूबी है, रात आप सोए हैं, भूख लगी है, तो मन सपना देखता है कि
आप खाना खा रहे हैं। क्यों? क्योंकि मन यह कहता है, जो असली में नहीं मिल रहा, उसे सपने में ले लो। असली में नहीं मिल रहा है, दिन में खाना नहीं मिला, रात सपने में ले लो। दिन में जिस स्त्री को आपने चाहा है, वह दिन में नहीं मिल सकी, वह पड़ोसी की पत्नी है, और पड़ोसी की पत्नी को मां-बहन मानना चाहिए, तो दिन भर तो मां-बहन माना, अब रात सपने में, रात सपने में ले लो। मन जो अतृप्त रह गया है, उसे क्रिएट करता है, उसे सृजन करता है, उसे रात पूरा कर लेता है।
भक्त सपना देख रहे हैं, भगवान नहीं हैं वहां। और अगर कोई हिम्मतवर आदमी हो, तो जागते भी सपना देख सकता है, दिवास्वप्न, डे-ड्रीम्स भी होते हैं। लेकिन उसकी तरकीबें हैं उस सपने को देखने की। उस सपने को देखने की तरकीबों को लोग साधना समझ रहे हैं। वे सब सपना देखने की तरकीबें हैं। जैसे अगर आप पूरे पेट भरे हुए हैं तो आपका चित्त मजबूत होता है, लेकिन अगर आप दस-पंद्रह दिन भूखे रह गए हैं, चित्त कमजोर हो जाता है। अगर किसी आदमी को कल्पना का साक्षात करना हो, तो उपवास बहुत उपयोगी है। उपवास से एक ही फायदा है, कल्पना प्रगाढ़ हो जाती है और चित्त की तर्क की, विचार करने की क्षमता क्षीण हो जाती है। इसलिए कोई आदमी अगर दस-पंद्रह दिन लंघन हो जाए बुखार में, तो आप देखें, उसे क्या-क्या दिखाई पड़ता है? कहीं उसकी खाट उड़ रही है आकाश में, कहीं कुछ हो रहा है, कहीं कुछ हो रहा है, उसे न मालूम क्या- क्या दिखाई पड़ता है। सन्निपात में क्या-क्या दिखाई पड़ता है आदमी को? जिनको हम भगवान की उपलब्धि कहे हुए लोग कहते हैं, उनमें सौ में से निन्यानबे सन्निपात की अवस्था में हैं। भूखे मरो, उपवासे रहो, स्वभावतः चित्त की तर्क करने की, विचार करने की क्षमता क्षीण हो जाती है। फिर कल्पना प्रगाढ़ हो जाती है। और कल्पना में फिर कुछ भी देखा जा सकता है। इसलिए जिनको अपने बनाए हुए भगवान देखना हो उनके लिए फास्ट और उपवास बड़ी उपयोगी चीज है। उसका उपयोग करना चाहिए। फिर अगर भीड़ में आप हो तो कल्पना उतनी प्रगाढ़ नहीं होती, एकांत में ज्यादा प्रगाढ़ होती है। इसलिए अकेले में ज्यादा डर लगता है। एक मकान है जिसमें दस लोग हैं, तो आपको डर नहीं लगता क्यों? मकान वही है, फिर दस आदमी नहीं हैं, आप अकेले हैं। तो दिन में आपको डर नहीं लगता, रात में लगता है, मकान वही है। रात में अकेले पड़ गए, चारों तरफ अंधेरा घिर गया। अकेले हैं, जरा सा पत्ता खड़कता है, और लगता है कि भूत-प्रेत आए। कोई चोर-बदमाश आया। अकेले में, एकांत में आदमी कमजोर पड़ जाता है। कमजोरी की वजह से कल्पना प्रगाढ़ हो जाती है। तो जिनको भगवान का दर्शन करना हो, उन्हें समाज छोड़ कर एकांत में चले जाना चाहिए। वहां भगवान का दर्शन ज्यादा आसान है। यहां भगवान का दर्शन जरा मुश्किल है। भीड़-भाड़ में आदमी की हिम्मत थोड़ी ज्यादा है, अकेले में हिम्मत कमजोर हो जाती है। उपवास करिए, एकांतवास करिए और एक ही चीज की रटन लगाए रखिए दिन-रात, चौबीस घंटे, चौबीस घंटे बस मुरली बजाते भगवान की रटन लगाए रखिए कि हे भगवान, कब दर्शन दोगे! हे भगवान, कब दर्शन दोगे! बार-बार आंख बंद करिए, उन्हीं को देखिए। आंख खोलिए मूर्ति रख लीजिए, चौबीस घंटे उसी धुन में रहिए, और आप ही जैसे अगर दस-पांच पागल हों तो उनसे मिलिए और उसका नाम सत्संग... और उसी बकवास को जारी रखिए चौबीस घंटे। महीने-छह महीने में दिमाग खराब हो जाएगा,

भगवान के दर्शन होने लगेंगे और लगेगा कि बहुत कुछ पा लिया। यह प्रभु का द्वार नहीं है।
विश्वास से, श्रद्धा से, कल्पना से उस द्वार पर कोई कभी नहीं पहुंचा है। विचार से, तीव्र विवेक से, खोज से, अन्वेषण से वहां कोई पहुंचता है। इसलिए पहली बात आपसे कहना चाहता हूं आज की सुबहः विश्वास का द्वार उसका द्वार नहीं है। वह जो बिलीफ जहां लिखा हो, जिस दरवाजे पर लिखा हो श्रद्धा, वहां से हाथ जोड़ कर वापस लौट आना। उस दरवाजे को भगवान का दरवाजा कभी भूल कर मत मानना। वही दरवाजा आदमी को धर्म के नाम पर धोखा देता रहा है। उस दरवाजे के पीछे परमात्मा नहीं है, सिर्फ पुरोहित है। और पुरोहित से बड़ा दुश्मन परमात्मा का न अब तक हुआ है और न हो सकता है। उसके पीछे पुरोहित खड़ा है। वे जो मूर्तियां हैं भगवान की उनके पीछे पुरोहित खड़ा है, धागे लिए हुए वह खींच रहा है, सारा जाल उसका है। और पुरोहित सबसे बड़ा दुश्मन है परमात्मा का। वह परमात्मा और आदमी के बीच सबसे बड़ी बाधा है। क्योंकि जहां- जहां भगवान नहीं हैं वह वहां बताता है कि यहां हैं, क्योंकि वहां उसका धंधा है, वहां उसका व्यवसाय है। आदमी जितना अंधा हो उतना पुरोहित के काम का। इसीलिए तो पुरुष तो कम हैं पुरोहितों के जाल में, स्त्रियां ज्यादा हैं पुरोहित के जाल में। क्योंकि ज्यादा कल्पनाशील, ज्यादा विश्वास प्रवण, ज्यादा श्रद्धालु। इस वक्त तो, इस जमाने में तो अगर स्त्रियां पुरोहितों से जरा भी हाथ जोड़ लें, तो जाल गिर जाए, लेकिन स्त्रियां उनके जाल को पूरी तरह बनाने का काम कर रही हैं। और जहां स्त्रियां जाती हैं उनके पीछे बेचारे उनके पतियों को भी जाना पड़ता है। वह पति अपने मन से मंदिर नहीं जा रहे हैं, लेकिन पत्नी जा रही है पति उसके पीछे चले जा रहे हैं। वह पत्नी, वह स्त्री ज्यादा प्रवण है, भाव प्रवण है, श्रद्धालु है। और श्रद्धालु होने का कारण है, क्योंकि पांच-छह-सात हजार वर्षों के लंबे इतिहास में उसे शिक्षा नहीं दी गई। जिसको शिक्षा मिलेगी, वह बुद्धिमान हो जाएगा, विचारशील हो जाएगा। इसलिए पुरोहित स्त्रियों की शिक्षा का दुश्मन रहा है। क्योंकि स्त्रियां ही उसका आधार स्तंभ हैं। अगर स्त्रियों को शिक्षा मिल गई तो मुश्किल हो जाएगी। इसलिए स्त्रियों की शिक्षा के विरोध में है। जिस दिन सारी दुनिया की स्त्रियां शिक्षित हो जाएंगी, पुरोहित की नब्बे परसेंट जान एकदम निकल जाने वाली है। स्त्रियों के शिक्षा के वह पक्ष में नहीं है। वह एकदम दुश्मन है।
अभी मैं पटना में था। शंकराचार्य मेरे साथ थे। एक ही मंच पर दोनों का मिलना हो गया। तो बड़ी मुसीबत हो गई। वे तो देख कर ही एकदम बोले कि दोनों आदमी एक साथ कैसे हैं? वे वहां समझा रहे थे कि स्त्रियों को शिक्षा की कोई जरूरत नहीं है। क्यों? उन्होंने एक बहुत मजेदार बात कही। उन्होंने यह कहा कि हिंदू धर्म तो स्त्रियों को इतना आदर देता है कि किसी स्त्री को डाक्टर बनने की जरूरत नहीं; सिर्फ डाक्टर की पत्नी बन जाए और लोग डाक्टरनी कहते हैं। कोई जरूरत ही नहीं शिक्षा की। डाक्टरनी तो सिर्फ डाक्टर की पत्नी बनने से हो जाती है वह। इसलिए किसी स्त्री को डाक्टर बनने की जरूरत नहीं है। किसी स्त्री को पंडित होने की जरूरत नहीं है, उन्होंने समझाया, क्योंकि वह तो पंडित की पत्नी होने से पंडितायन हो ही जाती है।
ये इस मुल्क को समझाने वाले लोग हैं। और ऐसे खतरनाक लोगों को गुरु माना जा रहा है। तब तो इस मुल्क का दुर्भाग्य होगा ही। और ऐसे लोग उन मंदिरों के द्वार पर खड़े हैं जिनको हम भगवान का मंदिर समझ रहे हैं।
ये ही सज्जन पुरी के शंकराचार्य दिल्ली में ठहरे हुए थे। एक बहुत अदभुत घटना घटी, वह मैं कहूं, अपनी बात पूरी करूं। एक आदमी आया और उसने कहा कि हम चाहते हैं, हमारा एक छोटा सा मंडल है ब्रह्मज्ञानियों का, ब्रह्मज्ञान पर हम चर्चा करते हैं, जिज्ञासु हैं, आप चलें और हमारे मंडल में हमें ब्रह्म के संबंध में कुछ समझाएं। शंकराचार्य ने नीचे से ऊपर तक उन्हें देखा, पतलून पहने हुए हैं, कोट पहने हुए हैं, टाई बांधे हुए हैं, हैट लगाए हुए हैं, कहा, इसी कपड़े में ब्रह्मज्ञान पाओगे? कभी सुना है इन कपड़ों में किसी को ब्रह्मज्ञान हुआ हो? ऋषि-मुनि नासमझ थे, नहीं तो वे भी टोप

पहनते, कोट-पतलून पहनते। हमारे ऋषि-मुनि नासमझ थे, तुम्हीं एक ज्ञानी पैदा हुए हो।
वह आदमी तो घबड़ा गया होगा, उसने तो सोचा भी नहीं होगा। उसने तो सोचा होगा कि मैं किसी ज्ञानी के पास जा रहा हूं, उसे क्या पता कि कोई टेलर मास्टर के पास पहुंच गए जो कपड़ों का हिसाब रखता है। यहीं तक बात नहीं रुकी, शंकराचार्य ने कहा, जरा टोप अलग करो। चोटी है या नहीं? चोटी तो नहीं थी। किसी समझदार आदमी की नहीं हो सकती। कोई दिमाग खराब है? चोटी रखने का कोई प्रयोजन है? चोटी नहीं थी, तो उन्होंने कहा, देख लो, दस-पच्चीस पागल वहां इकट्ठे होंगे, अगर पागल न हों तो गुरु कभी भी खत्म हो जाएं। वे हमेशा इकट्ठे रहते हैं। वे हंसे होंगे, उन्होंने कहा, क्या बढ़िया गुरुने ज्ञान की बात कही? और आदमी कैसी फजीहत में पड़ गया? चोटी नहीं है? वह आदमी भी घबड़ा गया होगा। यहीं तक बात नहीं रुकी। शंकराचार्य ने जो कहा, अगर वह कल्याण ने न छापा होता, तो शायद मैं भी विश्वास न करता कि यह बात हुई होगी। उन्होंने कहा, पेशाब खड़े होकर करते हो कि बैठ कर? खड़े होकर पेशाब करने वालों को ब्रह्मज्ञान नहीं हो सकता है, इसे नोट कर लेना। उस दिन मुझे पता चला, कि ब्रह्म भी पेशाब करने के ढंग पर ध्यान देता है। और ब्रह्मज्ञान भी पेशाब करने की पद्धति से आता है। ये हमारे गुरुहैं, ये मंदिरों के द्वारों पर खड़े हुए हैं। और ये छोटे-मोटे गुरु नहीं हैं, जगतगुरु हैं। और मजा यह है कि जगत से कोई पूछता ही नहीं, कि कब जगत ने आपको गुरु बनाया? जगत से पूछने की कोई जरूरत नहीं। किसी को वहम पैदा हो जाए, वह चिल्ला दे कि मैं जगतगुरु हूं।
एक गांव में मैं गया था, वहां भी एक जगतगुरुथे। हमारे तो मुल्क में गांव-गांव में जगतगुरु हैं। मैंने पूछा कि इस गांव में भी जगतगुरु? कितने इनके शिष्य हैं? लोगों ने कहाः शिष्य तो ज्यादा नहीं हैं, एक ही है। फिर एक ही शिष्य का आदमी जगतगुरु कैसे हो गया? उन्होंने कहा कि बिल्कुल कांस्टीट्यूशनल है हमारा जगतगुरु। बिल्कुल वैधानिक है। मैंने कहाः मतलब? उन्होंने कहाः जो उनका एक शिष्य है, हालांकि वह वैतनिक है, क्योंकि आजकल शिष्य बड़ी मुश्किल से मिलते हैं। तनख्वाह देनी पड़ती है तब मिलते हैं। वैतनिक शिष्य है, लेकिन उसका नाम उन्होंने जगत रख लिया है। जगत शिष्य का नाम रख लिया है, वे जगतगुरु हो गए हैं। एक ही शिष्य है।
ये खड़े हैं मंदिरों, मस्जिदों, गुरुद्वारों, गिरजों के द्वार पर। ये सारे लोग। इनकी शक्लें अलग-अलग हैं। कोई पोप बना हुआ खड़ा है, कोई शंकराचार्य बना हुआ खड़ा है, कोई, कोई और बना होगा, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। शक्लें अलग हैं, दुकानें अलग हैं, प्रयोजन एक है, और वह प्रयोजन है आदमी को विचार के रास्ते से हटाना और विश्वास के रास्ते पर भटकाना। और जब तक आदमी विश्वास के रास्ते पर जाने को राजी है, ध्यान रहे, उसकी पीठ परमात्मा की तरफ है। वह कभी भी परमात्मा को नहीं जान सकता। परमात्मा को जानना हो तो उन्मुक्त विचार चाहिए। सतत विचार चाहिए। जैसा विश्वासी कहता है कि अभी मिल जाएगा, विश्वास करो, ऐसा मैं नहीं कहता कि विचार करने से अभी मिल जाएगा। विचार करना लंबी प्रक्रिया है। विचार करना लंबा संघर्ष है। लंबे संघर्ष से आप गुजरोगे, निखरोगे, ताजे होओगे, नये होओगे, जरूर वह मिल जाएगा। जिस दिन निखार पूरा होगा उस दिन वह मिल जाएगा। सच तो यह है कि वह मिला ही हुआ है, हम निखरे हुए नहीं हैं, इसलिए कठिनाई है। सच तो यह है कि उसका दरवाजा दूर नहीं है, हमारी आंखें बंद हैं इसलिए दरवाजा नहीं दिखाई पड़ता। सच तो यह है, कि उसका दरवाजा बंद भी नहीं है, खुला हुआ है, लेकिन हमारी आंखें बंद हैं।
एक फकीर था, वह निरंतर सुबह-शाम समझाता था लोगों को, नॉक एंड दि डोर शैल बी ओपन। खटखटाओ दरवाजे खुल जाएंगे। एक बूढ़ी औरत राबिया भी उसको सुनने जाती थी, तीस वर्षों तक निरंतर सुनने के बाद एक दिन उसने कहा, बंद भी करो यह बकवास कि खटखटाओ खुल जाएगा, अभी तक तुम्हें पता नहीं चला कि उसका दरवाजा खुला ही हुआ है। हैव यू नॉट नोन एट दैट दि डोर इ.ज ओपन। हैज आलवेज बीन ओपन। दि डोर इटसेल्फ इ.ज एन ओपनिंग। वह जो परमात्मा का दरवाजा है वह कोई आदमियों जैसा दरवाजा नहीं है जिस पर ताला लगा है, चाबी लगी है। दरवाजा

यानी खुलापन। द्वार है। वहां कुछ है नहीं। हमारी आंख बंद है, उसका दरवाजा तो खुला है। और आंख बंद रहेगी, जिनकी आंखों पर विश्वास के पत्थर रखे हैं उनकी आंखें कैसे खुल जाएंगी? विश्वास के पत्थर हटाएं और आंख खुल जाएंगी। विश्वास के पत्थरों पर पुरोहित बैठे हुए हैं। वे विश्वास के जो पत्थर हैं पुरोहितों के सिंहासन हैं। पुरोहितों को हटाएं, पत्थरों को हटाएं, आंख खुल जाएंगी। पत्थरों के ऊपर पुरोहित बैठ कर शास्त्र पढ़ रहे हैं। वह शास्त्र उनके आधार हैं, वे कहते हैं, शास्त्र में सत्य है। शास्त्र में सत्य नहीं है; जिनमें सत्य था उनसे शास्त्र जरूर निकले हैं। शास्त्र में सत्य नहीं है। और आप जिस दिन सत्य को जान लेंगे, उस दिन शास्त्र में भी सत्य दिखाई पड़ जाएगा। लेकिन जब तक आपने नहीं जाना, सब शास्त्र असत्य हैं। आपको कुछ नहीं मिल सकता, सिवाय शब्दों के। आप जब तक सत्य को नहीं जानते, शास्त्रों में सिवाय शब्द के कुछ भी नहीं पा सकते हैं। जिस दिन आप जान लेंगे, उस दिन शास्त्रों में तो सत्य मिल ही जाएगा, उस किताब में भी सत्य मिल जाएगा जिसमें एक भी शब्द नहीं है। वहां भी सत्य मिल जाएगा, जहां पत्ते हिल रहे हैं, वहां भी सत्य मिल जाएगा, जहां हवाएं लहरें ले रही हैं। और वहां भी सत्य मिल जाएगा जहां पक्षी आकाश में उड़ रहे हैं। वहां भी सत्य मिल जाएगा, जहां रास्ते के किनारे पत्थर पड़े हैं, सत्य जिस दिन भीतर मिल जाए उस दिन सब जगह बाहर मिल जाता है। और जब तक भीतर न मिला हो, तब तक बाहर का कोई शास्त्र सत्य नहीं दे सकता। पुरोहित को हटाएं, उसके शास्त्र को हटाएं, उसके पत्थर को हटाएं, आंख खोलें, लेकिन विश्वास हटे, तो ये सब हट जा सकते हैं। विश्वास का पत्थर आंख रोके रहे, तो हम प्रभु के मंदिर पर प्रवेश नहीं पा सकते हैं।
तो आज मैं आपसे कहता हूं, विश्वास द्वार नहीं है। कल आपसे बात करूंगा
कि द्वार क्या है? मेरी इन बातों के संबंध में जो भी प्रश्न हों वे आप लिख कर दे दें। संध्या में उनके उत्तर दूंगा, और अच्छा यह होगा जो कि मैंने कहा इसी संबंध में लिख कर दें, ताकि ठीक-ठीक पूरी-पूरी बात हो सके। सांझ आपके प्रश्नों का उत्तर होगा, कल सुबह फिर मैं बोलूंगा और रोज सांझ आपके प्रश्नों के उत्तर दूंगा।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उसके लिए बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

प्रभु मंदिर के द्वार पर दूसरा प्रवचन

समग्रता है द्वार

मेरे प्रिय आत्मन्!
सुबह की चर्चा के संबंध में बहुत से प्रश्न मित्रों ने पूछे हैं। एक मित्र ने पूछा है कि क्या ईश्वर है, जिसकी हम खोज करें? और भी दो-तीन मित्रों ने ईश्वर के संबंध में ऐसे ही प्रश्न पूछे हैं कि क्या आप ईश्वर को मानते हैं? क्या आपने ईश्वर का दर्शन किया है? कुछ मित्रों ने संदेह किया है कि ईश्वर तो नहीं है, उसको खोजें ही क्यों?

इसे थोड़ा समझ लेना उपयोगी होगा। पहली बात, मैं जब परमात्मा का, प्रभु
का या ईश्वर शब्द का उपयोग करता हूं, तो मेरा प्रयोजन है उससे जो है, दैट व्हीच इ.ज, जो है। जीवन है। अस्तित्व है। हम नहीं थे तब भी अस्तित्व था। हम नहीं होंगे तब भी अस्तित्व होगा। हमारे भीतर भी अस्तित्व है, जीवन है। जीवन की यह समग्रता, यह टोटेलिटी ही परमात्मा है। इस जीवन का हमें कुछ भी पता नहीं कि क्या है? स्वयं के भीतर भी जो जीवन है उसका भी हमें कोई पता नहीं कि वह क्या है?
एक फकीर था, बायजीद। कोई उसके द्वार पर दस्तक दे रहा है और कह रहा है, द्वार खोलो। बायजीद भीतर से पूछता है, किसको बुलाते हो? किसको खोजते हो? कौन द्वार खोले? अगर आपके घर किसी ने दस्तक दी होती तो आप पूछते कौन है? कौन बुलाता है? बायजीद ने कहाः कौन के लिए बुलाते हो? किसे बुलाते हो? कौन दरवाजा खोले? किसको पुकारते हो? बायजीद ने यह नहीं पूछा कि कौन पुकारता है, बायजीद ने कहाः किसको पुकारते हो? उस आदमी ने कहाः किसको पुकारूंगा? बायजीद को पुकारता हूं, बायजीद, दरवाजा खोलो! बायजीद ने कहाः फिर क्षमा करो। वर्षों से मैं खोज रहा हूं कि यह बायजीद कौन है? अभी तक मैं खोज नहीं पाया हूं। मुझे खुद ही पता नहीं कि बायजीद कौन है? यह मैं कौन हूं, यह मुझे खुद ही पता नहीं है।
मजाक में ही बायजीद ने यह कहा होगा। द्वार तो खोल दिए थे। लेकिन ठीक
ही बात कही थी। यही हमें पता नहीं कि मैं कौन हूं? जीवन क्या है, यह हमें पता नहीं। अस्तित्व क्या है, यह हमें पता नहीं। और जब तक अस्तित्व का पता न हो, जीवन का पता न हो, तब तक हम जीते हैं नाममात्र को। वस्तुतः मरते हैं धीरे-धीरे। जीते नहीं हैं और मरने की इस लंबी प्रक्रिया को ही जीवन समझ लेते हैं।
जब मैं कहता हूं, प्रभु का द्वार, तो जानना कि मैं कह रहा हूं--जीवन का द्वार। जीवन की समग्रता का नाम ही परमात्मा है। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है कहीं बैठा हुआ कि आप जाएंगे और इंटरव्यू ले लेंगे, भेंट हो जाएगी। परमात्मा कहीं कोई व्यक्ति नहीं है जो बैठा हुआ है, आपकी प्रतीक्षा कर रहा है दरवाजे के भीतर कि आप दरवाजा खोलेंगे और वह मिल जाएगा। परमात्मा का अर्थ हैः यह जो जीवन का अनंत विस्तार है, यह जीवन का समस्त सारभूत है--इस सबको ही हम परमात्मा कह रहे हैं। जीवन के द्वार को खोल लेना ही परमात्मा के द्वार को खोलना है। और हमें अपने भीतर भी जो जीवन है इसका भी कोई पता नहीं है। अपने से ही अपरिचित हम जीते हैं, अनजान अपने से ही। इससे ज्यादा दुखद और अंधकारपूर्ण कुछ भी नहीं हो सकता है। और जिस आदमी को यह भी पता न हो कि मैं कौन हूं, उसे और क्या पता हो सकता है? उसका सारा ज्ञान इस मूल अज्ञान पर खड़ा होता है, इसलिए खतरनाक हो जाता है।
आज आदमी के पास बहुत ज्ञान है। ज्ञान की कमी नहीं है, सिर्फ एक ज्ञान छोड़ कर कि वह स्वयं कौन है? यह सारा ज्ञान अज्ञान की भित्ति पर खड़ा है। इसलिए खतरनाक है। सारी मनुष्य की सभ्यता, सारी संस्कृति, सारा समाज खतरे में है। किसी भी क्षण नष्ट हो जाए, क्योंकि अज्ञान के ऊपर ज्ञान की दीवाल खड़ी कर दी है। यह अज्ञान के ऊपर खड़ा हुआ ज्ञान का भवन आदमी को लेकर ही नष्ट होगा। अगर हम मौलिक अज्ञान को नहीं तोड़ते हैं। धर्म मनुष्य के भीतर वह जो मूलभूत अज्ञान है उसको तोड़ने की कला है। और परमात्मा कोई व्यक्ति का नाम

नहीं है, परमात्मा जीवन के समस्त का नाम है। उस समस्त के मंदिर में हम कैसे प्रविष्ट हो जाएं? मैं जब परमात्मा की बात कहता हूं, तो मेरा अर्थ किसी दुनिया को बनाने वाले व्यक्ति से नहीं है। दुनिया किसी ने कभी नहीं बनाई है। कोई बनाने वाला नहीं है। परमात्मा और सृष्टि ऐसी दो चीजें नहीं हैं। स्रष्टा और सृष्टि ऐसी दो चीजें नहीं हैं।
एक गायक गीत गाता है। एक चित्रकार चित्र बनाता है। चित्र अलग है, बनाने वाला अलग है। चित्र बन कर अलग हो जाता है, चित्रकार अलग हो जाता है। परमात्मा कोई ऐसी चीज नहीं है कि जगत और जीवन से अलग हो गई है। परमात्मा ऐसे है, उदाहरण के लिए समझाऊं, जैसे कोई नृत्यकार नाचता है, नाचना और नृत्यकार एक ही हैं, दो नहीं हैं। नाचने वाला बंद, नृत्य भी बंद। ऐसा नृत्य अलग खड़ा नहीं रह जाएगा नाचने वाले से। तो परमात्मा और उसका जगत ऐसी दो चीजें नहीं हैं, स्रष्टा और सृष्टि दो चीजें नहीं हैं। क्रिएटर और क्रिएशन दो चीजें नहीं हैं। क्रिएटर ही क्रिएशन है। क्रिएशन ही क्रिएटर है। क्रिएटिविटी वह जो सृजनात्मकता है, वही परमात्मा है। और इसलिए परमात्मा को खोजने कहीं और नहीं जाना है। यहीं है, अभी और यहीं है। मुझ में है। आप में हैं। सब में हैं, सब तरफ है। जो भी है वही है। और तब एक दूसरी दृष्टि होगी। परमात्मा को एक कोने में रखने के कारण हमारी सारी दृष्टि जगत से, परमात्मा से शून्य कर ली है। और कहीं एक मंदिर की एक मूर्ति में, कहीं आकाश में उसे बिठा रखा है।

एक मित्र ने पूछा है कि जब परमात्मा सब जगह है, तो वह मूर्ति में क्यों नहीं होगा?

बिल्कुल होगा। लेकिन जिसका आग्रह है कि मूर्ति में ही है, उसके लिए सब जगह नहीं हो सकेगा। और जिसके लिए सब जगह नहीं है, उसके लिए मूर्ति में भी नहीं हो सकता है। परमात्मा सब जगह है। निश्चित ही मूर्ति में भी आ गया। लेकिन जो कहता है, मूर्ति में ही है, उसके लिए सब जगह नहीं है। और जिसके लिए सब जगह नहीं है उसके लिए मूर्ति में भी नहीं हो सकता है। और जो कहता है, सब जगह है, वह मूर्ति को खोजने न जाएगा, जो मिल जाएगा वही परमात्मा है। वह मंदिर को खोजने नहीं जाएगा, क्योंकि सब उसका ही मंदिर है। फिर वह यह नहीं कहेगा कि यह मेरी मूर्ति रही, मैं इसकी पूजा करूंगा। पूजा किसकी करनी है फिर? जब सभी वही है। श्वास-श्वास वही है, कण-कण वही है, तो पूजा किसकी? मैं भी वही हूं, पूजा करे कौन? किसकी करे? यह जिसको पता हो जाएगा कि वह सब में है, वह मूर्ति की बातों में नहीं पड़ने वाला है।
लेकिन आदमी अपनी नासमझियों के लिए भी दलील खोजते हैं। सच तो यह है कि आदमी सिर्फ नासमझियों के लिए ही दलील खोजते चले जाते हैं। और अपनी नासमझियों को मजबूत करते चले जाते हैं। एक आदमी को मूर्ति पूजनी है, तो वह कहता है कि जब सब में है तो फिर मूर्ति में भी है। लेकिन सब में कभी देखा है? और अगर मूर्ति को कोई आदमी तोड़ रहा हो, तो उसमें भी दिखेगा जो तोड़ रहा है, और मूर्ति को कोई लात मार रहा हो, तो उसमें भी दिखेगा जो लात मार रहा है। उसमें नहीं दिखेगा फिर, वह लात मारने वाले की गर्दन पकड़ लेगा, यह मूर्ति का पूजक। उसमें दिखना मुश्किल हो जाएगा। वह कह रहा है कि सब में हैं। सब में कहा है, लेकिन हिंदू को मुसलमान में दिखता है, मुसलमान को हिंदू में दिखता है। कहा है सब में है, लेकिन सब में दिखता कहां है? ये सब दलीलें खतरनाक सिद्ध हो जाती हैं, अपना मतलब सिद्ध करने लगती हैं। जब सब में है तो फिर मूर्ति में भी है। फिर मूर्ति की पूजा के लिए किसलिए जा रहे हो सुबह-सुबह? कहां चले जा रहे हो, सबको छोड़ कर वहां कहां जा रहे हो? जब एवरीवेयर है, तो समवेयर की दृष्टि छोड़ देनी पड़ेगी। जब कोई कहता है कि सब जगह है, तो कहीं होने का ख्याल छोड़ देना पड़ेगा। जब सब जगह है तो फिर कहीं होने का कोई सवाल नहीं रहा। कोई प्रश्न न रहा, कोई प्रयोजन न रहा, लेकिन हम क्या करते हैं? हम बड़ी-बड़ी बातों के आधार पर बड़ी छोटी-छोटी बातें सिद्ध करते हैं और उन छोटी-छोटी बातों को पकड़ कर बड़ी-बड़ी बातों की हत्या करते हैं।

मैं नहीं कहता हूं कि मूर्ति में नहीं है। और जब मैं कहता हूं कि मूर्ति में नहीं है, तो मेरा मतलब सिर्फ इतना ही है कि जिसे मूर्ति में ही दिखता है वह गलत देख रहा है। सब जगह दिखे, फिर तो मूर्ति में भी है।
मैंने सुना है, एक फकीर एक रात एक मंदिर में ठहरा। रात सर्द है, अंधेरी रात है। वह सर्दी से कंप रहा है, वह भीतर गया। पुजारी सो गया है। भगवान बुद्ध की मूर्तियां रखी हैं तीन। लकड़ी की मूर्तियां हैं। एक मूर्ति उठा लाया और आग लगा कर आग सेंकने लगा। मूर्ति को तापने लगा। आग जली देख कर मंदिर में मंदिर का पुजारी भागा आया, देखा तो भगवान की मूर्ति जल रही है और फकीर आंच ताप रहा है। उस पुजारी ने कहाः पागल हो, यह क्या कर रहे हो? यह क्या अनर्थ कर डाला? भगवान की मूर्ति जला रहे हो? फकीर ने चुपचाप सुना, उसने कहाः भगवान की मूर्ति! बड़ा अच्छा बताया। एक पास में पड़ी हुई लकड़ी को उठा कर उसने उस राख को कुरेदा जो जल गई थी। उस पुजारी ने पूछाः क्या खोजते हो? उसने कहाः भगवान की अस्थियां खोजता हूं। उस पुजारी ने कहाः तब निपट पागल हो। लकड़ी की मूर्ति में कहां अस्थियां? तो वह फकीर हंसने लगा, उसने कहाः रात बहुत लंबी और सर्दी बहुत ज्यादा है, दो मूर्तियां और भीतर रखी हैं, तुम उठा लाओ, उनको भी हम जला लें और ताप लें। मंदिर के पुजारी ने और पुजारियों को जगा लिया और उस फकीर को धक्के देकर बाहर निकाल दिया। वह फकीर हंसता हुआ बाहर निकल गया। वे पुजारी शायद ही समझ पाए होंगे उसकी हंसी। सुबह बहुत हैरान हुए। सुबह जब सूरज निकला है, वह फकीर सड़क के किनारे बैठा है हाथ जोड़े। राह से जो भी निकल रहा है सबके लिए हाथ जोड़े बैठा है। सामने एक पत्थर पड़ा है, उसके लिए भी हाथ जोड़े बैठा है, ऊपर सूरज निकल रहा है, उसके लिए भी हाथ जोड़े बैठा है। उन पुजारियों ने जाकर कहा कि पागल, अब क्या कर रहा है यहां? उसने कहाः पूजा कर रहा हूं। किसकी पूजा कर रहा है? उसने कहाः भगवान की पूजा कर रहा हूं। भगवान कहां है? उसने कहाः यह सब जो चारों तरफ फैला है, और क्या है? वे कहने लगे, रात मूर्ति जला दी नासमझ! और अब जहां कुछ भी मूर्ति नहीं है वहां पूजा कर रहा है? उसने कहाः मूर्ति जलाई थी ताकि तुम्हारा भ्रम जल जाए। मूर्ति से मुझे क्या लेना-देना है! मूर्ति जलाई थी, ताकि तुम्हें ख्याल आ जाए कि कहीं तुम लकड़ी को ही तो नहीं पूज रहे हो। तुम्हें भगवान दिखा है? अगर लकड़ी में दिख जाता तो सब जगह दिख जाता, लेकिन कहीं नहीं दिखा। लकड़ी में सिर्फ मान कर बैठे हो। और जब मैं अस्थियां खोजने लगा, तब तुम हंसने लगे कि पागल हो।
यह जो मूर्ति को पूज रहे हैं, इन्हें कोई भगवान दिखता हो, ऐसा मत समझ लेना। और मैं जो मूर्ति के खिलाफ बोल रहा हूं, तो ऐसा मत समझ लेना कि भगवान के विरोध में बोल रहा हूं। भगवान के प्रेम में बोल रहा हूं। और अगर भगवान को लाना है, तो भगवान के नाम पर चलने वाली नासमझियों को अत्यंत शीघ्रता से बंद कर देना जरूरी है। कई बार ऐसा होता है कि शत्रु मित्र मालूम पड़ते हैं और मित्र शत्रु मालूम पड़ते हैं। आज जो भगवान की मूर्तियों के पास खड़े हैं, वे भगवान के मित्र मालूम पड़ते हैं। और सचाई यह है कि उनसे ज्यादा भगवान की शत्रुता और कोई भी नहीं कर रहा है। क्योंकि भगवान के नाम पर जिस ढोंग को, जिस पाखंड को खड़ा किया जा रहा है, जिस धंधे को, जिस व्यवसाय को चलाया जा रहा है, वह न मालूम कितने लोगों को भगवान से विमुख करने का कारण बन रहा है। मंदिरों की तरफ आंख उठा कर, तीर्थों की तरफ आंख उठा कर कोई बुद्धिमान आदमी भगवान की दिशा में जाने की हिम्मत नहीं कर सकता है। वह कहेगा, अगर यही सब भगवान के नाम पर हो रहा है तो मैं क्षमा चाहता हूं। भगवान के नाम पर जो होता रहा है आज तक, सब तरह के शोषण का समर्थन हो रहा है भगवान के नाम पर। सब तरह की गरीबी बचाई जा रही है भगवान के नाम पर। सब तरह की बेईमानी को सुरक्षा दी जा रही है भगवान के नाम पर! सब तरह की धन-संपत्ति के सारे के सारे उपद्रव की रक्षा की जा रही है भगवान के नाम पर।
तो जिस आदमी को भी यह सब जाल दिखाई पड़ेगा, वह चौंक कर कहेगा कि यह सब भगवान का नाम और भगवान की बातचीत सब अफीम है। इस सबसे छुटकारा चाहिए। लेकिन वह आदमी भी गलती कर रहा है, वह जल्दी कर रहा है। वह धर्म के दुश्मनों को धर्म का मित्र समझ रहा है और धर्म के मित्र समझ कर धर्म का दुश्मन हुआ जा रहा है।

मेरी स्थिति बहुत अजीब हो गई है। धर्म से मुझे प्रेम है और धर्म के नाम पर चलते पाखंड से घृणा है। और तब ऐसा लगता है कि शायद मैं धर्म के विरोध में बोल रहा हूं। तब ऐसा लगता है कि शायद मैं अधार्मिक हूं। तब शायद ऐसा लगता है कि शायद मैं दुनिया से धर्म को मिटा देना चाहता हूं। मैं चाहता हूं कि दुनिया में धर्म आए, लेकिन धर्म के नाम पर जो व्यवसाय खड़ा हुआ है, वह दुनिया में धर्म नहीं आने दे रहा है। और उसका जाल इतना लंबा है और उसकी बातें इतनी पुरानी हैं, और उसकी परंपरा इतनी गहरी और जड़ों तक घुस गई है, कि हम भूल ही गए हैं कि वह कहां-कहां हमारे खून में संयुक्त हो गया है। इस सबसे जागे बिना पृथ्वी धार्मिक नहीं हो सकती। आज तक पृथ्वी धार्मिक नहीं हो सकी है। अगर पृथ्वी धार्मिक होती, तो यह सब होता जो हो रहा है? अगर पृथ्वी धार्मिक हो, तो समाजवाद की जरूरत है? साम्यवाद की जरूरत है?

एक दूसरे मित्र ने पूछा है, तो मैं वह प्रश्न भी ले लूं।
उन्होंने पूछा हैः क्या आप कम्युनिस्ट हैं?

अगर दुनिया धार्मिक हो तो कम्युनिज्म की कोई भी जरूरत नहीं है। और जब
तक दुनिया अधार्मिक है, कम्युनिज्म की जरूरत पड़ेगी। दुनिया अगर धार्मिक हो तो गरीबी कभी की मिट जानी चाहिए थी, क्योंकि धार्मिक आदमी इतनी गरीबी, इस कुरूपता को बरदाश्त नहीं कर सकते हैं। लेकिन संत-महात्मा बड़े मजे से बरदाश्त कर रहे हैं। न केवल बरदाश्त कर रहे हैं बल्कि इस गरीबी को तर्क दे रहे हैं कि यह क्यों है? वे समझाते हैं कि गरीबी इसलिए है कि पिछले जन्मों का पाप कर्म है तुम्हारा, इसलिए तुम गरीब हो। गरीबी को बचाने के लिए ये बफर्स उपयोग किए जा रहे हैं। ट्रेन में देखा है न। ट्रेन के दो डिब्बों के बीच में बफर लगे रहते हैं, शॉक-एब्जार्बर लगे रहते हैं। कितना ही धक्का लगे गाड़ी को, डिब्बों के भीतर के यात्री को पता नहीं चलता। शॉक-एब्जार्बर धक्का पी जाता है। कार के नीचे स्प्रिंग लगे हुए हैं, कितने ही रास्ते पर गड्ढे आ जाएं, भीतर के यात्री को कम से कम पता चलता है, स्प्रिंग सारा धक्का पी जाता है।
हिंदुस्तान में तथाकथित धार्मिकों ने ऐसे सिद्धांत ईजाद किए हैं जो शॉक-एब्जार्बर का काम कर रहे हैं। जिंदगी कितनी ही कुरूप और गंदी हो जाए, शॉक-एब्जार्बर सब पी जाता है। कर्म का सिद्धांत ऐसा ही खतरनाक शॉक-एब्जार्वर है। वह कहता है, तुमने पिछले जन्म में पाप किए, इसलिए तुम गरीब हो। और सच्चाई यह है कि समाज अभी पाप कर रहा है, इसलिए अधिक लोग गरीब हैं। किसी के पिछले जन्म के पाप के कारण नहीं। समाज के सामूहिक पाप के कारण आदमी गरीब है। अगर धर्म सीधी और सच्ची बात कह सकता, और अगर संतों और महात्माओं ने जाने या अनजाने न्यस्त स्वार्थों की रक्षा न की होती, तो दुनिया में कम्युनिज्म की कभी भी कोई जरूरत न पड़ती। कम्युनिज्म की जरूरत पड़ रही है क्योंकि पृथ्वी धार्मिक नहीं हो सकी है। और धर्म अधार्मिक ठेकेदारों के हाथ में है। आज भी वे ही लोग सारी जमीन पर धर्म को पकड़े हुए हैं। उसकी गर्दन को पकड़े हुए हैं। यह ख्याल कि एक-एक आदमी अपने कर्मों का फल भोग रहा है, अत्यंत खतरनाक सिद्ध हुआ है। हम सब सामूहिक कर्मों का फल भोग रहे हैं।
मैंने एक कहानी सुनी है। एक फकीर एक मस्जिद के नीचे से गुजर रहा है। मुल्ला अजान देने को चढ़ा है मस्जिद के टॉवर पर और गिर पड़ा। लंबी मीनार है। फकीर नीचे से जा रहा है। वह उसकी गर्दन पर गिरा। मुल्ला तो बच गया--गिरने वाला, फकीर की गर्दन टूट गई। उसे अस्पताल में भरती किया गया। उसके शिष्य उसके पास गए। और शिष्य जानते थे कि उनका वह जो गुरु है, वह जो फकीर है, वह हर छोटी-मोटी चीज में बड़ी ही गहरी छान-बीन करता है। तो वे गए और उन्होंने पूछा कि हम एक बात पूछने आए हैं, आपके इस गर्दन टूट जाने में भी कोई राज आपने खोजा? कोई मिस्टरी? उसने कहाः बराबर खोजा। यह बात सिद्ध हो गई कि गिरे कोई, गर्दन किसी और की टूट सकती है। अब तक मैं यही सोचता था कि जो गिरेगा उसकी गर्दन टूटेगी। अब मैं मान गया कि गिरे कोई और, गर्दन किसी और की टूट सकती है। न हम गिरे, गर्दन हमारी टूट गई है। पाप कोई और कर रहा है, फल कोई और झेल

रहा है। वह बात गलत हो चुकी कि तुमने पाप किए हैं और तुम फल भोग रहे हो। वह इनडिविजुअलिटी का ख्याल। व्यक्ति, अहंकार का ख्याल कि एक-एक व्यक्ति अलग जी रहा है, बुनियादी रूप से झूठ है। सारे व्यक्तियों का जीवन अंतर्संबंध है, इंटररिलेशनशिप है। हम सब इकट्ठे पाप भोगते हैं, इकट्ठे पुण्य भोगते हैं।
लेकिन धर्म ने एक-एक व्यक्ति को और धर्म ने हजारों दफे समझाया कि अहंकार झूठ है। और फिर भी जाने-अनजाने अहंकार को ही बल दिया है। और कहा है कि तू अपने फल भोग रहा है, मैं अपने फल भोग रहा हूं। और अगर हर आदमी अपने फल भोग रहा है तो ऐसी विचारधारा में समाज की धारणा का जन्म ही नहीं हो सकता है। समाज का कोई अर्थ ही नहीं है। व्यक्तियों की भीड़ है, समाज नहीं है। धर्म ने जमीन को व्यक्तियों की भीड़ बना दिया है, समाज नहीं। भीड़ तो तभी बनेगी समाज जब हम अतर्संबंधित हैं। जब हम एक-दूसरे के साथ ही जी रहे हैं और भोग रहे हैं।
इस देश में इतना जो निपट स्वार्थ दिखाई पड़ता है, उसके पीछे धार्मिक लोगों की शिक्षाएं हैं। इतना जो निपट स्वार्थ और एक-एक आदमी अपनी-अपनी फिकर में। और किसी को किसी से कोई प्रयोजन नहीं। इसके पीछे बुरे लोगों का हाथ नहीं तथाकथित अच्छे लोगों का हाथ है। क्योंकि वे यह सिखा रहे हैं कि एक-एक व्यक्ति अपना-अपना मोक्ष खोजे, अपने-अपने पापों को काटे, अपने-अपने पुण्य इकट्ठे करें। समाज जैसी कोई चीज नहीं है, हम जुड़े नहीं हैं, हम सब अलग-अलग अपनी-अपनी यात्रा कर रहे हैं। इस धारणा ने हिंदुस्तान के सामाजिक जीवन को एक पागलखाना, एक कुरूपता, एक अत्यंत ही गंदा गड्ढा बना दिया है। क्योंकि हर आदमी अपनी फिकर कर रहा है। अपनी फिकर कर रहा है।
जिस दिन जीसस को सूली लगी, जिस दिन जीसस को फांसी लगी, शायद आपको पता न हो, एक आदमी को उसी दिन दाढ़ में दर्द हो रहा था, उसी गांव में। जीसस को सूली लग रही है, दुनिया के एक प्यारे से प्यारे आदमी को आज सूली पर लटकाया जाने वाला है, और एक आदमी की रात से दाढ़ में दर्द हो रहा है, दांत दुख रहा है। वह सुबह से उठ कर--जो भी उसके पास आता है, लोग कहते हैं, सुना तुमने, वह मरियम के बेटे जीसस को सूली लगने वाली है। वह कहता है, हां, सुना है। रात भर सो नहीं सका, दाढ़ में बड़ा दर्द हो रहा है। दाढ़ बड़ी दुखती है, फलां दवा लगाई थी, वह कोई काम नहीं करती। वे आदमी कहते हैं, ठीक है, दाढ़ है, ठीक हो जाएगी। लेकिन वह मरियम के बेटे को सूली लग रही है। वह कहता है, होगा, लेकिन मेरी दाढ़ में बहुत दर्द हो रहा है। जो भी आता है वह उससे कहता है, मरियम के बेटे को सूली लग रही है। और वह कहता है, होगा, ठीक है, सुना है मैंने, लेकिन मेरी दाढ़ में बड़ा दर्द हो रहा है। रात भर से मेरी दाढ़ दुख रही है।
आदमी हैरान है! वह कहता है कि ठीक है, दाढ़ है, ठीक हो जाएगी। वह कहता है, बड़ी तकलीफ है। रात भर करवटें बदलता रहा, सो नहीं सका। दाढ़ में बड़ी तकलीफ है। गांव में जीसस को सूली लग रही है, एक आदमी की दाढ़ में तकलीफ है! उसे अपनी दाढ़ के अतिरिक्त कुछ भी नहीं दिखाई पड़ रहा है।
हिंदुस्तान में हर आदमी की दाढ़ में तकलीफ है। और पूरे हिंदुस्तान को सूली लग रही है। और हर आदमी अपनी दाढ़ की बात कर रहा है। और हिंदुस्तान को एकाध दिन में सूली नहीं लग रही है। आदमी एकाध दिन में सूली पर चढ़ता है। देश हजारों साल तक सूलियों पर लटके रहते हैं। हिंदुस्तान हजारों साल से सूली पर लटका हुआ है, लेकिन हर आदमी की दाढ़ दुख रही है। लगने दो सूली, हमारी दाढ़ में दर्द है। उसका कुछ इंतजाम करना है। हर आदमी अपनी दाढ़ की बात कर रहा है। और यह सिखाया है तथाकथित धार्मिक लोगों ने। हिंदुस्तान के जितने भी श्रेष्ठ लोग कभी भी हुए हों--कोई बुद्ध, कोई महावीर, वे सभी एक अर्थों में कम्युनिस्ट थे। कोई अच्छा आदमी कम्युनिस्ट हुए बिना नहीं बच सकता है। नहीं बच सकता है कम्युनिस्ट हुए बिना। कम्युनिस्ट हुए बिना सिर्फ वही बच सकते हैं जो आंखें बिल्कुल अंधी किए हैं या सब तरफ से अपने को बेईमानी और धोखा देने में संलग्न हैं।
कोई आदमी इस बात से कैसे बच सकता है कि हर आदमी को समान होने का अवसर मिले। कोई आदमी इस बात से कैसे बच सकता है कि हर आदमी को समान विकास का अवसर मिले। कोई आदमी इस बात से कैसे बच सकता है कि आदमी-आदमी की कीमत बराबर

हो। कोई आदमी इस बात से कैसे बच सकता है कि मनुष्य का समाज वर्गों में विभक्त न हो। कोई बुद्धिमान आदमी, कोई विचारशील आदमी, कोई चरित्रवान आदमी कम्युनिस्ट हुए बिना नहीं बच सकता है।
लेकिन कम्युनिस्ट होने से मेरा मतलब नहीं है कि कोई मार्क्स का अनुयायी होकर अंधा हो जाए। कम्युनिस्ट होने से मेरा मतलब नहीं है कि कोई माओ का पागल हो जाए। कम्युनिस्ट होने से मेरा मतलब नहीं है कि कोई स्टैलिन और ट्राटस्की के पीछे अंधा होकर चलने लगे। जो अंधे होकर इस तरह चलते हैं उन्हें कम्युनिज्म से बहुत कम मतलब है। वे पुराने तरह के विश्वासी लोग हैं, जिन्होंने नये गुरुओं को पकड़ लिया है। वे पुराने तरह के विश्वासी लोग हैं जो पहले राम को पकड़ कर चलते थे, कृष्ण को पकड़ कर चलते थे, क्रोध में उन्होंने राम और कृष्ण को छोड़ दिया, लेकिन पकड़ने का ढंग वही है। उन्होंने अब मार्क्स को पकड़ लिया। अब माओ को पकड़ लिया। पहले वह गीता को, बाइबिल को पकड़ते थे, अब उन्होंने कैपिटल को कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो को पकड़ लिया। लेकिन पकड़ने का ढंग वही है। कुरान को पकड़ने का जो ढंग है मुसलमान का, तथाकथित कम्युनिस्ट का कैपिटल को पकड़ने का ढंग वही है। उसकी बुद्धि वही है। वह कहता है, हमारी किताब में जो लिखा है वह सच है। वह कहता है, हम जो कहते हैं वह ठीक है। वह कहता है, इतिहास की परिपूर्ण वैज्ञानिक व्याख्या हमने कर दी। अब इससे अन्यथा कुछ भी नहीं हो सकता है।
इन अंधे लोगों को अगर आप कम्युनिस्ट कहते हैं, तो मैं कम्युनिस्ट बिल्कुल नहीं हूं। अगर आप उनको कम्युनिस्ट कहते हैं, जो सोचते हैं कि हम आदमी को--जबरदस्ती आदमी की व्यवस्था को, समाज की जीवन-व्यवस्था को--एक छोटा सा अल्पमत बहुमत को जबरदस्ती छाती पर हावी होकर छुरे की धार पर बदल दें, तो मैं कम्युनिस्ट नहीं हूं। क्योंकि मैं मानता हूं कि किसी अल्पमत को कभी यह हक नहीं है कि वह चाहे बहुमत के हित में ही, बहुमत के साथ जबरदस्ती करे। अब तक दुनिया में अल्पतम ने हमेशा बहुमत के साथ जबरदस्ती की है।
एक मुसलमान है, वह सोचता है कि अगर सारे लोग मुसलमान हो जाएं तो उनका हित होगा। और वह ईमानदारी से सोच सकता है। सिंसियर हो सकता है सोचने में कि हर आदमी को मुसलमान होना चाहिए। नहीं तो ये बेचारे स्वर्ग जाने से वंचित रह जाएंगे। नरक नहीं जा सकेंगे। वह तलवार उठा कर आपकी छाती पर चढ़ जाता है। और कहता है कि तुम मुसलमान हो जाओ नहीं तो तुम नरक चले जाओगे। मैं तुम्हारे हित के लिए कहता हूं कि तुम्हें मुसलमान हो जाना चाहिए। नहीं मानोगे तो जबरदस्ती तुम्हें मुसलमान बनाऊंगा। वह जो काम कर रहा था वही वे कम्युनिस्ट कर रहे हैं जो समाज की छाती पर जबरदस्ती और हिंसा के द्वारा समानता लाना चाहते हैं।
हिंसा से समानता नहीं आ सकती। क्योंकि हिंसा मौलिक रूप से असमानता का आधार है। जो आदमी हिंसा करता है और जिसके साथ हिंसा होती है--जिसके साथ हिंसा होती है वह नीचे दब जाता है और जो हिंसा करता है वह ऊपर उठ जाता है। दो वर्ग फिर खड़े हो जाते हैं। हिंसा करने वाला मालिक हो जाता है, जिसके साथ हिंसा की जाती है वह फिर दरिद्र हो जाता है। वह फिर दीन हो जाता है। वह फिर दब जाता है। रूस में क्रांति हुई, चीन में क्रांति हुई, लेकिन ये क्रांतियां उस कम्युनिज्म को अभी नहीं ला पाएंगी जिसकी मैं आकांक्षा करता हूं। ये क्रांतियां पूंजीवाद की, बीमारी को बदलने की पागल कोशिशें हैं। इन क्रांतियों से पूंजीवाद का वर्ग विभाजन टूटेगा। नया वर्ग विभाजन खड़ा हो जाएगा। वह रूस में भलीभांति खड़ा हो गया है। जो कल मालिक था वह अब मैनेजर है। जो कल मजदूर था वह अब भी मजदूर है। उन दोनों के बीच के फासले कम हुए हैं। तनख्वाह का फर्क कम हुआ है, लेकिन प्रतिष्ठा में और प्रतिष्ठा के भेद में कोई फर्क नहीं पड़ा।
और ध्यान रहे, आदमी धन भी इसलिए इकट्ठा करता है कि धन प्रतिष्ठा लाता है। अगर प्रतिष्ठा लाने की दूसरी तरकीबें मिल जाएं तो आदमी धन भी इकट्ठा नहीं करेगा। रूस में कम्युनिस्ट पार्टी के मेम्बर की जो प्रतिष्ठा है वह प्रतिष्ठा गैर-कम्युनिस्ट की नहीं है। और गैर-कम्युनिस्ट होने की हिम्मत जुटानी भी बहुत मुश्किल है।

मैंने सुना है, ख्रुश्चेव जब हुकूमत में आया। एक मजाक मैंने सुनी है। मैंने सुना है कि ख्रुश्चेव रूस की कम्युनिस्ट पार्टी के सारे बड़े लोगों के बीच स्टैलिन की निंदा कर रहा है। जोर से गालियां दे रहा है और कह रहा है कि स्टैलिन ने यह बुरा किया, यह बुरा किया, यह बुरा किया। एक आदमी पीछे से पूछता है कि आप स्टैलिन के साथ जिंदगी भर रहे। स्टैलिन के मरने पर आप यह बातें क्यों कह रहे हैं? जब स्टैलिन जिंदा था, तब आपने क्यों नहीं कहा? ख्रुश्चेव एक सेकेंड को चुप हो गया, और फिर उसने कहाः जो महाशय यह पूछते हैं, कृपया खड़े होकर अपना नाम बता दें। कोई खड़ा नहीं हुआ। किसी ने नाम नहीं बताया। ख्रुश्चेव ने कहाः समझे, जिस कारण से तुम खड़े नहीं हो रहे और नाम नहीं बता रहे, उसी कारण से मुझे भी चुप रह जाना पड़ा।
ठीक है, पूंजीवाद की एक तकलीफ है। गरीब और अमीर के बीच एक फासला है, वह मिटना चाहिए। लेकिन अगर नया फासला खड़ा हो जाए तो हमने बीमारी बदल ली, और कुछ भी नहीं किया। नया फासला रूस में खड़ा हो गया। वह नया फासला चीन में भी खड़ा हो गया है। एक प्रयोग किया उन्होंने हिम्मत का और उस हिम्मत के प्रयोग के लिए जितनी दाद दी जाए उतनी थोड़ी है, लेकिन वह प्रयोग असफल हो गया, कम्युनिज्म आ नहीं सका। कम्युनिज्म को आने में और वक्त लग जाएगा। और देर लग जाएगी। साम्यवाद तो तभी आ सकेगा, जब साम्यवाद का जीवन-दर्शन एक-एक व्यक्ति के प्राणों में प्रविष्ट हो जाए। और साम्यवाद का जीवन-दर्शन तभी प्रविष्ट हो सकता है जब प्रत्येक व्यक्ति को यह ख्याल हो जाए कि मुझे न छोटा होना है, न बड़ा होना है। वह जो एंबीशन है एक-एक आदमी के भीतर बड़े होने की, अगर वह नहीं मिटती है तो दुनिया में साम्यवाद कितनी ही कोशिश से ले लाओ, जैसे ही कोशिश ढीली होगी, फिर पूंजीवाद आना शुरू हो आएगा।
वह जो आदमी के भीतर महत्वाकांक्षा है, जब तक नष्ट न हो जाए, तब तक साम्यवाद स्थापित नहीं हो सकता।
और मेरा मानना है कि धर्म अकेला एक विज्ञान है, जो मनुष्य के भीतर महत्वाकांक्षा को नष्ट करने की कोशिश करता है। और इसलिए मैं यह कहना चाहता हूं कि धर्म जब पृथ्वी पर आएगा पूरी तरह, उसके साथ ही साम्यवाद भी आ सकता है, उसके पहले नहीं।
और ध्यान रहे, जब तक धार्मिक आदमी कम्युनिस्ट नहीं होगा तब तक कम्युनिज्म झूठे कम्युनिस्टों के हाथ में रहेगा। और झूठे कम्युनिस्ट उतने ही खतरनाक सिद्ध होने वाले हैं जितना कि पूंजीपति सिद्ध हुआ है, सांमतवादी सिद्ध हुए हैं। ठीक कम्युनिज्म, ठीक कम्युनिस्ट पैदा करना जरूरी है।
और इसलिए मैं मानता हूं कि वे लोग जो परमात्मा को प्रेम करते हैं, उसकी खोज करते हैं, जो एक-एक आदमी के भीतर परमात्मा की झलक देखते हैं, जब तक वे कम्युनिस्ट नहीं हो जाते, तब तक कम्युनिज्म के लिए कोई भाग्यपूर्ण अवसर नहीं है। मैं कम्युनिस्ट हूं, लेकिन मेरा अर्थ आप समझ लेना। और मैं मानता हूं, कोई भी धार्मिक आदमी बिना कम्युनिस्ट हुए बिना कैसे रह सकता है? क्राइस्ट भी कम्युनिस्ट हैं, और बुद्ध भी, और महावीर भी, और लाओत्सु भी, और शंकर भी। सब विचारशील लोग जगत के कम्युनिस्ट ही रहे हैं। चाहे कम्युनिज्म का शब्द उस दिन रहा हो या न रहा हो। जिन लोगों ने भी यह कामना की है और प्रार्थना की है कि सबका कल्याण हो। और जिन लोगों ने भी यह चाहा है कि सब समान हों। और जिन लोगों ने भी सपने देखे हैं कि वह वक्त आ जाए कि कोई आदमी ऊंचा न हो, कोई आदमी नीचा न हो। और जिन्होंने भी यह दर्शन किया है कि सबके भीतर एक ही परमात्मा विराजमान है। वे सब कम्युनिस्ट हैं।
लेकिन जिसे हम कम्युनिस्ट कहते हैं, उसको परमात्मा से भी कोई मतलब नहीं। उसे आत्मा से भी कोई मतलब नहीं। उसे बहुत गहरे में हम देखें, तो मनुष्य की समानता से भी कोई मतलब नहीं है। क्योंकि जिसका हिंसा में विश्वास है उसका असमानता में विश्वास है। जिसका जबरदस्ती में विश्वास है उसे आदमियों के भीतर जो स्वतंत्र चिंतना है उस पर विश्वास नहीं है। वैसा मैं कम्युनिस्ट नहीं हूं। और वैसे कम्युनिस्टों से निरंतर लड़ता रहूंगा। इसलिए मेरी लड़ाई भी बड़ी मुश्किल की है--कम्युनिज्म के लिए लड़ना है और कम्युनिस्टों से लड़ना है। धर्म के लिए लड़ना है और धार्मिकों से लड़ना है।

आस्तिकता के लिए लड़ना है और आस्तिकों से लड़ना है। तब बड़ी मुश्किल हो जाती है। तब बड़ी कठिनाई हो जाती है।

एक और मित्र ने पूछा है कि मैंने सुबह कहा कि परमात्मा को खोजना हो तो विश्वास के द्वार से नहीं खोज सकते हैं। तो वे कहते हैं कि अगर हम विश्वास न करेंगे, तब तो छोटे-छोटे काम करने भी मुश्किल हो जाएंगे?

बड़ी मजे की बात है। मैंने आपसे कब कहा कि छोटे-छोटे काम के दरवाजे पर
भी लिखा है कि विश्वास नहीं है। मैंने कब कहा, उन मित्र ने पूछा है कि कार चलानी है तो विश्वास करना पड़ेगा कि इंजन चलेगा। बड़े मजे से कार चलाइए और बड़े मजे से विश्वास करते रहिए। लेकिन भगवान की तरफ जाने को, कार का चलाना मत समझ लेना। उन्होंने लिखा है कि दुकान पर जाएंगे और चीज खरीदेंगे तो दुकानदार पर विश्वास करना पड़ेगा कि वह ठीक ही बता रहा है। बिल्कुल ठीक कह रहे हैं आप, बिल्कुल विश्वास करना। हालांकि इस मुल्क में हालतें नहीं रह गईं कि दुकानदार पर विश्वास किया जाए। लेकिन फिर भी करना। नहीं तो काम चलना मुश्किल हो जाएगा। लेकिन परमात्मा किसी दुकान पर बिकने वाली चीज नहीं है कि आप खरीदने जाएं और पुरोहित पर विश्वास करें। मैंने परमात्मा के लिए कहा है। और वे कह रहे हैं कि दुकान पर चीज खरीदनी होगी तो विश्वास करना पड़ेगा।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि यह तो मानना ही पड़ेगा कि पिता हमारा पिता है, क्योंकि हमें कैसे पक्का पता चल सकता है?

अगर यह मानना पड़ता है आपको कि पिता-पिता है, तो भी आपको शक तो है ही। पता कहां चल गया है? अमरीका में एक युवक एक आंदोलन चला रहा है, शायद आपको पता न हो, हिम्मतवर युवक होगा। एक आंदोलन चला रहा है कि स्कूलों में, कालेजों में कहीं भी किसी फार्म पर पिता का नाम मैं नहीं भर सकता हूं, सिर्फ मां का नाम भर सकता हूं। क्योंकि पिता का नाम विश्वास योग्य नहीं है। ठीक कह रहा है वह। इस मुल्क में भी लड़के समझदार होंगे तो यह कहेंगे कि हम मां का नाम भरेंगे, पिता का नाम नहीं भर सकते। पिता बिल्कुल ही एक तो गैर-जरूरी है, एडीशनल है। पिता कोई बहुत एसेंशियल नहीं है मामला। असली बात तो मां है। लेकिन स्त्री की चूंकि प्रतिष्ठा नहीं है, इसलिए पिता का नाम लिखा जा रहा है जगह-जगह। लिखा तो जाना चाहिए मां का नाम ही। ठीक-ठीक उसका ही पता है। पिता का तो ठीक-ठीक पता नहीं है। लेकिन पिता ने कब्जा कर रखा है औरतों पर। औरतों तक का नाम पति के नाम से जाना जा रहा है। बेटे का नाम भी पिता के नाम से जाना जा रहा है। यह पिता का शोषण बहुत हो चुका। अच्छी दुनिया बनेगी तो पिता तो खो जाएगा। पिताओं को सावधान रहना चाहिए। पिता बहुत दिन चलने वाले नहीं हैं आगे। मां रहेगी, मां की प्रतिष्ठा होगी। मां बचनी चाहिए। वही सच है। और वही ठीक भी है।
तो आप ठीक पूछते हैं। लेकिन काम चलाने के लिए आप झंझट में मत पड़ना। पिता को माने चले जाना। लेकिन, यह परमात्मा को खोजना पिता के मानने जैसा झूठ नहीं है। परमात्मा को खोजना है, लेकिन कुछ नासमझों ने परमात्मा को पिता की शक्ल दे रखी है। वे कहते हैंः गॉड दि फादर। हद हो गई। यह पिता ही बहुत खतरनाक है, और तुम परमात्मा को भी पिता बनाने की कोशिश में लगे हो? लेकिन चूंकि पुरुषों का समाज है, इसलिए पुरुषों ने परमात्मा को भी अपनी शक्ल में निर्मित किया है। वे कहते हैं, पिता है परमात्मा। यह पिता परमात्मा भी इसी तरह विश्वास का आधार बना हुआ है जिस तरह खुद पिता बने हुए हैं।
नहीं; परमात्मा पिता नहीं है--परमात्मा न पिता है, न पुत्र है, न मां है। परमात्मा तो समग्र अस्तित्व है। उस अस्तित्व को खोजना पड़ेगा, मानना नहीं पड़ेगा। वह जो मैंने कहा, विश्वास मत करना, वह इसलिए नहीं कि तुम परमात्मा से छूट जाओ, बल्कि इसलिए ताकि तुम पहुंच सको उस तक। और जब तक विश्वास किए हुए हम बैठे हैं, वह विश्वास हमारी धारणा है, उससे ज्यादा

नहीं है। हमारी जैसी तबीयत है हम वैसा माने बैठे हैं। हमें जो प्रचारित किया है वह हमने मान लिया है। आप परमात्मा को मानते क्यों हैं? बचपन से प्रचारित किया गया है, समझाया गया है, वह है। बीमारी में, सुख-दुख में हाथ जुड़वाए गए हैं, वह है। परीक्षा में, डर में, भय में कहा गया है, वह है। वह बैठ गया है भीतर, वह बैठता चला गया है भीतर। एक प्रोपेगेंडा है, वह भीतर बैठ गया है। उसने एक धारणा पकड़ ली है। फिर आप कहते हैं कि मैं परमात्मा को मानता हूं। आपके भीतर से सिर्फ प्रचार बोल रहा है। आप रूस में पैदा हों तो वहां दूसरा प्रचार चल रहा है कि परमात्मा नहीं है। तो वहां के बच्चे के दिमाग में यह बैठ गया है कि परमात्मा नहीं है। वह भी विश्वासी है, आप भी विश्वासी हैं। और कोई विश्वासी कभी प्रभु के मंदिर में प्रवेश नहीं पा सकता है। एक नास्तिक विश्वासी है, एक आस्तिक विश्वासी है। विश्वासी कभी नहीं पहुंच सकता है वहां। वहां तो वे पहुंचते हैं जो विचार करते हैं, जो खोजते हैं। लेकिन हम विश्वास क्यों कर लेते हैं इतनी जल्दी? कुछ कारण होगा। यह परमात्मा को बिना देखे बिना जाने विश्वास कैसे कर लेते हैं? कुछ वजह है।
और वजह है। हमें इतना आत्मविश्वास नहीं कि हम खोज सकें। आत्मविश्वास
की कमी दूसरों के ऊपर विश्वास बन जाती है। जो आदमी जितना अपने पर कम विश्वास करता है वह उतना ज्यादा दूसरों पर विश्वास करता है और मैं कहता हूं, अपने पर विश्वास करना, क्योंकि अपने सिवाय कौन खोजेगा, कैसे खोजेगा? खोजना तो मुझे होगा। जानना मुझे होगा। अपने पर विश्वास तो समझ में आता है, दूसरे पर विश्वास समझ में नहीं आता। हो भी सकता है, अपने पर विश्वास करने से रास्ता भटक जाए, गड्ढे में गिर जाएं। लेकिन कोई हर्ज नहीं, खोजी गड्ढे में गिरने से नहीं डरता है। न रास्ता भटकने से डरता है, न भूल करने से डरता है। क्योंकि जो भूल नहीं करता, जो भटकता नहीं, जो गिरता नहीं, वह चल ही नहीं सकता है। वह कहीं पहुंच ही नहीं सकता है। खोजी भूल करने की हिम्मत दिखाता है। भटकने की हिम्मत भी दिखाता है। लेकिन खोजी यह कहता है कि कृपा करके मेरा हाथ पकड़ कर मुझे मत चलाओ। अगर तुमने हाथ पकड़ कर मुझे पहुंचा भी दिया तो भी मैं कभी नहीं पहुंचूंगा। मेरा पहुंचना तो उस प्रक्रिया से गुजर कर ही हो सकता है। मैं तो उसी से निखरूंगा। इसलिए खोजी विचार करता है। खोजी का मतलब अविश्वासी नहीं है।

एक मित्र ने पूछा हैः क्या आप अविश्वास सिखाते हैं?

मैं अविश्वास सिखाऊंगा। जो आदमी विश्वास तक नहीं सिखाता, वह अविश्वास सिखाएगा।

एक मित्र ने पूछा हैः आप नास्तिकता सिखाते हैं?

जो आदमी आस्तिकता तक सीखने से बचाना चाहता है, वह नास्तिकता सिखाएगा? मैं न आस्तिकता सिखाता हूं, न नास्तिकता सिखाता हूं। मैं न विश्वास सिखाता हूं, न अविश्वास सिखाता हूं। मैं यह कहता हूं कि विश्वास से भी मुक्त रहना, अविश्वास से भी मुक्त रहना, और मुक्त रह कर खोजना। पक्षपात में मत बंधना। निष्पक्ष होकर खोजना--दोनों पक्ष हैं। और ध्यान रहे, विरोधी पक्ष एक ही सिक्के के दो पहलू होते हैं। उनमें कोई बहुत फर्क नहीं होता है। विरोधी पक्ष एक ही सिक्के के दो पहलू होते हैं। आस्तिक और नास्तिक एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। उनमें कोई बहुत फर्क नहीं है। वह एक ही चीज की पीठ है, वह एक ही चीज का चेहरा है।
मैं एक मित्र को जानता हूं, एक बड़े वकील को, वे प्रिवी कौंसिल में एक मुकदमा लड़ते थे। बड़े वकील थे। भारी व्यस्त थे। रात कुछ उलझन में थे, कुछ काम में थे। देख नहीं पाए, फाइल नहीं देख पाए मुकदमे की। बिना फाइल देखे अदालत पहुंच गए। खड़े हो गए जिरह करने को। भूल गए कि मैं पक्ष में हूं कि विपक्ष में। तो जिसके पक्ष में बोलना था उसी के विपक्ष में बोलने लगे। उनका ग्राहक तो घबड़ा गया। उसके हाथ-पैर कंप गए कि यह क्या हो रहा है! मेरे

ही खिलाफ दलीलें दी जा रही हैं, मेरा ही वकील! और जब मेरा वकील मेरा खंडन कर रहा है तब तो मैं मर गया। विरोधी का वकील तो खंडन करेगा ही। अब मेरा बचाव क्या है? बामुश्किल मुंशी उनको थोड़ा, थोड़ा उनका कोट खींचा। लेकिन वे तो इतने तल्लीन थे जिरह में कि वे झटका दे दें। आखिर मुंशी ने जोर से कोट में झटका दिया और कान में जाकर कहा, आप कर क्या रहे हैं? आप अपने ही पक्ष के खिलाफ बोल रहे हैं। उन्होंने कहाः अरे, तुमने इतनी देर से क्यों नहीं कहा? यह तो बहुत लंबी बात हो गई। लेकिन कोई हर्ज नहीं। उन्होंने कहाः माई लार्ड, मजिस्ट्रेट से कहाः अब तक मैंने वे दलीलें दीं जो मेरा विपक्षी देगा, अब मैं खंडन शुरू करता हूं।
ये एक ही सिक्के के दो पहलू है। ये खंडन और मंडन दो चीजें नहीं हैं। इनमें कोई बहुत फर्क नहीं है। इस सिक्के को कैसे भी उलटाया जा सकता है। इसीलिए तो यह मजा है कि न नास्तिक जीत पाते हैं न आस्तिक जीत पाते हैं। क्योंकि आधा-आधा सिक्का दोनों के हाथ में है। जीत कोई नहीं सकता। पूरा सिक्का किसी के हाथ में नहीं है। आस्तिक नहीं जीत पाए आज तक। कितनी दलीलें दी हैं ईश्वर के लिए? कोई दलील नहीं जीत पाई! सच तो यह है; ईश्वर के लिए जो दलील देता है, वह ईश्वर को जानता ही नहीं। ईश्वर के लिए जो कोई तर्क देता है, उसे ईश्वर का कोई पता ही नहीं। तर्क देने वाला सिद्ध करने की कोशिश करता है। सिद्ध करने की कोशिश उसी के लिए की जाती है जो सिद्ध न हो। ईश्वर परम-सिद्ध है, स्वयं-सिद्ध है, क्योंकि वह समस्त है। उसे सिद्ध करने की कोई भी जरूरत नहीं है।
जो सिद्ध करने जाता है ईश्वर को वह मान कर चलता है कि ईश्वर को भी सिद्ध किए जाने की जरूरत है, और वह यह भी मान कर चलता है कि मैं सिद्ध न करूं तो बेचारा ईश्वर असिद्ध रह जाएगा। सो ईश्वर से बड़ा हमेशा सिद्ध करने वाला होता है। और इसी सिद्ध करने वाले की वजह से ईश्वर को असिद्ध करने वाला मौजूद हो जाता है। वह इसी का रिएक्शन है, वह इसी सिक्के का दूसरा पहलू है।
एक गांव में एक फकीर था। वह ऐसी गड़बड़ बातें करने लगा था कि गांव की पंचायत चिंतित हो गई और गांव की पंचायत ने कहा कि इसे बुलाना पड़ेगा और समझना पड़ेगा। इसके तर्क समझने पड़ेंगे और सिद्ध करना पड़ेगा कि तू यह क्या बातें कह रहा है। तेरी बातें गलत हैं। फकीर को निमंत्रण मिला पंचायत की तरफ से कि आज संध्या पंचायत में हाजिर हो जाओ। फकीर अपने गधे पर बैठ कर पंचायत की तरफ चला। लेकिन गधे पर वह उलटा बैठा, उसने अपना मुंह गधे की पीठ की तरफ रखा है। जब पंचायत में पहुंचा तो सारे पंच हैरान हुए कि फकीर का दिमाग क्या बिल्कुल खराब हो गया है। गधे पर उलटा बैठ कर चला आ रहा है। उन सबने घेर लिया, वे कहने लगे, दिमाग खराब हो गया है? उसने कहाः पहले पक्का पता चल जाए कि किस कारण से आप कह रहे हैं कि मेरा दिमाग खराब हो गया है? उन्होंने कहा कि तुम गधे पर उलटे बैठे हो। उसने कहाः तब ठीक है। तुम भी गधे की जाति के हो। उन्होंने कहाः मतलब? उस फकीर ने कहा कि असल बात यह है कि गधा उलटा खड़ा हुआ है, मैं तो सीधा ही बैठा हुआ हूं। और गधा भी यही समझ रहा है कि मैं उलटा बैठा हुआ हूं। इसलिए मैं कहता हूं कि तुम सब उन लोगों से-- कहा पंचायत से, आपसे नहीं कह रहा हूं। उसने कहाः पंचायत के तुम सब लोग भी गधे की जाति के हो। गधे भी चलने में गड़बड़ कर रहा है। वह समझ रहा है कि मैं उलटा बैठा हुआ हूं। सच बात यह है कि गधा उलटा खड़ा हुआ है। पंचायत के लोगों ने कहाः इस आदमी से बातचीत करनी व्यर्थ है। और उस फकीर ने कहा कि इसीलिए मैं पहले ही यह मामला ले आया। यह एक ही चीज की दो शक्लें हैं। तुम जो कहोगे, उसके खिलाफ कहा जा सकता है। और न खिलाफ को सिद्ध किया जा सकता है और न तुम जो कहते हो उसको सिद्ध किया जा सकता है।
तर्क, बड़ी कमजोर दुनिया है तर्क की। मैं न कह रहा हूं कि विश्वास को पकड़ो। विश्वास वाला भी कहता है, तर्क है हमारे पास, आर्ग्युमेंट है। अविश्वास वाला भी कहता है, तर्क है हमारे पास, आर्ग्युमेंट है। हम कहते हैं कि ईश्वर नहीं है, आत्मा नहीं है। मैं दोनों की बात नहीं कह रहा। मैं कुछ तीसरी ही बात कह रहा हूं जो इन तीन दिनों में धीरे-धीरे साफ हो सकेगी। मैं यह कह रहा हूं, विश्वास से भी मत बंधना और अविश्वास से भी मत बंधना। और

क्यों यह कह रहा हूं, क्योंकि जो आदमी ऊपर से विश्वास से बंधता है उसके भीतर अविश्वास होता है, उसका दूसरा पहलू उसके भीतर रहेगा। कांशस माइंड में, चेतन मन में, वह विश्वासी होगा, अचेतन में अविश्वासी होगा। चेतन में आस्तिक होगा, अचेतन में नास्तिक होगा। जो चेतन में नास्तिक होगा उसके भीतर आस्तिक छिप जाएगा। उलटा पहलू नीचे दब जाएगा। इसलिए ऐसा कोई नास्तिक नहीं है जिसके भीतर आस्तिक न बैठा हो। और ऐसा कोई आस्तिक नहीं है जिसके भीतर नास्तिक न बैठा हो। और आस्तिक जब लड़ता है तो किससे लड़ता है? आपको पता है, आपसे नहीं लड़ रहा है। अपने ही नास्तिक से लड़ता है बेचारा। और जब नास्तिक लड़ता है तो किससे लड़ता है? आपसे नहीं लड़ता? अपने ही आस्तिक से लड़ता है। यह लड़ाई भीतरी है। लेकिन वह आदमी धार्मिक है जो आस्तिकता- नास्तिकता दोनों को फेंक देता है और कहता है कि न मुझे पता है कि ईश्वर है, न मुझे पता है कि ईश्वर नहीं है। मैं खोजूंगा। मुझे पता नहीं है। मैं खोज पर निकलता हूं। जो भी होगा वह मैं खोज कर तय करूंगा। मैं पहले से तय नहीं करता। खोज पर निकलने के पहले तय कर लेना तो बहुत बुरा है।
एक मित्र हैं जयपुर में, डाक्टर बनर्जी। उनका नाम आपने सुना होगा। वह पुनर्जन्म सिद्ध करने के लिए कथाएं खोजते हैं। घटनाएं खोजते हैं। बंबई में मेरा उनसे मिलना हुआ। कुछ मित्र बड़ी आकांक्षा किए कि दोनों जन मिलें। मैं तो हमेशा तैयार हूं, मिलने को तैयार हो गया। मिलने गया। उन डा. बनर्जी ने कहा शुरू बातचीत में कि मैं वैज्ञानिक रूप से सिद्ध करना चाहता हूं कि पुनर्जन्म है। मैंने कहाः आप सिद्ध करना चाहते हैं। उन्होंने कहाः हां, मैं सिद्ध करना चाहता हूं कि पुनर्जन्म है। फिर मैंने कहाः आप वैज्ञानिक नहीं हैं, क्योंकि आपने यह पहले ही मान रखा है कि पुनर्जन्म है। अब इसको सिद्ध करना है? वैज्ञानिक बुद्धि का आदमी कहता है कि मैं पता लगाना चाहता हूं कि पुनर्जन्म है या नहीं है। मैंने कुछ मान नहीं लिया है। जिसने पहले ही मान लिया है वह सिद्ध कर लेगा जो उसने मान लिया है। लेकिन तब वह खोज वैज्ञानिक नहीं रह जाएगी। वैज्ञानिक होने का मतलब यह है कि मैं मान कर नहीं चलता कि क्या है, मैं आंख खोल कर चलूंगा, और जो होगा वह कहूंगा कि है, जो नहीं होगा कहूंगा कि नहीं है।
अवैज्ञानिक, विश्वासी, अविश्वासी, आस्तिक, नास्तिक, पक्षपाती, वे कहते हैं, हम पहले मान कर चलते हैं कि ईश्वर है। कोई कहता है, ईश्वर नहीं है। और अब हम सिद्ध करेंगे, अब हम खोज करेंगे। अब क्या खाक खोज करिएगा? जब मान ही लिया तो खोज नहीं होगी। जो भी आपने मान लिया है उसके लिए आप तर्क खोज लेंगे। और जगत इतना बड़ा है कि यहां हर चीज के लिए तर्क और पहलू उपलब्ध हो जाएंगे।
एक आदमी ने अमरीका में एक किताब लिखी है, किताब लिखी है कि तेरह का अंक अपशकुन है। और इतनी वैज्ञानिक किताब लिखी है कि आप भी कहेंगे कि हां, बिल्कुल वैज्ञानिक है। यह तो मानता ही है कि तेरह तारीख अपशकुन है। यह तो पहले ही माना हुआ है। अब सिद्ध करना है। तो उसने पता लगाया कि तेरहवीं मंजिल से कितने लोग कब-कब कहां-कहां गिरते हैं, कहां- कहां गिरे हैं। कई अमरीका में तो ऐसे मकान हैं, जिसमें तेरहवीं मंजिल होती ही नहीं। क्योंकि तेरहवीं मंजिल पर कोई रहने को राजी नहीं होता। बारहवीं के बाद सीधी चौदहवीं आती है, तेरहवीं होती ही नहीं। क्योंकि तेरहवीं को किराए पर उठाना मुश्किल है। इसलिए तेरहवीं मंजिल होती नहीं। कई मकानों में नहीं होती तेरहवीं मंजिल। उस आदमी ने पता लगाया है कि तेरहवीं मंजिल से कौन-कौन, कब-कब कहां-कहां गिरा है। तेरहवीं तारीख को कौन-कौन एक्सीडेंट होते हैं। तेरहवीं तारीख को कहां-कहां आग लगती है। तेरहवीं तारीख को कौन-कौन जहाज डूबता है। तेरहवीं तारीख को कौन-कौन हवाई जहाज गिरता है। तेरहवीं तारीख को की गई कौन-कौन शादियां टूटती हैं। सब उसने इकट्ठा किया। तेरह तारीख को पैदा हुए कितने बच्चे मर जाते हैं, उसने सब इकट्ठा किया। अब तेरह तारीख बड़ी घटना है। तेरह तारीख को सब कुछ होता है। उसने सब इकट्ठा कर लिया है, जो-जो अपशकुन है। भारी किताब लिखी है और इतने उदाहरण दिए हैं, इतने आंकड़े दिए हैं कि लगेगा कि तेरह तारीख निश्चित ही अपशकुन है। लेकिन कोई अगर चाहे तो बारह तारीख के लिए भी यही इकट्ठा कर ले। कोई चाहे ग्यारह

तारीख के लिए इकट्ठा कर ले--जो मर्जी हो इकट्ठा कर ले। जिंदगी एक बहुत बड़ी घटना है। उसमें अनंत घटनाएं घट रही हैं। जिंदगी एक बहुत बड़ा रहस्य है, उसके अनंत पहलू हैं। अगर कोई आदमी पहले से पक्ष लेकर जाता है तो अपने पक्ष की दलीलें खोज लेगा। और दलीलें इकट्ठी कर लेगा। वह प्रिज्युडिस्ड है, वह पहले से तैयार है। वह वही देखेगा जो वह देखना चाहता है। उसकी आंख पर चश्मा पहले से चढ़ा हुआ है। वह वही देखेगा जो देखना चाहता है। उसे वही दिखाई पड़ेगा। वही खोज लेगा। वही। और सब इकट्ठा कर लेगा। और फिर समझेगा कि मैंने कोई खोज की है। यह खोज न हुई--यह खोज नहीं है।
खोज का मतलब है कि मैं निष्पक्ष हूं, यह पहली शर्त है। और मैंने जो सुबह आपसे कहा, विश्वास से मुक्त होने के लिए, तो उसका कोई और अर्थ नहीं है, उसका अर्थ हैः निष्पक्ष होना। विश्वासी पक्षपात से भरा हुआ है--हिंदू है, मुसलमान है, जैन है, बौद्ध है--ये सब विश्वासी हैं। आस्तिक हैं, नास्तिक हैं, ये विश्वासी हैं। सोशलिस्ट हैं, कम्युनिस्ट हैं, कांग्रेसी हैं, गांधीइस्ट हैं। ये सब विश्वासी हैं। और इसलिए इनमें से कोई भी सत्य को नहीं देखता। वही देखता है, जो देखना चाहता है।
रूस में क्रांति हुई उन्नीस सौ सत्रह में। एक गांव था छोटा सा। उस गांव में एक स्कूल था। स्कूल में एक ही शिक्षक था और एक ही विद्यार्थी था। दूर एकांत में वह गांव था। क्रांति हो गई। उन्नीस सौ सत्रह के बाद उस स्कूल की रिपोर्ट छपी। और रिपोर्ट में छापा गया कि भारी प्रगति हुई है क्रांति के बाद शिक्षा में। दुगुनी प्रगति हुई है, दुगुने विद्यार्थी हो गए हैं। सब जगह अखबारों में वह खबर छपी। और कुल बात इतनी हुई थी कि जिस स्कूल में एक विद्यार्थी था, उसमें दो हो गए थे। दुगुनी शिक्षा हो गई। गलती है कोई बात--दुगुने विद्यार्थी हो गए? गलती है कोई बात! जहां सौ का आंकड़ा था, वहां दो सौ का आंकड़ा हो गया। कोई कम है यह बात? लेकिन मामला कुल इतना था कि एक विद्यार्थी की जगह दो विद्यार्थी हो गए थे। लेकिन वह जो देखने गया होगा जिस आंख से, वह आंख कम्युनिस्ट की रही होगी। वह क्रांति को बढ़ा कर दिखाने वाले का ख्याल रहा होगा। उसकी कोई गलती नहीं है, उसको ऐसा दिखा होगा। कोई बेईमानी की है। ऐसा नहीं, उसको ऐसा दिखा ही होगा। यह बात बिल्कुल सच ही है। इसलिए सरकारी आंकड़े सब झूठे हो जाते हैं। क्योंकि सरकार की आंख से देखे गए होते हैं। वही गरीब जनता की आंख से देखा जाए तो आंकड़ा बिल्कुल दूसरा दिखाई पड़ेगा। स्थिति बिल्कुल दूसरी होगी। सरकार का आदमी जब आकर देखता है, तब स्थिति और होती है। वही आदमी कल इलेक्शन हार जाए, और फिर देखता है तो स्थिति दूसरी हो जाती है। चश्मा बदल गया। पद के नीचे आ गए। पक्ष बदल गया गए तो सब बदल जाता है।
हम देखते नहीं, हम सिर्फ पक्षपात से घिरे हुए जीते हैं। सत्य की खोज पक्षपाती के लिए नहीं है। प्रभु का मंदिर उनके लिए खुलता है जो निष्पक्ष हैं, अनप्रिज्युडिस माइंड हैं। मन खुला है जिनका वे वही देखेंगे जो है। जो नहीं कहेंगे, जिनकी शर्त नहीं है कि यह हो, जिनके ये आग्रह नहीं हैं कि ऐसा होना चाहिए। जो आदमी आग्रह से भरा है वह सत्य का खोजी नहीं हो सकता। इसलिए मैं निरंतर कहता हूं कि सत्याग्रह शब्द बड़ा खतरनाक है। सत्य का कोई आग्रह नहीं हो सकता। सब आग्रह पक्ष के हैं। सत्य हमेशा अनाग्रह है। सत्य निराग्रह है। उसका कोई आग्रह नहीं, कोई पक्ष नहीं। सत्य की खोज में यह कठिन तपश्चर्या है कि हम अपना आग्रह छोड़ दें।
मैंने सुना है, एक आदमी अपने हाथ पर शेर की तस्वीर खुदवाना चाहता था।
कई आदमी ऐसे हैं, जिनके भीतर कायर होता है तो वे शेर की तस्वीर खुदवा कर मन को तृप्ति देना चाहते हैं। अधिक आदमी ऐसे हैं। असल में जो, जो तस्वीर खुदवाते हैं, वे इसी तरह के आदमी होते हैं। चाहे वह तस्वीर किसी तरह की खुदवाएं। एक आदमी राम-राम लिखे हुए है खोपड़ी पर। यह आदमी खतरनाक है। इस आदमी के भीतर रावण बैठा हुआ होना चाहिए, नहीं तो राम का बोर्ड कभी न लगाता। इसके भीतर रावण है। और यह रावण से डरा हुआ है। और लगता है इसे कि कोई रावण को न देख ले। राम का बोर्ड लगाए हुए है। हम सब जानते हैं, अगर नकली घी बेचना हो तो असली घी का बोर्ड लगाना पड़ता है। और जहां असली शुद्ध घी का बोर्ड लगा हो, वहां हम जानते हैं कि निश्चित रूप से नकली घी मिल जाएगा। अब तो नकली घी

के भी होने की संभावना कम होती चली जाती है। उसमें भी और ईजादें हैं। बोर्ड हमेशा उलटा होता है। क्योंकि बोर्ड उसको छिपाने के लिए होता है, जो भीतर है। विनम्रता का बोर्ड जिसके चेहरे पर लगा हो, वह आदमी अहंकारी होता है। वह विनम्रता ओढ़े रहता है।
वह आदमी बड़ा डरपोक था। अंधेरे में जाता था तो डर लगता था। उसने कहाः
हम शेर खुदवाएंगे, अपने हाथ पर। वह कविताएं बहादुरी की करता था। कमजोर आदमी हमेशा कविताएं बहादुरी की करते हैं। हमारे ही मुल्क में युद्ध हो जाए तो फिर देखो, कितनी बहादुरी की कविताएं पूरा मुल्क करता है। हर आदमी के दिमाग में एकदम कवि पैदा हो जाता है। सब राष्ट्र-कवि हो जाते हैं। हर आदमी अपनी-अपनी चौपाल, अपने-अपने घर के बाहर निकल कर कविताएं सुनाने लगता है कि सिंह हैं, हम सोए हुए हैं, हमको छेड़ो मत! अरे कभी किसी सिंह को यह कविता करते देखा है? छेड़ो और पता चलता है कि मामला क्या है? जब सिंह नहीं होता है भीतर तब कविता होती है कि हम सिंह हैं, हमको छेड़ो मत! उसको मारो तो वह कहेगा, हमको मारो मत, हम सिंह हैं, हम बहुत बदला लेंगे। लेकिन मारते चले जाओ, वह कविता करता चला जाएगा! अब वे सब सिंह कहां चले गए? उनका कुछ पता नहीं है! वे जिस चीन के छेड़ने पर वे नाराज हुए थे, वह जमीन दबा कर बैठा है लाखों मील, अब वे सारे कवि कहां हैं? एक-एक कवि को पकड़ कर मिलिटरी में भर्ती किए बिना इस मुल्क में कविता बंद नहीं होंगी। उन सबको भेजो कि अब तुमको छेड़ दिया गया बुरी तरह से, अब तुम उठो। अब वे कहेंगे कि नहीं, यह हमारा काम नहीं, हम सिर्फ कविता करते हैं।
वह आदमी भीतर डरपोक था, शेर की तस्वीर बनवानी थी। गया एक खोदने वाले
के पास, उसने कहाः मेरे हाथ पर शेर की तस्वीर खोद दें, लेकिन शानदार शेर चाहिए बिल्कुल कि देख कर आदमी डर जाए। उसने कहाः खोद दूंगा। उस आदमी ने अपनी सुई उठाई और खोदना शुरू किया। तो तकलीफ होती है। जरा ही बढ़ा था कि उसने कहाः ठहर-ठहर, कौन सा हिस्सा खोद रहा है? उसने कहाः पूंछ खोद रहा हूं। उसने कहाः जाने दें, पूंछ के बिना चलेगा, बिना पूंछ का खोद दे। उस आदमी ने फिर सुई उठाई, और फिर उसे तकलीफ हुई। उस आदमी ने कहाः ठहर, क्या जान ले लेगा? अब कौन सा हिस्सा खोद रहा है? उसने कहाः अब मैं चेहरा खोद रहा हूं। उसने कहाः बिना चेहरे का चलेगा। तू फिकर मत कर। उस आदमी ने कहाः फिर क्षमा करो, मैंने बिना पूंछ और बिना चेहरे के शेर नहीं देखे।
यह ऊपर से खोदने वाला आदमी भीतर बिल्कुल उलटा है। यह क्या खोद रहा है? शेर खोद रहा है। लेकिन खुदवाने की हिम्मत भी तो नहीं है!
आदमी परमात्मा को खोजता है खोजने की हिम्मत भी नहीं है, इसलिए विश्वासी हो जाता है। विश्वास ऊपर से खोदी गई बातें हैं। उनसे ज्यादा कोई मूल्य नहीं है। खोजना चाहता है सत्य को, लेकिन खोजने का जो श्रम है, जो तपश्चर्या है, जो साधना है, उससे बचना चाहता है! तो वह कहता है कि हां, ठीक है, ऊपर से ही खोद दो। और जब खोदने के लिए सुई उठेगी तो वह कहेगा, चलो, यह भी जाने दो, यह भी जाने दो! इतनी तकलीफ हम नहीं उठा सकते! इससे तो वह अपना विश्वास अच्छा है। न कुछ करना पड़ता है, न कहीं जाना पड़ता है, न कुछ होना पड़ता है। चुपचाप विश्वास ओढ़ लो और परमात्मा को उपलब्ध हो जाओ। हम सब उपलब्ध हो गए हैं। हम सब उपलब्ध हो गए हैं परमात्मा को, विश्वास ओढ़ कर। विश्वास को ओढ़ कर कोई कभी सत्य को नहीं पहुंचता है।
इसलिए मैंने सुबह आपसे कहा, हिम्मत जुटाओ विश्वास छोड़ने की अगर पाना
हो ज्ञान। हिम्मत जुटाओ अंधा बनना छोड़ने की। अगर पानी हो आंखें, हिम्मत जुटाओ थोड़ा विचार से गुजरने की, अगर उसके द्वार में प्रवेश की जरूरत हो। और अन्यथा फिर उसकी फिकर छोड़ दो। फिर कहो, हमें कोई प्रयोजन नहीं ईश्वर से, सत्य से। तो कम से कम एक बात तो साफ हो जाए कि दुनिया में यह पता चल जाए कि किन लोगों को सत्य से प्रयोजन है और किनको प्रयोजन नहीं। अभी कुछ पता ही नहीं चलता कि कौन शेर है और कौन खुदाया हुआ शेर है। और खुदाए हुए शेर इतने ज्यादा हैं कि सब उनको देख कर ऐसा समझते हैं कि खुदा लेना ही शेर हो जाना है।

आस्तिक हो जाना ऐसा नहीं है। ईश्वर की दिशा में धार्मिक हो जाना ऐसा नहीं है। इसलिए मैंने सुबह आपसे कहा। कल सुबह दूसरे सूत्र पर बात करूंगा।
जो प्रश्न बच गए, कल संध्या उनकी बात करूंगा।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

प्रभु मंदिर के द्वार पर तीसरा प्रवचन

प्रवाह शीलता है द्वार

मेरे प्रिय आत्मन्!
विश्वास अंधा द्वार है। अर्थात विश्वास द्वार नहीं है, केवल द्वार का मिथ्या आभास है। मनुष्य जो नहीं जानता है उसे इस भांति मान लेता है, जैसे जानता हो। मनुष्य के जो पास नहीं है, उसे वह इस भांति समझ लेता है जैसे वह उसके पास हो। और तब खोज बंद हो जाए तो कोई आश्चर्य नहीं है।
मैंने सुना है, एक अंधेरी रात में एक जंगल से दो संन्यासी गुजरते थे।
एक वृद्ध संन्यासी है, एक युवा संन्यासी है। अंधेरी रात है। बियाबान जंगल है। अपरिचित रास्ता है। गांव कितनी दूर है, कुछ पता नहीं। वह वृद्ध संन्यासी तेजी से भागा चला जाता है। कंधे पर जो झोला लटकाया है, उसे जोर से हाथ से पकड़े हुए है। और बार-बार अपने युवा साथी से पूछता है, कोई खतरा तो नहीं, कोई भय तो नहीं, कोई चिंता तो नहीं? युवा साथी बहुत हैरान है, क्योंकि संन्यासी को भय कैसा, खतरा कैसा? और अगर संन्यासी को भी भय हो, खतरा हो, तो फिर ऐसा कौन होगा जिसे भय न हो, खतरा न हो? वह बहुत हैरान है कि आज यह वृद्ध संन्यासी बार-बार क्यों पूछने लगा है कि भय तो नहीं है कोई, खतरा तो नहीं है। डाकू-चोर तो इस जंगल में नहीं होते हैं, हम गांव तक कब तक पहुंच जाएंगे, और भागता है तेजी से। फिर एक कुएं पर वे रुके हैं पानी पीने को। वृद्ध पानी भर कर पी रहा है। अपना झोला उसने युवा संन्यासी को दिया है और कहा है, सम्हाल कर रखना। युवा को ख्याल हुआ कि हो न हो खतरा इस झोले के भीतर होना चाहिए। उसने हाथ डाला है, देखा एक सोने की ईंट झोले के भीतर है। उससे ही भय है, उससे ही खतरा है। उसने वह सोने की ईंट निकाल कर फेंक दी और एक पत्थर का टुकड़ा उसकी जगह रख दिया है।
फिर वृद्ध पानी पीकर कुएं से नीचे उतरा है। जल्दी से झोला अपने हाथ में लेकर कंधे पर टांगा। टटोल कर ईंट देखी। ईंट है। फिर तेजी से भागने लगा है वह। फिर रास्ते में बार-बार पूछता है, कोई खतरा तो नहीं है? कोई भय तो नहीं है? उस युवक ने कहाः अब आप निर्भय हो जाएं। खतरे को मैं दो मील पीछे कुएं के पास ही फेंक आया हूं। वृद्ध ने घबड़ा कर झोले में हाथ डाला, वहां, वहां तो सोने की ईंट नहीं! सिर्फ पत्थर का टुकड़ा है! लेकिन दो मील तक उस पत्थर के टुकड़े को वह सोने की ईंट समझे रहा, और भयभीत रहा। फिर झोला उसने वहीं पटक दिया, फिर वह हंसने लगा और नाचने लगा और उसने कहाः अब गांव पहुंचने की कोई जल्दी न रही। अब कोई खतरा नहीं है। अब हम यहीं सो जाएं। अब रात यहीं विश्राम करें।
पत्थर की ईंट भी सोने की ईंट समझी जाए तो सोने की ईंट का भय पैदा कर देती है। लेकिन इससे वह सोने की ईंट नहीं हो जाती। जो हमारा ज्ञान नहीं है, उसे ज्ञान समझा जाए तो वह ज्ञान का भ्रम पैदा कर देता है। लेकिन इससे वह हमारा ज्ञान नहीं हो जाता। जो हम नहीं जानते हैं, उसे हम कितना ही मान लें तो भी जानने के भ्रम के सिवाय उस मानने से कभी जानना पैदा नहीं होता है। विश्वास असत्य है। और विश्वास अज्ञान है। और खतरा अज्ञान से उतना नहीं है, जितना विश्वास से है, क्योंकि अज्ञान जानता है कि नहीं जानता हूं। विश्वास ऐसा अज्ञान है, जो नहीं जानता और जानता है कि जानता हूं! अज्ञान जब यह जान लेता है कि जानता हूं, तब वह विश्वास बन जाता है। अज्ञान को अपना बोध हो, तो अज्ञान को तोड़ने की चेष्टा चलती है और अज्ञान अबोध हो जाए तो फिर उसे तोड़ने का कोई कारण नहीं रह जाता है।
मनुष्यता को विश्वास ने जितने अज्ञान में रखा है उतना किसी और बात ने नहीं। अगर मनुष्य-जाति इतने अज्ञान से भरी है, तो उसका सौ में से निन्यानबे प्रतिशत कारण विश्वास की हजारों-हजारों वर्ष की शिक्षा है। विश्वास अज्ञान की सुरक्षा बन जाता है। अज्ञान को फिर वह नष्ट नहीं होने देता है। क्योंकि यह ख्याल अगर पैदा हो गया कि हम जानते हैं, बिना जाने हुए, तो फिर जानने की यात्रा, अन्वेषण बंद हो जाने ही वाला है।

कल मैंने कहा कि विश्वास नहीं है उसका द्वार। आज कहना चाहता हूं, विचार है उसका द्वार। और विचार विश्वास से बिल्कुल ही उलटी चित्त-दिशा है।
विचार के क्या-क्या तत्व हैं?
विचार का पहला तत्व है संदेह, डाउट। संदेह नहीं तो विचार नहीं। विश्वास का पहला तत्व है संदेह नहीं। विचार का पहला तत्व है संदेह। जो संदेह कर सकता है वही विचार करेगा; असल में जो विचार करने की हिम्मत जुटाता है वह संदेह करता है। जो विचार करने से डरता है, वह संदेह ही नहीं करता; वह आंख बंद करता है और मान लेता है। संदेह--एक छोटी सी घटना से समझाऊं।
अरस्तू तो इतना बड़ा विचारक हुआ, लेकिन तथाकथित बड़े से बड़े विचारकों
के मन में भी विश्वास के कोने होते हैं, विश्वास के पॉकेट्स होते हैं। बड़े से बड़े विचारक कहे जाने वाले लोगों के भी मन के बहुत से हिस्से विश्वास के ही होते हैं। ऑलिवर लाज जैसा बुद्धिमान आदमी, वैज्ञानिक--लेकिन ताबीज बांध कर सोएगा, भूतों से उसे डर है! भूत-प्रेत से वह डरता है! पिकासो का नाम आप जानते हैं--बड़ा चित्रकार, इतना बुद्धिमान, इतना विचारशील, लेकिन न मालूम कितने गंडे-ताबीज बांधता है! और डरता है, भूत-प्रेत से बहुत डरता है। कहीं कोई विश्वास का कोना भी है।
ऐसे ही अरस्तू बहुत विचार करता है, लेकिन विश्वास के भी कोने हैं, जिनका उसे ख्याल भी न हो। उसने अपनी किताब में लिखा हैः स्त्रियों के दांत पुरुषों से कम होते हैं। क्योंकि यूनान में हजारों साल से यह बात मानी जाती थी कि स्त्रियों के दांत पुरुषों से कम होते हैं। असल में पुरुष यह मानने को राजी ही नहीं हैं कि स्त्रियों में कुछ भी उनके बराबर हो सकता है। दांत भी कैसे बराबर हो सकते हैं? स्त्रियों के दांत और पुरुषों के बराबर! यह पुरुष कैसे मान सकते हैं? यह पुरुष के अहंकार को बड़ी चोट की बात होगी। लेकिन कितना बड़ा आश्चर्य है कि किसी ने कभी स्त्री के दांत गिनने की कोशिश नहीं की। यह बात प्रचलित थी, प्रचलित रही और लोगों ने मान ली! अब स्त्री के दांत कितनी सुलभ बात है। घर-घर में स्त्रियां हैं, पुरुषों से थोड़ी ज्यादा ही हैं, कम नहीं हैं, और अरस्तू महाशय की तो दो औरतें थीं, एक भी नहीं थीं। दो में से किसी भी मिसेज अरस्तू को वह कह सकते थे कि एक क्षण बैठ जाओ और जरा दांत खोल दो, मैं गिन लूं। लेकिन यह उन्होंने नहीं कहा! यह मान लिया। चलता था कि स्त्री के दांत कम हैं। अरस्तू जैसे बुद्धिमान आदमी ने अपनी किताब में लिख दिया कि स्त्रियों के दांत कम होते हैं। और जब अरस्तू ने लिख दिया तो सारे लोगों को तो कहना ही क्या! अरस्तू का वाक्य तो प्रमाण है। एक हजार साल तक अरस्तू के मरने के बाद भी यह बात चलती रही कि स्त्रियों के दांत कम हैं। कल्पना नहीं होती कि इतने लोग हैं, किसी ने संदेह न किया कि एक बार संदेह करे और दांत गिन ले।
विश्वास की जो परंपराएं हैं वह संदेह करती ही नहीं। और जब पहली बार किसी आदमी ने स्त्री के दांत गिन कर यह कहा कि स्त्री के दांत पुरुषों के बराबर हैं, तो लोगों ने कहा, तुम्हारा दिमाग तो ठीक है? कभी स्त्रियों के दांत पुरुषों के बराबर हुए हैं? ऐसा कभी सुना है? अरस्तू की किताब देखी है? अरस्तू गलत लिखेगा? अरस्तू अज्ञानी है? तुमने कुछ गिनती में गलती कर ली होगी। या कोई गलत अपवाद स्त्री मिल गई होगी। दांत तो स्त्रियों के कम ही होते हैं, लिखा है किताब में। संदेह की वृत्ति न हो तो अतीत का पिछड़ा हुआ ज्ञान भविष्य के विकसित मस्तिष्क के लिए जंजीर बन जाता है। और ध्यान रहे, कल जो हम जानते थे उससे आज हम ज्यादा जानते हैं। और आज जो हम जानते हैं, कल हम उससे ज्यादा जानेंगे। हजार साल पहले जो हम जानते थे उससे हम आज बहुत ज्यादा जानते हैं।
ज्ञान के स्रोत पीछे नहीं हैं, ज्ञान के स्रोत निरंतर भविष्य में खुलते चले जाते हैं। लेकिन संदेह न करने वाली वृत्ति अतीत के पिछड़े हुए ज्ञान से जकड़ जाती है। और नये द्वार बंद हो जाते हैं। खुलना मुश्किल हो जाता है। संदेह बहुत अदभुत गुण है। संदेह का अर्थ है, जो कहा गया है, जो सुना गया है, जो माना जाता है, उस पर फिर से समस्या खड़ी करना, फिर से

प्रश्नवाचक लगाना। कुछ भी जीवन में जो महत्वपूर्ण है उसे बिना प्रश्न के स्वीकार न कर लेना। उस पर प्रश्न खड़ा करना, पूछना, खोजना, जांचना, पड़ताल करना। लेकिन अगर संदेह ही खड़ा नहीं किया तो ये सब बातें रुक जाती हैं वहीं, पहले ही चरण पर; अगर मानने की पागल वृत्ति हुई, कमजोर वृत्ति हुई, तो सब रुक जाता है। फिर कोई पूछता नहीं, फिर कोई मानता नहीं। हजारों सवाल हैं जिंदगी के जो वहीं ठहरे हुए हैं, जहां हजारों साल पहले लोग उन्हें छोड़ गए, क्योंकि उन पर कोई संदेह नहीं उठा, उन पर कोई विचार नहीं उठा। और फिर हम दोहराए चले जाते हैं। दोहराए चले जाते हैं और दोहराने का एक परिणाम होता है कि मनुष्य के चित्त पर दोहराने का सम्मोहक असर होता है। कोई चीज दोहराए चले जाएं निरंतर इसकी बिना फिकर किए कि कोई मानता है या नहीं मानता है। दोहराते- दोहराते वह मानना शुरू कर देता है। वह भूल जाता है कि मैं नहीं मानता था। प्रश्न विलीन हो जाता है। सारे विज्ञापनदाता यही कर रहे हैं।
रास्ते पर आप जाते हैं तो बड़े-बड़े बिजली के जलते अक्षरों में लिखा हैः हमाम साबुन। पहले तो एक ही तरह के अक्षरों में लिखा रहता था, अब जलते-बुझते अक्षरों में लिखा जा रहा है। वह मनोवैज्ञानिकों ने कहा कि अगर तुमने बिना जलने-बुझने वाले अक्षरों में लिखा तो आदमी एक ही बार पढ़ता है, और अगर अक्षर बुझे फिर जले, फिर बुझे फिर जले, तो जितनी देर आदमी उस बोर्ड के पास से निकलता है उसको उतनी ही बार पढ़ना पड़ता है जितनी बार अक्षर जलते हैं, बुझते हैं। उसके माइंड में बार-बार रिपीट होता हैः हमाम साबुन, हमाम साबुन, हमाम साबुन! उसके मस्तिष्क में घुसाया जा रहा है। रेडियो खोले, हमाम साबुन। अखबार खोले, हमाम साबुन। जहां भी जाए, हमाम साबुन। बस उससे कहो मत कुछ, सिर्फ हमाम शब्द को उसके भीतर दोहराते चले जाओ और भीतर डालते चले जाओ। वह कल दुकान पर खरीदने जाएगा, सैकड़ों साबुन रखे हैं, दुकानदार पूछता है, कौन सा साबुन आपको पसंद है? वह कहता है, हमाम साबुन। वह सिर्फ बेहोशी में बोल रहा है, उसे कुछ पता नहीं, वह क्या कह रहा है। होश में नहीं है वह आदमी, वह हिप्नोटाइज्ड है। वह सिर्फ बेहोश है। वह कह रहा है हमाम साबुन। यह हमाम साबुन दोहरा-दोहरा कर उसके मस्तिष्क के रग-रग, रेशे-रेशे में भर दिया गया है। वह अब उसकी जबान से निकल रहा है। वह सोचता है यह मैं कह रहा हूं, यह मैं सोच कर कह रहा हूं। यह वह सोच कर नहीं कह रहा है। यह सिर्फ विज्ञापन की कला उसके भीतर डाल दी है।
जब आप कहते हैं, मैं हिंदू हूं, तो आपने सोच कर कहा है? वही हमाम साबुन। जब आप कहते हैं, मैं मुसलमान हूं, आपने कभी सोच कर कहा है? वही हमाम साबुन। इनमें कोई फर्क नहीं है। बचपन से दिमाग में डाला जा रहा है कि तू हिंदू है, तू मुसलमान है। बचपन से समझाया जा रहा है--यह भगवान है कृष्ण, यह राम, यह क्राइस्ट, यह मोहम्मद, यह पैगंबर है; यह कुरान, यह गीता, ये पवित्र ग्रंथ हैं, इनमें सत्य भरा हुआ है। यह बचपन से दोहराया जा रहा है, दोहराया जा रहा है, दोहराया जा रहा है। इतने बचपन से दोहराया जा रहा है जब कि सवाल उठ ही नहीं सकता था। इतने बचपन के साथ यह बात दोहराई जा रही है जब कि प्रश्न उठाने की क्षमता भी न थी। इसीलिए सभी धार्मिक लोग छोटे-छोटे बच्चों को धार्मिक शिक्षा देने के लिए बड़े लालायित रहते हैं। क्योंकि जब प्रश्न उठने शुरू हो जाएंगे। अगर बीस साल के जवान से आप पहली बार कहें कि तुम हिंदू हो, तो वह पूछेगा, क्यों? क्या मतलब? क्यों हूं हिंदू? लेकिन दो साल के छोटे बच्चे के दिमाग में डाला जा रहा है कि तुम हिंदू हो। उसे कुछ पता नहीं, प्रश्न पूछने की कला उसे मालूम नहीं। संदेह अभी सजग नहीं। उसके दिमाग में भर रहे हो उस बचपन से। जब प्रश्न उठने शुरू होंगे उससे बहुत गहरे में, उससे बहुत अनकांशस में तुमने भर दिया वह सब जिन पर वह अब कभी प्रश्न नहीं कर सकेगा। और जिंदगी भर उसे मानता चला जाएगा।
हम सारे लोग इसी तरह की प्रचारित बातों के बीच बड़े हुए हैं। हमारा सारा मस्तिष्क कंडीशंड है। सब संस्कारित है। अब अगर सत्य की खोज पर किसी को निकलना है और प्रभु का मंदिर खोजना है तो उसे अपने एक-एक संस्कार पर प्रश्न उठाना पड़ेगा। एक-एक संस्कार को उखाड़ कर पूछना पड़ेगा, ऐसा है? निश्चित ही बड़ी बेचैनी पैदा हो जाएगी, बहुत रेस्टलेसनेस पैदा हो जाएगी,

बहुत अराजकता पैदा हो जाएगी, बहुत केऑटिक, भीतर सब गड़बड़ हो जाएगा जो सुव्यवस्थित है।
लेकिन इसके पहले कि कोई उस लंबी यात्रा पर निकले, जहां कि सच में सब सुव्यवस्थित हो जाएगा, उसके पहले जो झूठी सुव्यवस्था बनाई गई है उसका टूट जाना जरूरी है। इस अराजकता से गुजरना ही पड़ेगा। एक-एक संस्कार को पूछना पड़ेगा कि क्या ऐसा है? क्या मैं हिंदू हूं? किस कारण हिंदू हूं? इस कारण कि किसी घर में पैदा हो गया? किसी के घर में पैदा होने से कोई हिंदू कैसे हो सकता है? कम्युनिस्ट के घर में पैदा होने से कोई बेटा कम्युनिस्ट होता है? कांग्रेसी के घर में पैदा होने से कोई बेटा कांग्रेसी होता है? और अगर यह नहीं होता तो हिंदू के घर में पैदा होने से कोई हिंदू कैसे होगा? जैन के घर में पैदा होने से कोई जैन कैसे होगा? ये भी तो विचारधाराएं हैं, विचारधाराओं का जन्म से क्या संबंध है? जन्म से तो कोई भी संबंध नहीं है। खून से क्या संबंध है? विचारधारा का खून से कोई संबंध नहीं है। विचारधारा का वीर्यअणुओं से क्या संबंध है? कोई भी संबंध नहीं है। आप किसी भी पिता से पैदा हों इससे आपका हिंदू और मुसलमान होने का कोई भी तो संबंध नहीं है। यह तो बिल्कुल ही असंगत बात है जो आपके मस्तिष्क में जोड़ी और घुसाई जा रही है। गीता के सही और गलत होने से, आपके किसी घर में, खास घर में पैदा होने का क्या संबंध है? महावीर के तीर्थंकर होने या न होने से आपका किसी मां-बाप से पैदा होने का क्या संबंध है? कोई भी तो संबंध नहीं है। लेकिन कभी इस पर प्रश्न नहीं उठाया। इस पर कभी प्रश्नवाचक नहीं लगाया। कभी संदेह नहीं किया। इसलिए दुनिया विभाजित है। और जिस दिन एक-एक आदमी प्रश्न खड़ा करेगा उसी दिन दुनिया अविभाजित हो जाएगी।
आज सारी दुनिया में युद्ध है। रूस भयभीत है अमरीका से। अमरीका भयभीत
है रूस से। और बेटे पूछ ही नहीं रहे हैं कि इस भय की क्या जरूरत है? पाकिस्तान भयभीत है हिंदुस्तान से। हिंदुस्तान भयभीत है पाकिस्तान से। दोनों एक दूसरे से भयभीत होकर युद्ध की तैयारी किए चले जाते हैं। कोई भी नहीं पूछता कि भयभीत होने की क्या जरूरत है? रहने के लिए पृथ्वी पर एक दूसरे से भयभीत होने की कौन सी आवश्यकता है। लेकिन प्रश्न ही कोई नहीं उठाएगा। भय स्वीकृत कर लिया जाएगा। झगड़े मान लिए जाएंगे और जारी रहेंगे। जब तक समाज का मस्तिष्क, व्यक्ति का मस्तिष्क जीवन के एक-एक प्रश्न को वापस जगा नहीं लेता और आस्थाओं के सारे पर्दे नहीं उखाड़ देता तब तक, तब तक नये चित्त का जन्म नहीं होगा। और नया चित्त ही प्रभु के निकट पहुंच सकता है, पुराना चित्त नहीं। वह जो ओल्ड माइंड है--ओल्ड माइंड का, पुराने चित्त का मतलब बूढ़े का चित्त नहीं है, बूढ़ा चित्त। बूढ़े का चित्त नहीं। बूढ़े आदमी के पास भी ताजा चित्त हो सकता है अगर वह सोचता है, खोजता है, विचार करता है। अगर उसका चित्त क्लोज्ड नहीं हो गया, बंद नहीं हो गया, खुला है अगर उसके चित्त की दीवालें, द्वार-दरवाजे खुले हैं, सूरज की रोशनी आती है नई, हवाएं आती हैं नई, बाहर की सुगंध आती है नई, अगर उसने अपने सारे चित्त को बंद कारागृह नहीं बना लिया, तो एक बूढ़े आदमी के पास भी जवान चित्त होता है। और अगर एक जवान का चित्त भी बंद है तो उसके पास बूढ़ा चित्त होता है। हिंदुस्तान में, इस देश में तो जवान चित्त खोजना मुश्किल है। जवान आदमी के पास ही खोजना मुश्किल है तो बूढ़े आदमी के पास खोजने का तो कोई सवाल नहीं, यह बूढ़ा चित्त कभी भी परमात्मा के द्वार पर प्रवेश नहीं कर सकता। क्यों? क्योंकि परमात्मा सदा जवान है। परमात्मा के बूढ़े होने का ख्याल सुना है कभी? परमात्मा सदा जवान है। परमात्मा सदा नया है। जीवन सदा नया है, अस्तित्व सदा ताजा है, प्रतिपल ताजा और नया है अस्तित्व। अगर हम चारों तरफ जगत को देखें तो सब नया है वहां। आदमी के मन को भर देखें तो वहां पुराना मिलेगा। जगत में तो कहीं पुराना नहीं मिलेगा। जो पत्ते कल थे वे आज नहीं रह गए हैं। जो सूरज कल निकला था वह आज नहीं निकला है। जो बदलियां कल घिरी थीं, वह आज नहीं घिरी हैं। जो हवाएं कल बही थीं, वे अब कहां हैं? जो गंगा में पानी कल था वह अब कहां पहुंच गया होगा? वह कहां होगा, अब वह किन किनारों पर होगा? कुछ भी वही नहीं है जो क्षण भर पहले था। सब तीव्रता से बदलता भागा चला जा रहा है सिर्फ आदमी के चित्त को छोड़ कर। आदमी का चित्त

क्यों नहीं बदलता तेजी से? इतनी ही तेजी से अगर आदमी का चित्त न बदले, अगर जीवन की गति के साथ आदमी के चित्त की गति का तारतम्य न हो तो जीवन अलग हो जाता, आदमी अलग हो जाता। आदमी अपने कैपस्युल में बंद हो जाता पुराने। और जिंदगी भागी चली जाती है। और तब इन दोनों का मिलन असंभव हो जाता है। जीवन से मिलना हो तो जीवन की तरह सतत प्रवाहशील होना जरूरी है। प्रश्न पूछने वाला चित्त प्रवाहित होता है। क्योंकि प्रश्न का मतलब ही यह है कि हम पुराने को तोड़ने का उपाय करते हैं, द्वार खोलते हैं, नये की तरफ उत्सुकता जाहिर करते हैं। लेकिन हम प्रश्न पूछते ही नहीं, हम प्रश्न पूछते ही नहीं। हमें जैसे प्रश्न पूछना एक भय का कारण मालूम पड़ता है--पूछो ही मत। विचार जिसे करना है, उसे यह भय छोड़ देना पड़ेगा। उसे पूछना पड़ेगा। संदेह उठाना पड़ेगा। उन सब पर भी, उन सारे सत्यों पर भी जो कहने वालों को असंदिग्ध रहे हों, उन पर भी संदेह उठाना पड़ेगा। क्योंकि तभी हम भी उस जगह तक पहुंचेंगे जहां असंदिग्ध सत्य का हम भी अनुभव कर सकें। संदेह के मार्ग से कोई असंदेह तक पहुंचता है। विश्वास के मार्ग से आदमी संदेह में ही जीता है और मर जाता है। विश्वास ऊपर होता है, भीतर संदेह होता है। संदेह को दबाए चले जाओ, विश्वास को थोपे चले जाओ।
पूछो किसी आदमी से, जो कहता है कि ईश्वर है। खोलो थोड़ी उसकी छाती। उससे कहो कि थोड़ा भीतर खोजो--कहीं ऐसा तो नहीं है कि भीतर शक हो, संदेह हो कि नहीं है। वह आदमी कहेगा, नहीं, मेरा दृढ़ विश्वास है। और जितने जोर से वह कहे मेरा दृढ़ विश्वास है, जानना कि उसके भीतर उतना ही गहरा संदेह है। उसी गहरे संदेह को दबाने के लिए दृढ़ विश्वास की जरूरत पड़ी, नहीं तो दृढ़ विश्वास की जरूरत न थी।
विश्वास किस चीज की दवा है? विश्वास संदेह को दबाने की पद्धति है। संदेह को मिटाना है, दबाना नहीं। इसलिए संदेह को पूरा प्रकट होने दो, ताकि वह प्रकट हो और उड़ जाए। प्रकट हो, सत्य से टकराए, नष्ट हो जाए। इतना ध्यान रहे कि कोई संदेह सत्य को नष्ट नहीं कर सकता है। इसलिए संदेह से भयभीत होने की कोई भी जरूरत नहीं। संदेह टकराएगा सत्य से, सत्य बचेगा, संदेह खो जाएगा। लेकिन जो भयभीत हैं, वे शायद संदेह को सत्य से ज्यादा बड़ा मानते हैं। सभी विश्वासी, सभी श्रद्धावान संदेह को सत्य से बड़ा मानते होंगे। इसलिए वे कहते हैं, संदेह मत करो, विश्वास करो। संदेह क्या सत्य से बड़ा है कि करने से सत्य मिट जाएगा? संदेह बच जाएगा। संदेह की क्या शक्ति है सत्य के समक्ष? लेकिन हां, संदेह विश्वास से बड़ा है। इसलिए विश्वासी घबड़ाता है। संदेह उठेगा, विश्वास टूट जाएगा। लेकिन विश्वास की तो दो कौड़ी कीमत नहीं है। असली सवाल तो उस सत्य का है जिसके समक्ष संदेह गिर जाता है, टूट जाता है, नष्ट हो जाता है, खो जाता है। सत्य के समक्ष संदेह वैसे ही मिट जाता है जैसे दीये के समक्ष अंधकार मिट जाता है। दीया जला और अंधकार नहीं। लेकिन दीया मत जलाओ, द्वार-दरवाजे बंद करके अंधेरे को छिपा लो। उससे अंधेरा मिटेगा नहीं। उससे अंधेरा और सघन होगा। द्वार- सेजोेथोड़ी बहुत रोशनी आती थी वह भी नहीं आएगी। अंधेरा गहन होगा। सब दरवाजे बंद कर लो। दरवाजे पर पहरा लगा कर बैठ जाओ तो भीतर अंधेरा और गहन होगा।
विश्वासी आदमी के भीतर संदेह बहुत गहन होता है। संदेह को मिटाना हो, द्वार-दरवाजे खोलो, पूछो, डरो मत। विचार की पहली सीढ़ी हैः संदेह। दूसरी सीढ़ी हैः तर्क, दूसरी सीढ़ी है तर्कना, दूसरी सीढ़ी है रीजनिंग। सिर्फ पूछो ही मत--ऐसा भी हो सकता है कि पूछते सिर्फ इसलिए हो कि कोई बंधा हुआ उत्तर है, वही दे देने का इंतजाम है। पूछ लेते हो, फिर बंधा हुआ उत्तर दे देते हो। एक आदमी पूछता है, मैं कौन हूं? फिर बंधा हुआ उत्तर है, कहता है, मैं? मैं ब्रह्म स्वरूप, सत्-चित्त्-आनंद, मैं आत्मा हूं। यह उत्तर किताब से सीखा हुआ तैयार है। उसी किताब में उसने यह भी पढ़ा है कि पूछो मैं कौन हूं? उसी किताब में यह भी पढ़ा है कि उत्तर दो कि मैं ब्रह्म हूं। यह बेमानी है। यह पूछना किसी अर्थ का नहीं है। पूछो तो, तर्क करो, तो पूछने की कोई सार्थकता होगी। तोलो, बंधे हुए उत्तर मत दे दो। अगर बंधे हुए उत्तर देने हैं तो पूछना बेमानी हो गया। प्रश्न बनाया भी और पोंछ भी दिया। वह श्रम व्यर्थ गया। प्रश्न पूछना है तो उत्तर आने दो। सीखा हुआ उत्तर नहीं चाहिए। और जो

उत्तर आए उसे तर्क की कसौटी पर कसो। देखो कि वह ठीक मालूम पड़ता हैं कि नहीं।
एक फकीर एक संध्या अपने घर आया है। किसी ने रास्ते में भिक्षा में उसे कुछ मांस दे दिया है। वह मांस घर लाकर उसने रखा है। पत्नी से कहा कि तैयार कर, मैं दस-पांच मित्रों को निमंत्रण दे आता हूं। पत्नी परेशान है। उसने सोचा, छिपा दो मांस को। दस-पांच मित्रों की परेशानी में मत पड़ो। पति लौट कर आया, उसने कहाः क्यों बैठी है तू, चूल्हा नहीं जला? उसने कहाः वह तुम्हारी जो बिल्ली है, मांस खा गई। उसके पति ने कहाः ऐसा क्या? वह बिल्ली कहां है? वह बिल्ली को पकड़ लाया, पड़ोस से एक तराजू ले आया। तीन पौंड मांस था। बिल्ली को तराजू पर रखा। बिल्ली तीन पौंड निकली। उस फकीर ने कहाः इफ दिस इ.ज दि मिट, वेयर इ.ज दि कैट? अगर यह मांस है, तो बिल्ली कहां है? मान नहीं लिया कि बिल्ली खा गई, तीन पौंड मांस बिल्ली खा जाएगी, तो बिल्ली का वजन तो बढ़ जाएगा। संयोग की बात, बिल्ली का खुद का वजन तीन पौंड है। उस फकीर ने कहाः तू ठीक कहती है कि बिल्ली मांस खा गई। यह तो मांस हो गया। अब बिल्ली कहां है? या अगर यह बिल्ली है तो कृपा कर द्वार-दरवाजे खोल, मांस कहां है? बाहर निकाल।
तौलने का अर्थ हैः तर्क। तर्क का अर्थ है जो कहा जा रहा है उसे तोलो। उसे पहचानो। कहा जा रहा है, मंदिर की मूर्ति सबकी रक्षा करती है। जरा मंदिर की मूर्ति को धक्का देकर देखो, अपनी भी रक्षा कर पाती है कि नहीं कर पाती है! तो पता चलेगा कि अपनी भी रक्षा कर पाती है या नहीं कर पाती है, तो फिर सबकी रक्षा भी कर सकेगी? सोमनाथ के मंदिर पर हमला हुआ, तो पंडितों ने, पुजारियों ने क्या किया? आस-पास के राजपूतों ने खबर भेजी कि हम आएं रक्षा को? तो पुजारियों ने क्या उत्तर दिया? पुजारियों ने कहा कि जो सबका रक्षक है उसकी रक्षा तुम करोगे? नास्तिक हो? अधार्मिक हो? जो सबकी रक्षा करने वाला है, उसकी रक्षा तुम करोगे? रह गए बिचारे चुप। क्या जवाब देते? तर्क की तो क्षमता नहीं है। तर्क की क्षमता होती तो हारता यह मुल्क, ऐसा हर छोटी- छोटी बात में? चुप रह गए वे कि ठीक है, जब पुजारी कहते हैं तो ठीक कहते हैं। और जब दुश्मन गजनी ने हमला किया, तो पांच सौ पुजारी प्रार्थना कर रहे हैं भगवान से कि हमारी रक्षा करो! और वह गजनी घुस गया उनकी प्रार्थना के बीच। उसने गदा मारी और वे भगवान, जिनके सामने पांच सौ लोग प्रार्थना करते थे, और अरबों लोगों ने पहले प्रार्थना की होगी, वे भगवान चारों खाने चित्त हो गए, चार टुकड़े हो गए।
लेकिन इतनी सी बात तो वे राजपूत भी कर सकते थे आकर जांच। वे भी एक धक्का देकर देख सकते थे कि मूर्ति रक्षा कर पाएगी अपनी भी कि नहीं, कि सबकी करेगी? नहीं, पर तर्कणा नहीं है। नहीं, पर विचारणा नहीं है। नहीं, पर सोचना नहीं है, तोलना नहीं है। जो कह दिया उसे चुपचाप मान लेना। उसे अंधे की तरह मान लेना। तर्क का अर्थ हैः तोलो। उसके दोनों पहलू तोलो। जो दावा किया जा रहा है उसकी परीक्षा करो कि वह दावा ठीक या नहीं। उसके विपरीत विकल्प खोजो और देखो कि क्या ठीक है? पच्चीस विकल्प हो सकते हैं, कौन ठीक है, इसकी बुद्धिगत कसौटी करो। लेकिन अबुद्धि पूर्वक स्वीकार चल रहा है। तर्कणा कौन करे? और धार्मिक, तथाकथित धार्मिक समझाते हैं, तर्क मत करना। तर्क करना ही मत। तर्क आदमी को नास्तिक बना देता है, और मैं आपसे कहता हूं कि जो तर्क करके नास्तिक बनता है, अगर तर्क करता ही चला जाए तो बहुत देर तक, नास्तिकता नहीं टिकेगी। नास्तिकता भी खो जाएगी। अधूरे तर्क पर कोई रुक जाए तो नास्तिक रह जाता है। अगर पूरे तर्क पर कोई चला जाए तो तर्क को भी पार कर जाता है। और जो कभी नास्तिक नहीं हुआ वह कभी ठीक से आस्तिक नहीं हो सकता है। आस्तिक होने के लिए नास्तिकता से गुजर जाना जरूरी है। नास्तिकता का कुल मतलब इतना है कि हम तर्क करते हैं, सोचते हैं, विचार करते हैं। जो आदमी नास्तिकता से नहीं गुजरा, उस आदमी ने न कभी सोचा, न कभी खोजा, वह आदमी डरा हुआ है और भय के कारण उसने भगवान को पकड़ रखा है। भगवान उसकी विचारगत निष्पत्ति नहीं बनी, भगवान उसकी खोज का अंतिम निष्कर्ष नहीं बना, निष्पत्ति नहीं बनी, पकड़ लिया है।

दूसरा सूत्र हैः तर्क। सब तरफ से सोचो, खोजो, पूछो। सारे विकल्प देखो, जल्दी से कोई एक विकल्प मत पकड़ लो। जल्दी से कोई पक्षपात मत बना लो। निष्पक्ष भाव से खोजो, कौन क्या कहता है? इस मुल्क में चार्वाक ने कुछ तर्क दिए हैं, लेकिन कोई नहीं सुनने जाएगा। लेकिन जो चार्वाक को नहीं सुनता है वह कभी भी ठीक अर्थों में प्रभु के द्वार पर प्रविष्ट नहीं हो सकता। चार्वाक को सुन कर जो खोज में लगता है वह शायद प्रवेश पा भी जाए, लेकिन चार्वाक की तरफ कानों में अंगुलियां डाल कर जो निकल जाता है वह बहरा आदमी है, वह कभी आगे नहीं जा सकता है। इतना भय क्या है? चार्वाक की एक किताब नहीं बची--तर्कपूर्ण थीं। आग लगा दी होगी। चार्वाक के संबंध में जो भी शब्द मिलते हैं वे उनके विरोधियों की किताबों में लिखे हुए हैं, और कुछ सूत्र नहीं मिलते। आश्चर्यजनक है। हमने जैसे तर्क को जड़ से काटने की कोशिश की है। कहीं भी तर्क हो, विचार हो, उसे खत्म करो और अविचार को, विश्वास को दृढ़ करो, मजबूत करो। इसी कारण इस देश में विज्ञान का जन्म नहीं हो सका। विज्ञान वहां पैदा होता है जहां तर्क है। विज्ञान तर्क की फलश्रुति है। विज्ञान यहां पैदा नहीं हुआ, क्योंकि तर्क ही हमने कभी नहीं किया। और आज भी हम तर्क नहीं कर रहे हैं तो विज्ञान इस देश में पैदा नहीं होगा। और जो देश विज्ञान ही पैदा नहीं कर सकता वह देश धर्म कैसे पैदा करेगा? विज्ञान है पदार्थ का सत्य। और अगर हम पदार्थ का सत्य भी जानने में असमर्थ हैं तो हम परमात्मा का सत्य कैसे जान सकेंगे? वह तो बहुत ऊंची बात है। वह तो बहुत गहरी बात है। पदार्थ तो बहुत बाहरी बात है, पदार्थ तो बहुत स्थूल है। पदार्थ तो वह है जो दिखाई पड़ता है। परमात्मा वह है जो दिखाई नहीं पड़ता है। जिनकी पकड़ अभी दिखाई पड़ने वाले पर भी नहीं बैठ पाती, वे अदृश्य को पकड़ लेंगे, यह मात्र कल्पना हो जाती है।
विज्ञान से गुजरना भी जरूरी है, नास्तिकता से गुजरना भी जरूरी है, तर्क से गुजरना भी जरूरी है। और इससे जो गुजरता है उसको एक प्रौढ़ता, एक मैच्योरिटी मिलती है, उसके मस्तिष्क को एक बल मिलता है। उसके पैर किसी ठोस बुनियाद पर खड़े होने लगते हैं। फिर अगर वह किसी दिन ईश्वर के द्वार पर खटखटा देता है और द्वार में प्रविष्ट हो जाता है तो उसके पीछे एक आधारशिला होती है। उसे फिर वापस नहीं लौटाया जा सकता। लेकिन जो तर्क से नहीं गुजरा और ईश्वर के पास पहुंच गया कल्पना में, उसे तत्क्षण वापस लौटाया जा सकता है। उसके पीछे कोई आधार नहीं, कोई बुनियाद नहीं। उसके मकान की कोई नींव नहीं, उसने मकान बना लिया है। बिना नींव का वह मकान है।
यह दूसरी बात कहना चाहता हूं, एक-एक बात पर तर्कना की जरूरत है। तर्क
से जो हीन है, तर्क से जो नीचे है, वह स्वीकार के योग्य नहीं है। उसे स्वीकृति नहीं दी जानी चाहिए। सोचा ही जाना चाहिए। विश्वास सिखाता है, समर्पण। विचार सिखाता है, संघर्षण। विश्वास कहता है, सब छोड़ कर मेरी शरण में आ जाओ--सब छोड़ो, तुम सोचो मत, मेरी शरण में आ जाओ। विश्वास सिखाता है, शरण, किसी की शरण में आ जाओ। तर्क सिखाता है--अशरण हो जाओ। किसी की शरण मत जाना। खुद सोचना, खुद विचार करना। संघर्ष, संघर्ष करना विचार से--यह ठीक है, वह ठीक है। यह ठीक नहीं है, वह ठीक नहीं है। खोजना, खोजना। जरूरी नहीं है कि खोज से आज ही सत्य मिल जाएगा। लेकिन खोजने से, भीतर जो खोजने वाली चेतना है वह ज्यादा प्रगाढ़ ज्यादा मजबूत, ज्यादा प्रौढ़ हो जाएगी। वही असली सवाल है। वही महत्वपूर्ण सवाल है।
तीसरी सीढ़ी हैः चिंतन। तर्क है रीजनिंग, चिंतन है कंटेंप्लेशन। सारे तर्क कर डालो, सारे तर्क देख डालो। आस्तिक को सुनो, नास्तिक को सुनो, ईश्वर के पक्षपाती को सुनो, विपक्षी को सुनो, जो भी चारों तरफ तर्क दिए गए हैं जीवन के सत्य के लिए, सबके लिए द्वार खुला छोड़ दो, सबको भीतर आने दो। लेकिन फिर स्वयं सोचो। निर्णायक बनो। चिंतन का अर्थ हैः फिर सोचो, कौन ठीक है, कौन मेरी बुद्धि की कसौटी पर ठीक है, इसके चिंतन में उतरो। और एक-एक चीज के सारे पहलुओं को खोजो। जल्दी नहीं है। घबड़ाहट नहीं है। जल्दी पकड़ लेने का आग्रह नहीं है। एक-एक चीज को उलटाओ, उसके चारों तरफ से देखो। आस्तिक कहता हैः दुनिया है तो जरूर किसी ने बनाई होगी, उस बनाने वाले का नाम भगवान है, बिना बनाए दुनिया कैसे बन सकती है? सुनो उसकी बात। खोजो इस बात को कि यह

ठीक तो कहता है, बिना बनाए दुनिया कैसे बन सकती है? नास्तिक की बात भी सुनो, वह कहता है, अगर दुनिया बनाए बिना नहीं बन सकती, तो मैं यह पूछता हूं कि भगवान को किसने बनाया है? सुनो उसकी बात। वह भी तो अर्थपूर्ण बात कहता है। वह कहता है, अगर दुनिया बिना बनाने वाले के नहीं बन सकती तो भगवान को भी तो किसी ने बनाया होगा, फिर भगवान को किसने बनाया है? और अगर कहो कि किसी ने बनाया है तो वह पूछता है, उसको किसने बनाया है? और तब पता चलता है कि यह तर्क ईश्वर के लिए बेमानी है। इससे ईश्वर न सिद्ध होता है, न असिद्ध होता है। इन दोनों को तोलो और तोल कर पाओ कि इनमें कुछ सिद्ध होता है कि ये दोनों व्यर्थ हो जाते हैं।
अगर कोई व्यक्ति ठीक से चिंतन करेगा तो वह पाएगा कि जीवन के परम सत्य
के संबंध में कोई भी तर्क कुछ सिद्ध नहीं कर पाता। तर्क दलील देता है, एक बात कहता है। लेकिन ठीक विपरीत तर्क दूसरी दलील देता है, दूसरी बात कहता है। अगर दूसरे तर्क को सुना ही नहीं, तो एक तर्क को तुम पकड़ लोगे। लेकिन यह चिंतन न हुआ। तुम आस्तिक हो जाओगे। नास्तिक हो जाओगे। लेकिन यह चिंतन न हुआ। चिंतन का अर्थ हैः एक-एक तर्क को निष्पक्ष रूप से खोजो। खोज कर पता चलेगा कि कोई भी तर्क सत्य को सिद्ध नहीं कर पाता। कोई भी तर्क सिद्ध नहीं कर पाता। एक तर्क जो सिद्ध करता है, दूसरा उसे असिद्ध कर जाता है। और तब एक बहुत बड़ी प्रौढ़ता उपलब्ध होगी कि तर्क भी बुद्धि का एक खेल है। विश्वास बुद्धि के नीचे हैं। तर्क बुद्धि के भीतर है। लेकिन तर्क भी एक खेल है, और जिस दिन यह अनुभव होता है, तर्क करने वाले विचारशील मस्तिष्क को जब यह पता चलता है कि तर्क भी एक खेल है, तो तर्क से ऊपर उठने की संभावना का द्वार खुल जाता है।
मैंने सुना है, एक आदमी ने अमरीका के एक बड़े नगर में आकर खबर की कि मैं
एक ऐसा घोड़ा लाया हूं, जैसा घोड़ा पृथ्वी पर कभी नहीं हुआ। उस घोड़े का मुंह वहां है जहां पूंछ होनी चाहिए और पूंछ वहां है जहां मुंह होना चाहिए। जिन्हें देखना हो वे फलां-फलां थियेटर में सांझ पहुंच जाएं, इतने-इतने रुपये की टिकट होगी। सारा गांव टूट पड़ा। अगर आप भी रहे होंगे उस गांव में तो आप भी जरूर गए होंगे। ऐसे घोड़े को देखने से कौन बच सकता है? लोग चिल्लाने लगे, भीड़ भारी है, सारा हाल भरा है। हाल के बाहर लोग भरे हैं। लोग चिल्ला रहे हैं कि जल्दी घोड़ा निकालो। वह आदमी कहता है कि कोई साधारण घोड़ा नहीं है, थोड़ा धैर्य रखिए। घोड़ा आते ही आएगा। फिर धीरे-धीरे इंच-इंच जगह भर गई, श्वास लेना मुश्किल है, और फिर उस आदमी ने पर्दा हटाया। और एक बिल्कुल साधारण घोड़ा खड़ा हुआ है। लोगों ने गौर से देखा, एक क्षण तो सकते में आ गए, श्वास रुक गई। यही घोड़ा है? फिर लोग चिल्लाए, धोखा दे रहे हो। मजाक कर रहे हो? यह तो साधारण घोड़ा है। उस आदमी ने कहाः जरा गौर से देखो, मेरे तर्क को देखो। फिर लोगों ने गौर से देखा, कुछ खास बात नहीं दिखाई पड़ती, सिर्फ एक मामला दिखाई पड़ता है, घोड़ा साधारण है। सिर्फ जो तोबरा मुंह में बांधा जाता है वह तोबरा उसकी पूंछ में बंधा हुआ है। और उस आदमी ने कहाः देखो गौर से, इस घोड़े का मुंह वहां है जहां पूंछ होनी चाहिए। और पूंछ वहां है, तोबरे में जहां मुंह होना चाहिए। यह घोड़ा बहुत विशेष है। और लोगों से कहा, तर्क समझ गए मेरा? अब बिना शोरगुल किए चुपचाप घर वापस चले जाओ। जो मैंने कहा था वह वायदा पूरा कर दिया।
तर्क तो ठीक है, लेकिन खिलवाड़ हो गया। लेकिन तर्क खिलवाड़ है यह भी तर्क के पहले पता नहीं चल सकता, यह भी तर्क से गुजर कर ही पता चलता है। लेकिन कोई कहेगा, जब तर्क चिंतन से पता चलता है कि बेमानी है, तो हम तर्क ही क्यों करें हम? पहले ही क्यों न रुक जाएं।
मैंने सुना है, एक स्टेशन पर बड़ा झगड़ा मचा हुआ था। कुछ लोग तीर्थ यात्रा को जा रहे हैं, हरिद्वार जा रहे हैं। और स्टेशन पर शोरगुल है। सारे लोग गाड़ी में बैठ रहे हैं। सब चिल्ला रहे हैं, सामान रखो, जल्दी रखो, कोई पीछे न छूट जाए, लड़का न छूट जाए, पत्नी न छूट जाए। गाड़ी छूटने को है। सीटी बजने लगी, घंटी हो गई, झंडी फहरने लगी। लेकिन एक आदमी के पास बड़ी भीड़ हैः आठ-दस आदमी उसे पकड़ कर खींच रहे हैं, और वह आदमी यह कहता है, पहले मुझे यह बताओ, इस गाड़ी में चढूंगा तभी जब तुम यह वायदा कर दो कि फिर इसमें से उतरना

तो नहीं पड़ेगा। अगर उतरना ही हो चढ़ने की क्या जरूरत? हम चढ़े क्यों, अगर उतरना हो। अगर उतरना ही है तो हम बिना चढ़े ही बेहतर। वे लोग कह रहे हैं, गाड़ी छूट जाएगी। रास्ते में तुम्हें समझाएंगे। उतरना तो पड़ेगा, लेकिन चढ़ना भी जरूरी है। लेकिन वह आदमी नहीं मानता, वह कहता है कि जब चढ़ना है और फिर उतरना है तो चढ़े क्यों? उसका तर्क ठीक है। लेकिन लोग, मित्र जबरदस्ती उसे भीतर चढ़ा लेते हैं।
फिर हरिद्वार आ गया। अब सारे लोग उतर रहे हैं। अब फिर वही झंझट शुरू
हो गई। मित्र कह रहे हैं, नीचे उतरो। वह आदमी कहता है हम चढ़ कर उतरने वालों में से नहीं हैं। हम सिद्धांत के बड़े पक्के हैं। हम चढ़ गए सो चढ़ गए। हम ऐसे नहीं है कि कल कुछ, आज कुछ। हम पक्के आदमी हैं। हम चढ़ गए तो चढ़ गए, अब हम उतरेंगे नहीं। हमने पहले ही कहा था कि अगर उतरना हो तो चढ़ेंगे नहीं। मित्र जबरदस्ती नीचे उतार रहे हैं, लेकिन वह आदमी कहता है, यह बिल्कुल ठीक बात नहीं, तुम जबरदस्ती कर रहे हो। अगर उतारना था तो चढ़ाया क्यों था? वह आदमी ठीक कहता है। थोड़ी सी भूल करता है। जहां चढ़ा था वह हरिद्वार नहीं था, जहां उतर रहा है वह हरिद्वार है।
विश्वास करने वाला आदमी भी कहता है कि एक समय जाकर तर्क व्यर्थ हो जाता है, तो फिर हम तर्क करें ही क्यों? लेकिन विश्वास हरिद्वार नहीं है। विश्वास तर्क से पहले की अवस्था है। और जो विश्वास पर रुक जाता है और तर्क से नहीं गुजरता, वह तर्कातीत, बियांड दी रीजनिंग कभी नहीं पहुंच पाता। तर्कातीत अवस्था उसे कभी उपलब्ध नहीं होती। वह तर्क के पहले ही रह जाता है। तर्क के बाद की अवस्था उसे कभी उपलब्ध नहीं होती। सत्य तर्कातीत है। सत्य तर्क से नहीं मिल जाता, सत्य तर्कातीत है। ट्रासेंडेंटल है। तर्क से भी आगे है। लेकिन जो तर्क करता है, वही आगे जा पाता है। विश्वासी कहता है, तर्क से भी तो नहीं मिलता, हम पहले ही रुक जाते हैं। वह कहता है, हम तर्क में जाएं क्यों? हम तर्क के पहले रुक जाते हैं। वह तर्कहीन है, तर्कातीत नहीं। लेकिन जो तर्क से गुजरता है, उस प्रौढ़ता से गुजरता है, सब खोजता है, सारे तर्कों की एक-एक बारीक बात सुनता है। और आखिर में चिंतन करता है, तो चिंतन से कंटेंप्लेशन से यह पता चलता है कि विश्वास तो पहुंचाता नहीं। तर्क पहुंचाता है, लेकिन द्वार पर ही रोक लेता है, भीतर नहीं जाने देता।
विश्वास तो झूठे द्वार पर खड़ा कर देता है। तर्क ठीक द्वार पर खड़ा करता है।
लेकिन द्वार पर ही खड़ा करता है, भीतर प्रवेश नहीं करने देता।
तर्क के बाद है, चिंतन; वह भी विचार की तीसरी सीढ़ी है। चिंतन का मतलब हैः सारे तर्कों का निष्पक्ष आंदोलन, सारे तर्कों की निष्पक्ष समीक्षा। देखना है क्या है ठीक, क्या है नहीं ठीक। और जब तर्क को कोई बहुत गौर से देखता है तो पाता है कि तर्क जिसे सिद्ध करता है, उसे असिद्ध भी कर देता है। उसे ही असिद्ध कर देता है जिसे सिद्ध करता है। तर्क दोनों पहलुओं को सिद्ध कर देता है, दोनों को असिद्ध कर देता है। और तब तर्क एक खेल रह जाता है, एक जाल रह जाता है, एक पहेली रह जाती है। जिस पहेली का अपना सुख है, लेकिन पहेली के बाहर जाने का वहां कोई मार्ग नहीं है। लेकिन जो इस पूरी पहेली को जीएगा वह बाहर हो जाता है।
एक गांव में एक सम्राट ने तय किया कि मैं अपने गांव में असत्य नहीं चलने दूंगा। और जो असत्य बोलेगा उसको फांसी लगा दूंगा। गांव के एक वृद्ध संन्यासी को बुला कर उसने पूछा कि तुम्हारी क्या आज्ञा है? मैंने तय किया है कि असत्य नहीं चलने दूंगा, आशीर्वाद दो। उस संन्यासी ने पूछाः करोगे क्या? तरकीब क्या है असत्य न चलने देने की? उसने कहाः मैं एक आदमी को रोज फांसी पर लटकाऊंगा जो असत्य बोलेगा। उस संन्यासी ने कहाः आश्चर्य! क्योंकि अभी तक यही तय नहीं हो सका है कि सत्य क्या है और असत्य क्या है? निर्णय का रास्ता क्या है? उस आदमी ने कहाः तर्क करेंगे, विचार करेंगे। उसने कहाः बहुत अच्छा है। लेकिन तर्क और विचार से निर्णय होगा? तर्क और विचार से विश्वास के जो निर्णय थे वे खंडित हो जाएंगे। तर्क और विचार निषेधात्मक प्रक्रिया है, निगेटिव है। वह उखाड़ देगा विश्वास को। लेकिन पाजिटिव कुछ देगा, विधायक कुछ मिलेगा? पता चलेगा क्या है सत्य, क्या है असत्य? उस राजा ने कहाः हमने इसीलिए आपको पूछने के लिए बुलाया है। आप हमें

बताएं, हम वैसा करें। उस फकीर ने कहाः फांसी कहां लगाओगे? राजा ने कहाः गांव का जो नगर द्वार है, कल सुबह नये वर्ष के शुरू दिन में एक आदमी को हम वहां लटकाएंगे जो झूठ बोलता पकड़ा जाएगा। उस फकीर ने कहाः फिर मैं कल सुबह नगर-द्वार पर ही मिलूंगा। कल सुबह आप वहीं मिल जाएं और अपने तर्कशास्त्रियों को लेकर वहां आ जाएं कि वे निर्णय कर सकें कि सत्य क्या है, असत्य क्या है।
दूसरे दिन द्वार खुला, फकीर अपने घोड़े पर सवार भीतर प्रविष्ट हुआ। राजा ने पूछा, घोड़े पर सवार आप कहां जा रहे हैं? उस फकीर ने कहाः मैं फांसी पर चढ़ने जा रहा हूं। राजा ने कहाः क्यों झूठ बोलते हैं? आपको, और कौन फांसी पर चढ़ाएगा? उस फकीर ने कहाः अगर झूठ बोलता हूं तो फांसी पर चढ़ा दो, लेकिन तब जो मैंने बोला वह सत्य हो जाएगा। और अगर मुझे फांसी पर नहीं चढ़ाते तो झूठ बोलने वाले आदमी को बिना फांसी पर चढ़े हुए जाने दिया है। अब तुम निर्णय कर लो। ये तुम्हारे सब विचार करने वाले निर्णय कर लें कि मुझे फांसी देनी है कि नहीं देनी है? वह राजा और उसके पंडित बहुत मुश्किल में पड़ गए। उन्होंने कहाः अगर हम इसे जाने देते हैं तो यह आदमी झूठ बोल रहा है कि मैं फांसी पर चढ़ने जा रहा हूं। और अगर नहीं जाने देते, और फांसी पर लटकाते हैं तो यह आदमी सत्य हो जाता है, और हमारा फांसी देना सत्य के लिए फांसी हो जाती है। अब हम क्या करें? उस फकीर ने कहाः जब तुम निर्णय कर लो तो मुझे खबर कर देना, मैं फांसी पर चढ़ने आ जाऊंगा। वह अपना घोड़ा बढ़ा कर चला गया। फिर वर्षों बीत गए, उस फकीर को कोई खबर नहीं आई। बार-बार उसने खबर भेजी राजा को कि निर्णय हुआ हो तो बोलो। उस राजा ने कहाः कुछ निर्णय नहीं होता। हम तर्क कर-कर के हार गए। अब हम आपसे ही पूछते हैं कि सत्य को हम कैसे जानें? तो उस फकीर ने कहाः तर्क करो, और जब हार जाओ तो तर्क के ऊपर उठो। लेकिन हारे बिना कोई ऊपर नहीं उठ सकता है।
तर्क का एक ही उपयोग है, विचार का एक ही उपयोग है, मनन का एक ही उपयोग
है कि अंतिम चरण में मनन, विचार, तर्क अपने को ही व्यर्थ कर जाते हैं। विचार अंततः वहां पहुंचाता है जहां विचार कहता हैः निर्विचार हो जाओ तो द्वार खुल सकता है। विचार से तो एक चक्कर पैदा होता है, कुछ खुलता नहीं है। विश्वास एक कांटा है जो लगा हो पैर में। और किसी आदमी को कांटा लगा हो और हम उससे कहें कि दूसरा कांटा ले आएं तुम्हारे कांटे को निकालने को? वह आदमी चिल्लाए और कहे कि पागल हुए हो, एक ही कांटा मुझे काफी तकलीफ दे रहा है और तुम दूसरा कांटा लाना चाहते हो? हम उससे कहें कि हम उस कांटे को इस कांटे को निकालने को लाते हैं। कांटा ले आएं, उसका पहला कांटा निकाल कर फेंक दें, और वह आदमी दूसरे कांटे को पहले कांटे के घाव में सम्हाल कर वापस रखने लगे और कहे, इसने बड़ी कृपा की है। इसे हम सम्हाल कर इसी छेद में रख लेते हैं। हम उससे कहें तू पागल है, फिर तो बात वही हो गई।
मैं विश्वास का विरोधी हूं विचार के पक्ष में। विचार के कांटे से सब विश्वास की जड़ें उखाड़ कर फेंक देनी चाहिए। फेंक देने बिना कोई रास्ता नहीं है। लेकिन इससे यह मत समझ लेना कि मैं यह कह रहा हूं कि फिर विश्वास की जगह विचार को रख लेना। जैसे ही वह कांटा व्यर्थ हुआ, विचार भी व्यर्थ हो जाता है। और विचार व्यर्थ होता है तभी जब हम विचार से गुजरते हैं, करते हैं, खोजते हैं और आखिर में पाते हैं कि विचार करने से धारणाएं मिलती हैं, कंसेप्टस मिलते हैं, ट्रूथ नहीं मिलता, सत्य नहीं मिलता, कितना ही विचार करें, तो हमें कुछ धारणा मिल सकती है कि ऐसा होगा सत्य, लेकिन ऐसा है सत्य, यह नहीं मिलता। विचार करने से, सोचने से पता चलता है कि शायद ऐसा होगा। परहेप्स, विचार कभी भी परहेप्स के ऊपर नहीं ले जाता। वह कहता है, शायद ऐसा होगा। इसीलिए विज्ञान परहेप्स के ऊपर नहीं उठता। विज्ञान कहता है, शायद ऐसा है। कल बदल सकता है, परसों बदल सकता है। फिर आगे बदलता रहेगा। न्यूटन कुछ और कहता है, आइंस्टीन कुछ और कहता है, आइंस्टीन के बेटे कुछ और कहेंगे, उनके बेटे कुछ और कहेंगे, और हमेशा परहेप्स लगा रहेगा। लगा रहेगा स्यात, ऐसा है। इतना हम कह सकते हैं कि अभी तक जो हम जानते हैं उससे ऐसा लगता है। कल, कल हम और जानेंगे, और, और अन्यथा लग सकता है। विचार स्यात के ऊपर,

प्रोबेबिलिटी के ऊपर, परहेप्स के ऊपर, संभावना के ऊपर नहीं ले जा सकता।
विचार एक धारणा देता है, कंसेप्ट एक प्रत्यय कि ऐसा हो सकता है।
विचार की धारणा सत्य नहीं है। सत्य तो वहां है जहां सारी धारणाएं छूट जाती हैं। लेकिन विचार से गुजरना जरूरी है।
मैं एक उदाहरण के लिए कहूं, एक आदमी गरीब है, नंगा खड़ा है सड़क पर। फिर
एक महावीर हैं, वे राजपुत्र हैं, उन्होंने सुंदरतम वस्त्र पहने हैं, वे सुंदरतम गद्दों पर सोए हैं। उन्होंने जीवन का सब सुख भोग पाया है। फिर वे भी सब छोड़ कर रास्ते पर आकर नंगे खड़े हो गए हैं। ये दोनों आदमी नंगे खड़े हैं। अगर इनका एक फोटोग्राफ उतारा जाए तो फोटोग्राफ में काई फर्क नहीं मालूम पड़ेगा कि इन दोनों के नंगेपन में कोई फर्क है। लेकिन एक नंगा आदमी, जिसने कपड़े नहीं जाने, और ही तरह से नंगा है। और एक आदमी, जिसने सब सुंदरतम वस्त्र जाने, नंगा होकर खड़ा हो गया है, और ही तरह से नंगा है। एक का नंगापन गरीबी है। दरिद्रता है। एक का नंगापन मजबूरी है। एक का नंगापन आनंद है, मुक्ति है, स्वेच्छा है। एक के नंगेपन में कपड़े पहनने की आकांक्षा छिपी है। एक के नंगेपन में कपड़ों के ऊपर चले जाने का द्वार खुल गया है। ये दोनों आदमी दो भांति नंगे हैं। महावीर की नग्नता का सौंदर्य ही और है। एक गरीब आदमी की नग्नता एक कुरूपता है, एक अग्लीनेस है। क्योंकि गरीब आदमी के भीतर वस्त्रों की चाह छिपी है। उस नग्नता के भीतर मांग है, कि वस्त्र मिल जाएं। वस्त्र नहीं मिल रहे हैं, इसलिए पीड़ा भी है। महावीर वस्त्रों के ऊपर उठ गए हैं। वह भी नग्न खड़े हैं। वहां वस्त्रों की कोई मांग नहीं है। वह मांग खत्म हो गई है। अब वह नग्नता अत्यंत निर्दोष है। अब उस नग्नता में अपने को छिपाने की, वस्त्रों की मांग की कोई कल्पना नहीं है।
एक आदमी विश्वास कर रहा है। वह गरीब आदमी की तरह नंगा है। एक आदमी विचार करके विचार के ऊपर चला गया है। वह महावीर की तरह नग्न है। इन दोनों में जमीन-आसमान का फर्क है। विश्वास करने वाला भी विचार नहीं करता। विचार के ऊपर उठ जाने वाला भी विचार छोड़ देता है। लेकिन विचार न करना एक बात है, और विचार छोड़ देना बिल्कुल दूसरी बात है। ये दोनों भेद न दिखाई पड़ने से विश्वास करने वाला सोचता है, हम भी वहीं है जहां निर्विचार वाला पहुंचाता है। वहां वह नहीं है। वहां वह कभी नहीं हो सकता है। इस विचार की प्रक्रिया से गुजरना एक अनिवार्यता है। यह गुजरना एक अनिवार्य चरण है। इससे गुजरे बिना कोई कभी निर्विचार को नहीं पहुंच सकता है।
विचार दूसरी सीढ़ी है। विश्वास को तोड़ दें, खंड-खंड उखाड़ दें, जड़-जड़ फेंक दें विचार की धार से। और जब विश्वास फिंक जाए और विचार की पूरी तपश्चर्या से आप गुजर जाएं और उस जगह पहुंच जाएं जहां विचार चक्कर में घुमाने लगे और कोई मार्ग न सूझेः धारणाएं हाथ में आ जाएं, सिद्धांत हाथ में आ जाएं, लेकिन सत्य हाथ में न आए, तब विचार ही कहेगा, अब मुझे छोड़ दो, अब मुझसे ऊपर चले जाओ, अब मैं किसी काम का नहीं हूं। विचार ही कहेगा कि अब मुझे छोड़ दो, अब मेरे ऊपर चल जाओ, अब मैं किसी काम का नहीं हूं। जो अंतिम दान है विचार का वह यह है कि वह कह जाता है कि मैं भी व्यर्थ हूं, अब मुझे भी पार करो।
उस तीसरी सीढ़ी में हम उस पर विचार करेंगे, निर्विचार पर अर्थात ध्यान पर। पहली, विश्वास नहीं लिखा है उस द्वार पर। विश्वास नहीं। और मैंने कहा, विचार, और जब विचार से गुजरेंगे, तो पाएंगे कि लिखा नहीं है उस द्वार पर। विचार भी नहीं लिखा है उस द्वार पर। परमात्मा के द्वार पर यह भी नहीं लिखा है कि विचार करो और भीतर आ जाओ। विचार करने से द्वार के बाहर तक पहुंच जाओगे, भीतर नहीं जा सकते। तीसरी सीढ़ी में हम सोचेंगे, खोजेंगे कि ध्यान क्या है? मेडिटेशन क्या है? निर्विचारणा क्या है? क्या निर्विचार लिखा है उस द्वार पर? वह हम कल सुबह की चर्चा में निर्विचार पर, ध्यान पर सोचेंगे। और चौथी चर्चा में हम सोचेंगे कि क्या ध्यान को भी छोड़ देना पड़ेगा। क्या वह भी बिल्कुल भीतर अंतर-गृह तक नहीं पहुंचा सकता? वह भी नहीं पहुंचाता है। विश्वास छोड़ो विचार से। विचार छोड़ो निर्विचार से। फिर निर्विचार भी छोड़ दो, तब जो शेष रह जाती है समाधि की दशा। वह वहां पहुंचा देती है जहां परमात्मा का आवास है।

आज की बात पर जो भी प्रश्न हों, संध्या उनके जवाब दूंगा।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

प्रभु मंदिर के द्वार पर चौथा प्रवचन

तुलना-रहितता है द्वार

मेरे प्रिय आत्मन्!
दो दिनों की चर्चाओं के संबंध में बहुत से प्रश्न मित्रों ने पूछे हैं।
एक मित्र ने पूछा है कि क्या मेरे विचार एम. एन. राय के विचारों से नहीं मिलते हैं?
एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि क्या मैं माओ के विचारों से सहमत हूं?
एक तीसरे मित्र ने पूछा है कि क्या कृष्णमूर्ति और मेरे विचारों के बीच कोई समानता है? और इसी तरह के कुछ और प्रश्न भी मित्रों ने पूछे हैं।

इस संबंध में कुछ बात समझ लेनी उपयोगी होगी। पहली बात तो यह कि मैं किसी से प्रभावित होने में या किसी को प्रभावित करने में विश्वास नहीं करता हूं। प्रभावित होने और प्रभावित करने, दोनों को आध्यात्मिक रूप से बहुत खतरनाक, विषाक्त बीमारी मानता हूं। जो व्यक्ति प्रभावित करने की कोशिश करता है वह दूसरे की आत्मा को नुकसान पहुंचाता है। और जो व्यक्ति प्रभावित होता है वह अपनी ही आत्मा का हनन करता है। लेकिन इस जगत में बहुत लोगों ने सोचा है, बहुत लोगों ने खोजा है। अगर आप भी खोज करने निकलेंगे, तो उस खोज के अंतहीन रास्ते पर, उस विराट जंगल में जहां बहुत से पथ-पगडंडियां हैं, बहुत बार बहुत से लोगों से थोड़ी देर के लिए मिलना हो जाएगा और फिर बिछुड़ना हो जाएगा। उस मिलने और बिछुड़ने का मूल्य अगर कोई है, अर्थ अगर कोई है, तो इतना ही है कि दो विचार कुछ देर के लिए समानांतर चलते हैं। मैं जैसा सोचता हूं, मैं जैसा देखता हूं, उस देखने और सोचने में बहुत बार ऐसा हुआ है कि कभी थोड़ी देर के लिए महावीर साथ मालूम पड़े हैं, कभी थोड़ी देर के लिए उनके ठीक विरोधी बुद्ध भी साथ मालूम पड़े हैं, कभी जीसस क्राइस्ट थोड़ी देर साथ मालूम पड़े हैं, कभी उनके ठीक विरोधी फ्रेड्रिक नीत्शे भी साथ मालूम पड़े हैं, कभी कनफ्यूशियस मिल गया है रास्ते पर, कभी उलटा लाओत्सु भी मिल गया है, कभी सुकरात भी, कभी जीनों भी, कभी प्लोटिनस भी, कभी रमण भी, कभी रामकृष्ण भी, कभी गांधी भी, कभी कृष्णमूर्ति भी, कभी एम. एन. राय भी। मनुष्य के इस लंबे इतिहास में सारे विचार मनुष्य के आकाश में छूट गए हैं। और जब भी कोई सोचने चलेगा, बहुत बार कोई थोड़ी देर संगी-साथी होता हुआ मालूम पड़ेगा। फिर अलग होने की जगह आ जाती है। बहुतों के साथ मालूम पड़ता है साथ हैं। फिर थोड़ी देर बाद पता चलता है, साथ अलग हो गया। सच तो यह है कि अपने अतिरिक्त और किसी का साथ सदा नहीं है। तो विचार में बहुत बार किसी की निकटता मालूम पड़ेगी, लेकिन इससे न कोई किसी से प्रभावित होता है, न प्रभावित होने की जरूरत है। न कोई किसी का गुरु बनता है, न कोई किसी का शिष्य। न बनना चाहिए, न बनना आवश्यक है, न हितकर है, न कल्याणप्रद है।
मैं जब देखता हूं चारों तरफ, वहां जहां विचारों के आकाश में बहुत से विचारों के संघट हैं, बहुत से विचारों के प्रतीक हैं, बहुत से विचारों के तारे हैं, और जब कोई खुद भी खोजने जाता है, तो किसी तारे के करीब से गुजरता है, लेकिन उस तारे के करीब से गुजर जाने से वह उस तारे का नहीं हो जाता, न वह तारा उसका हो जाता है। ऐसे सब प्रश्न बहुत छोटी-छोटी बातों के तालमेल पर बैठ जाते हैं।
माओ का एक वाक्य कोई निकाल ले, और वाक्य निकाल ले कि वैचारिक क्रांति जरूरी है, और चूंकि मैंने भी कहा, वैचारिक क्रांति जरूरी है, फिर वह कहने लगे कि यह आदमी तो माओ से सहमत है। तो इस आदमी की बुद्धि को बहुत बचकाना कहा जाएगा। अगर मैं कहूं कि परमात्मा को खोजना जरूरी है तो वह कहे कि उपनिषद के ऋषि भी कहते हैं कि परमात्मा को खोजना जरूरी है तो यह व्यक्ति उपनिषद के ऋषियों से प्रभावित है। और अगर मैं कहूं कि मनुष्य को संदेह करना जरूरी है, तो वह कहेगा, नीत्शे भी यही कहता है। अगर मैं कहूं, मनुष्य को अपनी वासनाओं से लड़ना नहीं, दमन नहीं करना, तो वह कहेगा, फ्रायड भी यही

कहता है। ऐसे एक-एक शब्द, एक-एक टुकड़े अगर उठा कर खोजे जाएं, तो स्वाभाविक है, बिल्कुल ही स्वाभाविक है, बहुत तालमेल दिखाई पड़ेगा। लेकिन जब पूरे को, टोटल को, पूरे वि.जन को, मेरी पूरी दृष्टि को आप देखने की कोशिश करेंगे, तो वह सिर्फ मेरी है। वह किसी की नहीं है।
और सच तो यह है कि आपकी दृष्टि को भी अगर खोजने की आप कोशिश करेंगे तो
वह सिर्फ आपकी है और किसी की भी नहीं। इस जगत में प्रत्येक व्यक्ति एकदम अनूठा है--मैं ही नहीं, आप भी। एक सामान्य से सामान्य व्यक्ति भी अनूठा है, बेजोड़ है, अद्वितीय है, यूनीक है। वह वही है, और किसी जैसा नहीं है। वैसा व्यक्ति न कभी हुआ और न कभी होगा। जैसा प्रेम आपने किया है वैसा न इस पृथ्वी पर कभी किसी ने किया और न कभी कोई कर सकेगा। क्योंकि आप पहली बार हैं। और इस जगत में कोई पुनरुक्ति नहीं है। प्रेम बहुत लोगों ने किया है। जैसा आप सोचते हैं वैसा बहुत लोग सोचते हुए मालूम पड़ सकते हैं। लेकिन ठीक वैसा कोई भी नहीं सोचता। नहीं तो व्यक्ति खो जाएगा, सिर्फ भीड़ रह जाएगी। एक-एक व्यक्ति व्यक्ति है। और एक-एक व्यक्ति की अपनी नियति है। इसलिए हम यह बहुत जल्दी क्यों करें।
लेकिन हमारी जल्दी की आदत है। क्योंकि हम इस भाषा में सोचने के आदी रहे हैं कि कोई हो गुरु, कोई हो शिष्य। कोई चले आगे, कोई चले पीछे। कोई हो ऊपर, कोई हो नीचे। कोई हो प्रभावित करने वाला, कोई हो तीर्थंकर, कोई हो अवतार, कोई हो अनुयायी। हम इस भाषा में सोचने के आदी रहे हैं। हम इस भाषा में सोचने के आदी नहीं रहे कि कोई भी आदमी अपनी जगह अपने ही जैसा है-- इनकंपरेबल। नहीं, किसी से उसकी तुलना हो सकती? छोटे से छोटे, बड़े से बड़े, सब आदमी अपनी जगह हैं, अपने जैसे हैं। कोई किसी दूसरे से तुलनीय नहीं है। न तुलना आवश्यक है। तुलना की बात ही भ्रांत है, खतरनाक है। और मनुष्य को मनुष्य से नीचे, आगे, पीछे रखने की चेष्टा और आयोजन है। नहीं, किसी को किसी से प्रभावित होने की जरूरत नहीं। न किसी को गुरु बनाने की, न किसी का शिष्य बनने की, और न किसी को शिष्य बनाने की। अहंकार बहुत रूप लेता है।
एक ही बात ध्यान रखने की जरूरत है, कि मैं खोजूं। जो भी मेरे पास उपकरण हैं, जो भी शक्ति है उसको लगाऊं खोज में सत्य की, और जाऊं। इस यात्रा में उन रास्तों से गुजरना होगा जिनसे दूसरे लोग भी गुजरे होंगे, दूसरे समय में, दूसरे काल में, दूसरे संदर्भ में, दूसरे ढंग से। उन पद चिह्नों पर भी कभी पैर पड़ जाएंगे जिन पर किन्हीं के पद-चिह्न पड़े होंगे। लेकिन फिर भी अंततः पूरा का पूरा व्यक्तित्व आपका अपना हो। अपना होना चाहिए। जो अपने व्यक्तित्व को खोता है, दूसरों के पीछे प्रभावित होता है, वह धीरे-धीरे आत्मघात करता है। लोग कहते हैं, फलां आदमी ने सुसाइड कर लिया, फलां आदमी ने आत्मघात कर लिया, वह सिर्फ शरीरघात है, आत्मघात नहीं है। कोई आदमी छुरा मार कर मर जाता है, कोई आदमी जहर पी लेता है, कोई आदमी पहाड़ से कूद जाता है। यह सिर्फ शरीरघात है। यह आत्मघात नहीं है। आत्मघात बिल्कुल दूसरा है।
जब कोई आदमी किसी की कंठी बांध लेता है, किसी से कान फुंकवा लेता है, किसी के पीछे हो लेता है, तब आत्मघात है, वह सुसाइड है। शरीर को मार लेने के खिलाफ कानून है और आत्मा को मार लेने के खिलाई कोई कानून नहीं है। जिस दिन अच्छी दुनिया बनेगी उस दिन आत्मा को मारने के खिलाफ भी साफ-साफ विचार होना चाहिए। अनुयायी आत्मघाती है, और जो प्रभावित होता है वह भी आत्मघाती है। जिस मात्रा में मैं किसी से प्रभावित होता हूं, उसी मात्रा में मैं, मैं नहीं रह जाता हूं। उसी मात्रा में कोई और की छाया मेरे ऊपर पड़ जाती है और मैं दब जाता हूं। जिस मात्रा में मैं किसी को स्वीकार कर लेता हूं, उसी मात्रा में मैं नष्ट होता हूं। कोई और मेरे ऊपर हावी हो जाता है। और हम सारे लोग इस पागल की तरह दूसरों को स्वीकार करने के पीछे दीवाने होते हैं, जैसे हमें चैन ही नहीं मिलता, जब तक कोई गांधीवादी न हो जाए, कोई मार्क्सवादी न हो जाए--जब तक कोई वादी न हो जाए, तब तक बेचैनी है, क्योंकि हम अपने को बेचे बिना चैन नहीं पा सकते। अपनी आत्मा को कहीं गिरवी रखेंगे तभी शांति मिल सकती है। सारे लोगों ने अपनी आत्माएं गिरवी रख दी हैं। और अगर कभी कोई आदमी आत्मा गिरवी रखने को राजी न हो, तो वे खोज-बीन करते हैं कि कहां हैं, कहां-कहां मेल-ताल बैठ सकता है। मेल, तालमेल बहुत जगह बैठ सकता

है, लेकिन सब झूठा है। दो व्यक्तियों के बीच कोई तालमेल नहीं है और अगर तालमेल हो तो जानना कि उनमें एक व्यक्ति व्यक्ति ही नहीं है, सिर्फ मशीन होगा। अन्यथा तालमेल नहीं हो सकता।
बुद्ध हैं, महावीर हैं, एपिकुरस हैं, लाओत्सु हैं, कनफ्यूशियस हैं, चार्वाक हैं, उपनिषदों के ऋषि हैं, नागार्जुन हैं, शंकर हैं, मार्क्स है, फ्रायड है, नये-नये अदभुत लोग हैं, कृष्णमूर्ति हैं, रमण हैं, अरविंद हैं, रामकृष्ण हैं, दोस्तोवस्की है, सात्र है, कामु है, काफ्का है। सारी दुनिया में कितने अदभुत-अदभुत लोग हैं। अगर कोई सोचेगा तो न मालूम कितनी बार कितनों के पैरेलल, कितने के समानांतर चल जाएगा। उससे जल्दी मत कर लेना। उससे जल्दी यह मत सोच लेना कि यह आदमी इससे सहमत हुआ, बात खत्म हुई। हम क्यों इतने उत्सुक हैं किसी से सहमत किसी को कराने में? लेबल लगा लेने में फिर हमको सुविधा हो जाती है। हम समझ लेते हैं कि यह ठीक है। यह आदमी कम्युनिस्ट है। फिर हम इस आदमी के संबंध में सोचने की जरूरत से हम बचे। अब हम कम्युनिस्ट के संबंध में जो सोचते हैं वही इस पर लागू हो जाएगा, बात खत्म हो गई। एक कम्युनिस्ट भी दूसरे कम्युनिस्ट जैसा नहीं होता है। एक कम्युनिस्ट यानी कम्युनिस्ट एक। दो कम्युनिस्ट यानी कम्युनिस्ट दो। तीन कम्युनिस्ट यानी कम्युनिस्ट तीन। तीन कम्युनिस्ट भी एक ही जैसे नहीं हैं। लेकिन कम्युनिज्म का लेबल लगा कर बड़ी सुविधा मिल जाती है। फिर हमको सोचने की जरूरत नहीं रह जाती। कोई आया और उसने कहा, फलां आदमी मुसलमान है। फिर हम जो मुसलमान के संबंध में धारणा बनाए हैं। अब इस आदमी को जानने की कोई जरूरत न रही। अब वह धारणा काफी है। अब उसी धारणा को हम इस आदमी पर बिठा लेंगे। और यह आदमी? यह आदमी बिल्कुल अनूठा है। हमारी जो धारणा है यह उससे बिल्कुल भिन्न है। यह आदमी ही अलग है। यह आदमी कभी था ही नहीं। न यह मोहम्मद है, न यह मोहम्मद अली जिन्ना है, न यह किसी और मुसलमान जैसा है। यह आदमी ही अलग है। लेकिन वह मुसलमान की धारणा बिठा कर हम मुक्त हो जाएंगे। और हम सोचेंगे, हमने जान लिया है। इस आदमी से जानने से बचने की तरकीब है यह। लेबल लगा दिया है, फिर लेबल के संबंध में जो हम मानते हैं वही बात पूरी हो गई और खत्म हो गई।
नहीं, एक-एक आदमी को जानना हो तो सीधे जानना पड़ेगा। बीच में लेबल खतरनाक है, क्योंकि कोई आदमी लेबल जैसा नहीं है। सब आदमी, बस अपने जैसे हैं। कोई आदमी किसी जैसा नहीं है। लेकिन हमें फुरसत कहां? हम जल्दी में हैं। हम सबके संबंध में निर्णय लेना चाहते हैं और निर्णय लेने की आसान तरकीब यह है कि हम एक बात कह दें और खत्म हो जाएं और मुक्त हो जाएं। एक लेबल लगा दें और छुटकारा हो जाए। इस तरह छुटकारे से कोई मनुष्य की आत्मा से परिचित नहीं हो सकता। और इस तरह का व्यक्ति हमेशा अज्ञान में ही जीएगा और मरेगा। वह दूसरे में कभी झांक ही नहीं सकता, क्योंकि दूसरे का द्वार ही बंद कर देता है। कभी आपने अपनी पत्नी की तरफ गौर से देखा है? नहीं, पत्नी मान कर एक लेबल लगा दिया है, बात खत्म हो गई। शादी न की थी, उस वक्त शायद देखा भी हो। शादी के बाद फिर नहीं देखा है। पच्चीस साल बीत गए होंगे, रोज लगता है कि देखते हैं, लेकिन देखा है कभी गौर से? अब कोई जरूरत नहीं रही, पत्नी है, बात खत्म हो गई; पति है, बात खत्म हो गई। आपके घर जो बेटा पैदा होता है, उसे आपने देखा है? बस बेटा है, बात खत्म हो गई।
बुद्ध बारह वर्ष बाद अपने गांव वापस लौटे थे। उनका पिता क्रोध में था। ऐसे पिता खोजने कठिन हैं जो बेटों के प्रति क्रोध में न हों। पिता क्रोध में थे। बुद्ध जैसा बेटा था, तो भी क्रोध में थे। बुद्ध जैसा बेटा, तो भी क्रोध था। घर छोड़ कर चला गया था। बरबाद कर दिया था घर। एक ही बेटा था। सब घर उदास हो गया था। उसी पर आशा थी, उसी पर महत्वाकांक्षा थी। सब खंडित हो गई थी। बूढ़ा बाप दुखी था। खबरें आती थीं बीच-बीच में कि बेटा ज्ञान को उपलब्ध हो गया। बाप कैसे विश्वास करे कि बेटा और ज्ञान को उपलब्ध हो जाए? खबरें आती थीं और बाप कहता था, देखेंगे।
फिर बेटा आया। सारा गांव लेने गया है, शुद्धोधन भी लेने गए हैं। बुद्ध
के पिता भी लेने गए हैं। बुद्ध आकर खड़े हो गए हैं नगर के द्वार पर, और बुद्ध के पिता ने क्या कहा? बुद्ध के पिता ने कहा, मैं अभी भी क्षमा कर सकता हूं,

मेरे दरवाजे अभी भी खुले हैं। नासमझ, तू वापस लौट आ। तुने बहुत भूल की। हमें बहुत दुख दिया।
क्या यह पिता इस बेटे को देख रहा है जो सामने खड़ा है? नहीं, वह बारह साल पुरानी तस्वीर, वही सामने अटकी है। यह बेटा वह नहीं है। बुद्ध ने कहाः आप थोड़ा गौर से देखें। मैं बिल्कुल दूसरा होकर आया हूं। जो गया था वही मैं नहीं हूं।
बुद्ध के बाप ने कहाः क्या तू मुझे समझाएगा? मैं तेरा बाप हूं, तेरे खून का कतरा-कतरा मेरा है, मैं तुझे नहीं जानता हूं? बुद्ध के पिता ने कहाः मैं तुझे नहीं जानता हूं? तू मुझे समझाएगा? गौतम बुद्ध हंसने लगे। उन्होंने कहा कि नहीं, लेकिन इतना याद दिलाऊं, पिता होने से ही आप मुझे समझ लेंगे, यह जरूरी नहीं है। अपने को ही समझना मुश्किल है, दूसरे को समझना तो और भी मुश्किल है। फिर क्या मैं निवेदन करूं कि मैं आपसे आया जरूर, लेकिन आपने मुझे निर्मित नहीं किया है। आप एक मार्ग की भांति थे, एक रास्ता जिससे गुजरा और आया, लेकिन मेरी यात्रा अनंत है, आपसे बहुत भिन्न है। एक चौराहे पर हम मिले, वह चौराहा आप थे। मैं आपसे गुजरा और मैं इस जगत में आया। लेकिन इससे आप मुझे जान नहीं लेते। जिस रास्ते से मैं गुजर कर आया हूं, क्या वह रास्ता यह कह सकता है कि मुझे जानता है? लेकिन बुद्ध के पिता कहने लगे, तू मेरा बेटा है। मैं तेरा बाप हूं। मैं तुझे नहीं जानता हूं। वह बेटे का लेबल बड़ी तकलीफ दे रहा है। बड़ा अच्छा होता कि गौतम बुद्ध शुद्धोधन के बेटे न होते तो शायद शुद्धोधन गौतम बुद्ध को आसानी से समझ सकते। बीच में लेबल न होता। लेबल सदा बाधा बन जाते हैं।
बुद्ध की पत्नी लेने नहीं आई गौतम को। सारा गांव लेने आया है, लेकिन यशोधरा नहीं आई। पति का लेबल बीच में बाधा डाल रहा है। वह क्रोध से भरी बैठी है अपने महल में। वह राह देखती है कि आओ और मुझे समझाओ-बुझाओ। पति की अपेक्षा, जैसी पत्नी करती है कि चले गए थे बारह वर्ष पहले मुझे क्रुद्ध करके, अब आओ, मुझे समझाओ-बुझाओ। वह बैठी है महल में। सारा घर चला गया है। सारा गांव चला गया है। लेकिन यशोधरा नहीं आई है। वह पति का लेबल बीच में अटका है। बुद्ध चारों तरफ देखते हैं, आनंद से पूछते हैं, यशोधरा नहीं आई? नहीं आ सकेगी। मैं उसका पति जो ठहरा। बड़ी मुश्किल है उसके आने में। बुद्ध कहते हैं, मुझे ही जाना पड़ेगा। बीच में एक द्वार अटका है... वह मुझे नहीं जानती। वह मुझे नहीं पहचानती, वह मुझे नहीं पहचान सकती।
वह पति होना बीच में रुकावट डाल रहा है। सब तरह की बातें जो हम बीच में स्वीकार कर लेते हैं सीधे व्यक्ति को देखने में बाधा डालती हैं। अगर कोई आदमी तय करके आ गया कि मैं माओ के विचार का आदमी हूं, फिर वह मुझे थोड़े ही देखता है, बीच में माओ की तस्वीर लटकी है। और कहां माओ की तस्वीर और कहां मैं! अगर कोई आदमी तय करके आ गया कि मैं एम. एन. राय से मेल खाता हूं, फिर वह मुझे नहीं सुन रहा। बोल मैं रहा हूं, सुना जा रहा है एम. एन. राय। फिर वह मुझे नहीं सुन रहा है। अगर कोई आदमी तय करके आ गया है कि मैं कृष्णमूर्ति से मेरे विचार एक जैसे हैं, फिर वह मुझे नहीं सुन रहा है। वह भीतर तालमेल कर रहा है कि ठीक है, यही कृष्णमूर्ति ने भी कहा है। तब फिर मुझे नहीं सुन रहे आप। आप अपने ही मन की धारणाओं और प्रतिमाओं में भटके हुए हैं। तब आप मुझे नहीं सुन सकेंगे। और अगर आप इसी तरह सुनने की आदत बना लेते हैं तो आप फिर किसी को नहीं सुन सकेंगे। और अगर यही आपके सोचने का ढंग है, तो आप कभी नहीं सोच सकेंगे। सोचने के लिए चाहिए प्रतिमा-रहित चित्त, निष्पक्ष, बिना किसी पूर्व धारणा के, बिना किसी लेबल के, बिना किसी बीच में चश्मे के, सीधा आर-पार देख सकें जो है। उसे ही देख सकें, क्यों करें तुलना, क्यों करें कंपेरीजन?
एक गुलाब के फूल के पास खड़े हैं, तो फौरन आदमी कहता है, मैंने इससे भी अच्छे-अच्छे फूल देखे हैं। देखे होंगे, लेकिन यह फूल कभी नहीं देखा। और अच्छे-अच्छे फूल भी रहे होंगे। लेकिन यह फूल अपनी ही तरह का फूल है। ऐसा फूल कभी भी नहीं रहा। इसी को देखो न! बीच में उन गए-बीते फूलों को क्यों लाते हो? लेकिन आदमी का मन, वह इसको देख ही नहीं सकता सीधा। बीच में कुछ लाएगा, लाएगा, तब देखेगा। तब देखना कठिन हो जाता है। और तब देखना मुश्किल

हो जाता है। और जब बहुत सी पर्तें बीच में आ जाती हैं तो हम न सुनते हैं, न हम देखते हैं, न हम विचारते हैं। बस हम अपने ही विचारों की, अपनी ही धारणाओं की, अपने ही पक्षपातों की दीवारों में बंद, अपनी ही कब्र में छिपे समाप्त हो जाते हैं। हमारा बाहर से कोई कम्युनिकेशन, कोई संवाद नहीं हो पाता है।
इस भाषा में सोचें ही मत कि मेरा विचार किससे मेल खाता, किससे नहीं खाता। निष्प्रयोजन है वह बात। मैं क्या कहता हूं, उसे समझें, उसे सोचें। मैं क्या कहता हूं, उसे ही समझ लें, सुन लें और इसकी भी फिकर न करें कि आप मुझसे मेल खाते हैं कि नहीं खाते हैं। इसकी भी कोई जरूरत नहीं है। आपको मेल खाने की क्या जरूरत है? हो सकता है थोड़ी देर मेरे साथ चलना हो जाए, पर्याप्त है। फिर हम विदा हो जाएंगे।
रास्ते से अभी मैं आया, रास्ते पर आया हूं, पड़ोस में कोई चलता हुआ दूसरे रास्ते से आ गया है, हम रास्ते पर दोनों मिल गए हैं, दस कदम साथ भी चल लिए हैं, समानांतर, फिर वह अपने रास्ते विदा हो गया है, मैं अपने रास्ते विदा हो गया हूं। दस क्षण साथ थे, अच्छा था। अब साथ नहीं हैं, वह भी अच्छा है। निरंतर बहुतों के साथ चल कर यह पता चलता है कि हम सिर्फ अपने ही साथ हो सकते हैं, किसी के साथ नहीं। जल्दी क्या है, आग्रह क्या है, कि किसी को पकड़ लें। इतनी कमजोरी क्या है? इसलिए मुझे सुनते वक्त यह भी फिकर न करें कि आप मुझसे सहमत होते हैं या नहीं होते हैं। अगर आप इस चिंता में पड़ गए तो आप मुझे समझ ही नहीं पाएंगे। आप वह सहमत-असहमत होने की चिंता में उलझ जाएंगे और समय व्यतीत हो जाता है। सीधा सुनें, साफ सुनें। और देखें कि क्या सच है उसमें, क्या झूठ है। तुलना में न पड़ें। तुलना अत्यंत घातक है। तुलना बहुत ही घातक है। और प्रभावित होना, बहुत ही खतरनाक है। किसी को किसी से प्रभावित होने की कोई भी जरूरत नहीं है। लेकिन ऐसे लोग हैं जो प्रभावित करना चाहते हैं। क्यों? यह कौन लोग हैं जो प्रभावित करना चाहते हैं? जिनके भीतर भी कुछ इनफिरियरिटी कांप्लेक्स है, जिनके भीतर भी कुछ हीनता की ग्रंथि है, वे दूसरों को प्रभावित करके अपनी हीनता के भाव को पूरा करना चाहते हैं। सब गुरु, सब नेता हीनता की ग्रंथि से पीड़ित होते हैं। दस आदमियों की भीड़ को आस-पास इकट्ठा करके, उनकी छाती पर सवार होकर वे अनुभव करते हैं कि हम, हम कुछ हैं। कितने आदमी हमारे पीछे हैं। गिनती रखते हैं गुरु के कितने शिष्य हैं, कितने चेले-मुंड़े हैं, कितनों के कान फूंके हैं। नेता फिकर रखता है कि कितने अनुयायी हैं। संख्या बढ़ाता है। और इस सबके पीछे कारण क्या है? इस सबके पीछे कोई आत्मग्लानि, कोई आत्महीनता है खुद होना पर्याप्त नहीं है। किसी भीड़ को जोड़ लेना जरूरी है तभी लगेगा कि मैं कुछ हूं। अकेले होना काफी नहीं है। और जो आदमी अकेले होने में पर्याप्त नहीं है वह आदमी सत्य के सौंदर्य को कभी भी नहीं जान सकेगा।
सत्य का सौंदर्य भीड़ के साथ अपने को भर लेने में नहीं, बल्कि समस्त भीड़ से अपने को खाली कर देने में है। और उस जगह, जहां चित्त बिल्कुल मौन और एकांत और अकेला होता है, वहीं वे फूल खिलते हैं जो सत्य के, सौंदर्य के, शिवम के हैं। लेकिन हम! हम सब एक दूसरे से अपने को बांध कर चलते हैं। बांधने के रास्ते बहुत तरह के हैं। कोई अपने को पत्नी से बांधे है, कोई पति से, कोई बेटे-बेटियों से, कोई पार्टियों से, कोई संप्रदाय से, कोई शिष्यों से, कोई आश्रमों से। लेकिन अपने को सब बांधे हुए हैं।
पाम्पेई का नगर जला, विस्फोट हुआ, पाम्पेई के ज्वालामुखी का। आधी रात थी, तीन बजे होंगे। सारा गांव भागने लगा। कोई अपने बेटों को ढूंढ़ रहा है, कोई अपनी पत्नियों को, कोई अपने शिष्यों का, कोई अपने अनुयायियों को, कोई धन को, कोई मकान को, कोई कुछ और को; जो-जो ले जा सकता है, जो-जो बचा सकता है उसकी चेष्टा में संलग्न है। एक आदमी है, गांव में एक संन्यासी भी है। सुबह तीन बजे रोज अपनी छड़ी लेकर घूमने निकलता था। वह सुबह घूमने निकला है। सारा गांव भाग रहा है। जो भी उस संन्यासी के पास से गुजरता है, वह उसे गौर से देखता है और कहता है, खाली हाथ? सामान कहां है? अकेले? संगी-साथी कहां हैं? परिवार-प्रियजन कहां है? वह संन्यासी कहता है, कोई भी नहीं है, अकेला ही हूं। मैं ही अपना परिवार हूं, मैं ही अपना प्रियजन हूं, मैं ही अपनी संपदा

हूं, कुछ बचाने को नहीं है। जो हूं, अकेला हूं। बस चल रहा हूं। उस भीड़ में अकेला एक आदमी शांत है। उस भीड़ में उस उपद्रव में अकेला एक आदमी सुबह घूमने निकला है। वह ज्वालामुखी जल रहा है। लोग अपना सामान अपनी पीठों पर बांधे भागे जा रहे हैं। जो छूट गया है उसके लिए दुखी हैं, सामान के लिए। जो बच गया है, उसे छाती से चिपटाए हैं--पीड़ित, परेशान, चिंतित। तो वह पाम्पेई नगर से भागता हुआ सब-कुछ, सारा जनसमूह। एक आदमी लेकिन न चिंतित है, न पीड़ित है, न परेशान है। जो भी उसके करीब से गुजरता है, देखता है गौर से, सुबह घूमने निकले हो? वह छड़ी हिलाता हुआ, सुबह का गीत गाता हुआ, वह कहता है, अकेला हूं, कुछ भी खोने को नहीं है, जो भी खो सकता था, खुद ही खो दिया है। जो भी छूट सकता था, खुद ही छोड़ दिया। अब तो वही बचा है जो न खो सकता है, जो न छूट सकता है। अब तो मैं बस मैं ही हूं। पास से कोई निकलता है, थोड़ी देर कोई साथ हो लेता है। लेकिन न कोई संगी है, न कोई साथी है। पास से कोई निकलता है, कोई हाथ थाम लेता है। लेकिन न कोई मित्र है, न कोई शत्रु है। ऐसी चित्त-दशा में ही व्यक्ति स्वयं की आत्मा को खोज पाता है। उसके बिना नहीं खोज पाता है। प्रभावित, पकड़ा हुआ, किलिंगिंग माइंड, किसी को तुलना करता हुआ, किसी के पीछे चलता हुआ, कभी भी अकेला नहीं हो पाता। और टू बी अलोन, अकेला होना ऐसा सौंदर्य है जिसकी कल्पना करनी भी मुश्किल है।
मैंने सुना है, जापान के एक सम्राट को खबर मिली कि गांव के बगीचे में, मार्निंग ग्लोरी के, सुबह खिलने वाले फूल अदभुत रूप से खिले हैं। पूरे बगीचे में फूल ही फूल खिले हैं। सम्राट ने खबर भेजी उस माली को कि मैं देखने आना चाहता हूं। माली ने कहा, कल सुबह प्रतीक्षा करूंगा। सम्राट को बताया गया है कि रत्ती-रत्ती, इंच-इंच जमीन फूलों से भरी है। फूल ही फूल हैं। सारा बगीचा मार्निंग ग्लोरी से ही भरा हुआ है। सुबह सूरज निकला है, सम्राट अपने रथ पर सवार उस बगीचे के सामने जाकर खड़े होकर हैरान हो गया है। बगीचे में एक भी फूल नहीं है। सब फूल तोड़ कर जैसे फेंक दिए गए हैं। दूर कोने में बसे एक फूल जो बड़े ख्याल से दिखाई पड़ता है, ऊंची शाखा पर अकेला एक फूल है। वह माली से पूछता है, मैंने तो सुना था बहुत फूल हैं। कहां हैं वे बहुत फूल? उस माली ने कहाः उन बहुत फूलों में एक को भी देखना संभव नहीं हो पाता। उन बहुत फूलों में, उस भीड़ में एक को भी देखना संभव नहीं हो पाता। मैंने उन सब को अलग कर दिया, एक को बचा लिया है, ताकि आप एकांत में जान सकें, देख सकें, मिल सकें। और एक से मिल गए तो सब से मिल गए, क्योंकि जो एक में है वह सब में है। और उस भीड़ में उतने फूलों में आप शायद तुलना करतेः यह छोटा है, यह बड़ा हैः यह अच्छा है, वह बुरा है, इसमें खो जाते। यह सुंदर है, वह सुंदर नहीं है, इसमें भटक जाते और न देख पाते। अब एक ही है। न कोई छोटा है, न कोई बड़ा है। न सुंदर है, न असुंदर है। तुलना का उपाय नहीं है। यह फूल है और आप हैं। बैठ जाएं इस फूल के पास, जीएं इस फूल को। इस फूल को खिलने दें। इसके अकेलेपन में आपके, आपकी चेतना पर, तो शायद इस फूल से मिलन हो जाए, इसकी आत्मा से मिलन हो जाए।
लेकिन वह सम्राट उस फूल के पास खड़े होकर कहने लगा, सच ही इससे बड़ा फूल मैंने नहीं देखा। बहुत फूल देखे लेकिन वे छोटे थे। उस माली ने कहा, व्यर्थ मेरी मेहनत हुई। मैंने वह सारे फूल तोड़े, वह बेकार गया। आपके चित्त से तुलना नहीं जाती है। जो देखे थे फूल, वे अब कहां है? जो है, उसे देखें। जो देखे थे, उनसे क्यों तौलते हैं? स्मृति के सिवाय वे कहां हैं, स्मृति की राख के सिवाय। उस राख को हटा दें, मन के दर्पण को होने दें राख से मुक्त, धूल से पृथक, झांकने दें उसमें जो है। लेकिन नहीं, वह राजा कहता है, ठीक कहते हो। फूल बहुत बड़ा है, मैंने बहुत देखे, उन सबसे बड़ा है, उन सबसे बहुत सुंदर है। शायद ही इतना बड़ा फूल होता हो। वह माली अपना सिर ठोक लेता है, और कहता है, मेरे फूलों, जिन्हें मैंने तुम्हें तोड़ डाला, व्यर्थ मैंने मेहनत की। जो भीड़ से घिरा है वह अकेले के सामने खड़े होकर भी भीड़ से ही घिरा रहता है। मैंने व्यर्थ ही इतने फूल तोड़ डाले। हम सब मन में भी घिरे हैं। मैं आपसे कुछ कह रहा हूं, एक फूल आपके सामने रख रहा हूं। आप कहते हैं, किस बगिया से मेल खाता है? फलां-फलां बगिया में देखा था, फलां बगीचे में देखा था। फलां जंगल में किसी वृक्ष पर यही फूल था। वही है न यह? पंखुरियां वैसी हैं,

रंग वैसा है। नहीं, कोई फूल वैसा नहीं है। सब फूल अपने ही जैसे हैं। एक-एक चीज का अपना व्यक्तित्व है, और इसीलिए आत्मा है। जिस दिन सब चीजें एक सी होंगी, उस दिन आत्मा नहीं होगी। लेकिन हम सब आत्मा के दुश्मन हैं। हम सब आत्मा के हत्यारे हैं। हम सब तरह से व्यक्तित्व को पोंछ कर मिटा देना चाहते हैं। और एक भीड़ चाहते हैं जो एक जैसी दिखाई पड़ती हो। अनुयायी चाहते हैं। संप्रदाय चाहते हैं। न मैं अनुयायियों में मानता, न गुरुओं में। न मैं किसी से प्रभावित हूं, न किसी को प्रभावित करने की इच्छा है। न आपसे आशा करता हूं कि आप तुलना करें। सुनें, समझें, छोड़ दें फिर। न मेरे साथ चलने की जरूरत है, न मेरे पीछे चलने की जरूरत है। थोड़ी देर के लिए मिल गए, थोड़ी देर के लिए हंस-बोल लिए, फिर अपना-अपना रास्ता है। कोई किसी के साथ नहीं, सब अकेले हैं।

एक और मित्र पूछते हैंः वे पूछते हैं कि ईश्वर को हम खोजें ही क्यों? "प्रभु मंदिर के द्वार" की तलाश ही क्यों करें?

मत करें, लेकिन बच न सकेंगे करने से। यह भी पूछते हैं कि क्यों करें? यही तो सवाल खड़ा हो गया। "क्यों" जिसके मन में है वह खोज से नहीं बच सकता। आप यह पूछते हैंः क्यों खोजें प्रभु के मंदिर को?
मत खोजें। मैं कहता हूं। लेकिन आप पूछ रहे हैं, क्यों? और जो "क्यों" पूछता है उसकी खोज शुरू हो गई। क्यों ही तो खोज है। वॉय? जब भी कोई आदमी पूछता है, क्यों? तो उसकी खोज शुरू हो गई। और ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जो न पूछता हो क्यों? ऐसा आदमी मिल सकता है जो न पूछता हो क्यों? ऐसा आदमी मिल सकता है जिसने किसी क्षण में न पूछा हो कि मैं क्यों हूं? जिसने यह न पूछा हो कि अगर मैं न होता तो क्या हर्ज था? जिसने यह न पूछा हो कि यह सब क्यों है? ये चांद-तारे क्यों हैं? यह पृथ्वी क्यों है? ये वृक्ष क्यों हैं? ये फूल क्यों खिलते हैं? ये हवाएं क्यों चलती हैं? ये न चलतीं तो क्या हर्ज था? जिसके मन में "क्यों" न उठा हो, ऐसा कहीं कोई आदमी अगर हो, मुश्किल है ऐसा आदमी होना। और अगर कहीं कोई ऐसा आदमी मिल जाए, तो समझना कि वही परमात्मा है। परमात्मा को छोड़ कर और सबके मन में क्यों उठेगा। और अगर क्यों को मिटाना है, तो परमात्मा तक पहुंचना पड़ेगा।
जिस दिन परमात्मा तक आप पहुंच जाएंगे उसी दिन क्यों भी गिर जाता है। परमात्मा को जान लेने का मतलब हैः जीवन के क्यों को जान लेना। परमात्मा को जान लेने का अर्थ हैः उस क्यों की दौड़ से मुक्त हो जाना वह जो कांटे की तरह, शूल की तरह चुभता है। क्यों? क्यों हूं? क्यों है यह प्रेम? क्यों है यह क्रोध? क्यों है यह श्वास? यह सब है क्यों? यह न हो तो हर्ज क्या है? यह उसी दिन मिटता है जिस दिन हम उस प्रभु-मंदिर में प्रविष्ट हो जाते हैं। अगर क्यों से मुक्त होना है तो खोज करनी पड़ेगी। अगर प्रश्न से मुक्त होना है तो खोज करनी पड़ेगी। अगर जिज्ञासा से ऊपर उठना है तो खोज करनी पड़ेगी। अगर खोज से उठना है, खोज से बचना है, तो खोजना पड़ेगा। और खोज है। खोज कोई भी रूप ले ले, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता। अक्सर खोज दूसरे रास्तों पर भटक जाती है। और जब खोज दूसरे रास्तों पर भटक जाती है--जैसे एक आदमी धन खोज रहा है, उसकी भी खोज है, लेकिन वह खोज धन की है। वह शायद और गहरे में अपने से नहीं पूछ रहा कि धन तो मैं खोज रहा हूं, लेकिन धन किसलिए खोज रहा हूं? शायद मन कहेगा इसलिए कि धन होगा तो बल होगा, शक्ति होगी मेरे पास। प्रतिष्ठा होगी, यश होगा। लेकिन वह यह नहीं पूछ रहा है, कितने लोगों के पास यश रहा? कितने लोगों के पास बल रहा? कितने लोगों की प्रतिष्ठा रही? वे सब कहां हैं? वे सब कहां खो गए? धन की प्रतिष्ठा और बल कितनों के पास रहा है, वे सब अब कहां हैं?
च्वांगत्सु निकलता था एक मरघट से, किसी की खोपड़ी उसके पैर से लग गई। रात थी अंधेरी, पैर टकरा गया किसी खोपड़ी से। उसने खोपड़ी को उठा कर उससे बहुत क्षमा मांगने लगा। उसके मित्र कहने लगे, क्या करते हैं आप? खोपड़ी से क्षमा मांगते हैं? उसने कहाः तुम्हें पता नहीं। यह सब समय का थोड़ा फर्क है, अगर यह आदमी जिंदा होता तो मेरी बड़ी मुसीबत हो जाती। यह तो समय का थोड़ा

फर्क है। यह आदमी जिंदा भी हो सकता था। लोगों ने कहाः लेकिन, लेकिन यह मर गया है, छोड़ो इसे, फेंको। च्वांगत्से ने कहाः शायद तुम्हें पता नहीं है, यह साधारण लोगों का मरघट नहीं है, बड़े लोगों का मरघट है। यह कोई साधारण आदमी नहीं है, यह कोई बड़ा आदमी रहा होगा, कोई सम्राट, कोई धर्मगुरु, यह बड़ों का मरघट है। वर्ग जिंदगी में ही थोड़े ही हैं, मरने के बाद भी वर्ग हैं। मरघट भी अलग-अलग हैं। छोटे आदमी एक जगह मरते हैं, एक जगह दफनाए जाते हैं। बड़े आदमी और ही जगह दफनाए जाते हैं। दफनाने में भी फर्क है। मरने के बाद भी क्लासेस हैं। वहां भी गरीब और अमीर है। यह बड़े आदमियों का मरघट है, यह कोई साधारण मरघट नहीं है। अगर यह आदमी जिंदा होता, च्वांगत्सु आज मुश्किल में पड़ जाते। क्षमा मांगनी जरूरी है। फिर वह उस खोपड़ी को साथ ले आया। मित्रों ने कहाः यह क्या करते हो? उसने कहाः इस खोपड़ी को अपने पास रखूंगा। किसलिए? उसने कहाः इसलिए कि मैं जानता हूं कि भीतर भी ठीक ऐसी ही खोपड़ी है। और आज नहीं कल किसी मरघट पर लोगों के पैरों की टक्कर खाएगी, यह याद रहे, इसलिए। पर मित्र कहने लगे, याद करने से फायदा क्या है? इससे तो और बेचैनी होगी। उसने कहाः बेचैनी हो तो अच्छा है ताकि मैं उसी को खोज सकूं जहां चैन मिल जाता है। नहीं तो बेचैन को ही खोजता रहूंगा। खोपड़ी को पास रख लिया था फिर उसने, और कोई अगर गाली देता उसे तो वह खोपड़ी की तरफ देखता। कोई अगर अपमान करता तो वह खोपड़ी की तरफ देखता। कोई अगर उसे मारता तो वह खोपड़ी की तरफ देख कर हंसता। लोग कहते, यह क्या करते हो? तो च्वांग्त्सु कहता, मैं यह कहता हूं, समय का थोड़ा सा फासला है। आज नहीं कल, यह खोपड़ी मरघट पर पड़ी होगी। तुम लात मारोगे और मैं कुछ न कर सकूंगा। जब कुछ न कर सकूंगा तो आज भी कुछ करने का क्या अर्थ है! समय का ही थोड़ा फासला है।
धन को हम इकट्ठा कर रहे हैं, लेकिन, धन को हम खोज रहे हैं, खोज तो हम कर रहे हैं, लेकिन किसकी खोज कर रहे हैं? यश को खोज रहे हैं, लेकिन क्या, कितने लोगों ने यश को खोजा है? क्या मिल गया है यश को पाकर? कितने लोग हो जाते हैं बड़े पदों पर, क्या पा लेते हैं? क्या मिल गया है वहां? कोई नहीं पूछ रहा है। शायद हम पूछते हैं, लेकिन काफी नहीं पूछते। पूछते हैं, लेकिन पर्याप्त नहीं पूछते। खोजते हैं, लेकिन चरम खोज नहीं है। इसलिए कुछ भी व्यर्थ खोजने में लग जाते हैं और सार्थक की खोज से बच जाते हैं। पूछना जरूरी है, यश खोजते हैं किसलिए? क्यों खोजें यश? क्या होगा राष्ट्रपति कोई हो जाए तो? क्या होगा?
मैंने सुना है, एक जेलखाना है, कारागृह है और कारागृह का छोटा सा अस्पताल है। कारागृह में जो बीमार पड़ते हैं, वे उस अस्पताल में भरती किए जाते हैं। अब कारागृह की अस्पताल है; न उसमें खिड़कियां हैं, बड़ी मोटी मजबूत दीवालें हैं। कैदी हैं, बीमार हैं तो भी क्या हुआ। हाथ में, पैरों में जंजीरें हैं, अपनी-अपनी लोहे की खाट से बंधे हैं। सिर्फ एक द्वार है डाक्टर के भीतर आने-जाने का। उस द्वार पर नंबर एक की खाट है। उस नंबर एक की खाट का जो मरीज है वह बड़ा प्रतिष्ठित हो गया है उस अस्पताल में, क्योंकि नंबर एक की खाट पर वह है। और न केवल नंबर एक की खाट पर है, उसकी स्थिति को उसने ऐसा बना लिया है कि सारा अस्पताल यही चाहता है कि कब भगवान करे, यह मर जाए और हम नंबर एक की खाट पर हो जाएं। क्योंकि वह नंबर एक की खाट का मरीज रोज सुबह उठता है, बाहर की तरफ देखता है और कहता है, आह! कैसा सूरज निकला है, कैसी किरणें बरसती हैं, गुलमोहर खिल गए हैं, सारा आकाश लाल फूलों से भरा है। सांझ होती है और वह कहता है, चांद निकल आया, रातरानी की सुगंध हवाओं में भर कर आ रही है, कितने सुंदर लोग रास्ते से निकलते हैं। देखा उस स्त्री को कितना कुवांरापन है उसके चेहरे पर, कैसी आंखें हैं ताजे फूल जैसी। और सारा अस्पताल पागल हो जाता है। अपनी-अपनी खाट, अपनी-अपनी जंजीर लोग हिलाने लगते हैं और क्रोध से भर जाते हैं कि कब नंबर एक की खाट मिले, कब मरे यह आदमी। लेकिन वह आदमी नहीं मरता।
पदों पर जो रहते हैं उनका मरना जरा मुश्किल होता है। लेकिन फिर भी मरना तो पड़ता है। पदों के आदमियों को भी मरना पड़ता है। कितनी ही मुश्किल से मरो, मरना पड़ता है। मरना सभी को पड़ता है।

कभी-कभी उसको हृदय का दौरा हो जाता है, तो सारा अस्पताल खुश होता है और
वे कहते हैं, शायद अब यह गया। और सब डाक्टरों की खुशामद में लग जाते हैं कि ख्याल रखना, अब की बार जगह खाली हो तो हमारा ख्याल रखना। यही सब जो दिल्ली में चलता है वही सब उस अस्पताल में भी चलता है। वही सब उस अस्पताल में भी चलता है। वही सब चल रहा है। वह दो-तीन दफे धोखा दे जाता है वह आदमी नंबर एक की खाट का। नंबर एक की खाट के आदमी बड़े धोखेबाज होते हैं। कई दफा हृदय का दौरा आता है और बच जाता है। सब जब बच जाता है तो कहते हैं कि धन्यवाद, भगवान को धन्यवाद और भीतर कहते हैं हाय फिर मौका चूक गया। सब उसको कहते हैं, खुशी हुई बहुत, तुम बच गए। चले जाते बड़ा दुख होता। और उनके चेहरे देखें तो ऐसा लगता है कि इतना दुख उन्हें और किसी बात से नहीं हो सकता था जितना इसके बचने से हो गया। वह भी सब जानता है। वह भी सब जानता है, क्योंकि इसी तरह वह भी इस नंबर एक की खाट पर आया है। यह कहानी नई नहीं है, वह कोई नंबर एक की खाट पर पहला आदमी नहीं है। यह नंबर एक की खाट अनादि-अनंत है। यह पहले से ही मौजूद है। इस पर लोग आते ही, जाते ही रहे हैं। और जब वह देखता है कि लोग धन्यवाद दे रहे हैं तो बहुत मुस्कुराता है और फिर बातें वही कर देता है। सुबह से फिर फूल खिल जाते हैं, फिर पक्षी उड़ते हैं। फिर बगुलों की सफेद कतार निकल जाती है और सब तड़फ जाते हैं अपनी-अपनी खाट पर अपनी-अपनी जंजीर में सब बंधे तड़पते रहते हैं। लेकिन कब तक वह आदमी धोखा दे?
आखिर वह मर जाता है। सारे अस्पताल में डाक्टरों की खुशामद होती है। फिर एक आदमी को, जो खुशामद में जीत जाता है, उसे पहले नंबर एक की खाट पर पहुंचा दिया जाता है। वह आदमी पहुंचता है नंबर एक की खाट पर--देखो उसकी अकड़--जब वह चलता है अपनी खाट से नंबर एक की खाट की तरफ। देखो उसकी अकड़। हाथ की जंजीरें ऐसी मालूम पड़ती हैं जैसे आभूषण हों। कैदी के वस्त्र ऐसे मालूम पड़ते हैं जैसे कोई स्वर्ग से देवताओं के वस्त्र उतरे हों। पहुंच जाता है नंबर एक की खाट पर, बैठ जाता है, बाहर देखता है, बाहर कुछ भी नहीं है, एक बड़ी दीवाल है पत्थरों की, और कुछ भी नहीं है। न सूरज दिखाई पड़ता है, न गुलमोहर के फूल हैं, न रात को चांद दिखता, न बगुलों की कतार है, न सुंदर स्त्रियां निकलती हैं, न रातरानी की गंध आती है। बाहर कुछ भी नहीं है, पत्थरों की एक बड़ी लंबी दीवाल है। वह आदमी तो चौंक जाता है, पीछे लौट कर क्या कहे? लेकिन तब ख्याल आता है कि अगर मैं कहूं कि बाहर सिर्फ पत्थरों की दीवाल है तो मैं ही बुद्धू बनूंगा। और कोई अर्थ न होगा। लोग सब हंसेंगे कि हमने तो पहले कहा था। सब कहेंगे, हमने तो पहले कहा था, वहां कुछ भी नहीं है। वे सब कहेंगे जिन्होंने भी खुशामद की थी पहुंचने की। वे कहेंगे, वहां तो कुछ भी नहीं है। तो वह आदमी पीछे लौट कर कहता है, अहा, कैसा सूरज निकला है, गुलमोहर खिले हैं, फूल झर रहे हैं, आकाश में बादल तैर रहे हैं। कैसा अदभुत लोक है बाहर! हे परमात्मा, तुझे धन्यवाद कि मुझे मौका दिया। और सारा अस्पताल फिर पागल हो जाता है कि अब यह दुष्ट कब मरे। फिर वही चलता है, वह अस्पताल में चलता ही रहता है। नंबर एक पर पहुंचने वाले लोग मरते रहते हैं और दूसरे लोग नंबर एक पर पहुंचने की दौड़ में लगे रहते हैं। और जो भी नंबर एक पर पहुंच जाता है वह जो इटर्नल इल्युजन है, वह जो अनंत भ्रम है, वह उसको कायम रखता है। नहीं तो वह बुद्धू बन जाएगा, लोग क्या कहेंगे? और वह भ्रम जारी है।
पूछना जरूरी है कि यश को खोज कर क्या खोज लेंगे? यश को खोज कर किसने क्या खोज लिया है? धन को खोज कर क्या खोज लेंगे? धन को खोज कर किसने क्या खोज लिया है? खोज तो कोई और है। लेकिन उस खोज की जगह हम कुछ और खोज रहे हैं। हमने कुछ सब्स्टीट्यूट खोजें, कुछ परिपूरक खोजें बना ली हैं, और जीवन उनमें नष्ट हो जाता है। और हम खोज भी नहीं पाते जिसे खोजना था और वहां भटक जाते हैं जिसे खोजने का कोई अर्थ न था।
खोजना तो उसे ही है जिसे ईश्वर कहते हैं। ईश्वर का मतलब क्या है? ईश्वर का मतलब हैः खोजना उसे ही है जो जीवन का परम अर्थ है। खोजना उसे ही है जो जीवन की गहनतम गहराई है। खोजना उसे है जो जीवन की उच्चतम ऊंचाई है। खोजना उसे है जो अस्तित्व का सार है। खोजना उसे है वह जो एक्झिस्टेंस है, वह जो अस्तित्व की आत्मा है। ईश्वर का क्या मतलब? ईश्वर की सस्ती बातचीत ने बहुत मुश्किल में डाल दिया है। ईश्वर की बिल्कुल सस्ती बातचीत ने ऐसा

काम कर दिया है कि ईश्वर की अर्थवत्ता ही खो गई है। ईश्वर की अर्थवत्ता है अस्तित्व की आत्मा हम हैं। लेकिन यह होना क्या है? क्यों है? कहां है? कहां से है? कहां की तरफ है? इस पूरे होने को, इस बीइंग को, इस आत्मा को जानना ही प्रभु के मंदिर की खोज है। इसे खोजे बिना हम कुछ भी खोजते रहें, और हम कुछ भी पा लें, कुछ अर्थ नहीं। पाते ही, पाते ही हम पाएंगे सब व्यर्थ हो गया। जो भी हम पा लें--धन पा लें, धन पाते ही व्यर्थ हो जाता है। धन के पाने का एक ही लाभ है, धन पाने का एक ही लाभ है, और वह लाभ यह है कि धन पाते ही धन व्यर्थ हो जाता है। और निर्धन होने की क्षमता उपलब्ध हो जाती है। और कोई लाभ नहीं है। यश पाते ही यश व्यर्थ हो जाता है, और कोई चाहे तो बिना यश के जीने की क्षमता उपलब्ध हो जाती है। और कुछ लाभ नहीं।
लेकिन धोखा, आत्मवंचना गहरी है। एक वंचना से छूटते हैं कि तत्काल दूसरी वंचना पकड़ लेते हैं। एक यात्रा पूरी नहीं हो पाती कि नई यात्रा शुरू कर देते हैं। और कोई नहीं पूछता कि इस सबको करने से होगा क्या?
मैंने सुना है, रूस में एक लोक-कथा है। लोक-कथा है कि एक वृक्ष के ऊपर सुबह-सुबह एक कौआ बैठा हुआ है और वृक्ष के नीचे एक कवि विश्राम कर रहा है। सूरज निकला है, पक्षी उड़ते हैं, गीत गाते हैं। उस एकाकी कौवे के बैठे हुए वृक्ष के नीचे वह अकेला कवि अपना गीत गाने लगता है। वह अपनी एक गीत की चार कड़ियां गाता है और कहता है कि मैंने सब धन पा लिया, सब धन--ध्यान रहे, कुछ भी बचा नहीं। मैं कुबेर हो गया। सोलोमन का खजाना मेरे हाथ में है। अब मुझे पाने को शेष क्या है? वह कौआ ऊपर से जोर से हंसता है। कवि घबड़ा जाता है। वह कौवे की तरफ देखता है, कौआ कहता है, सो वॉट? पा लिया सब, इससे क्या होता है? कवि कहता है, नासमझ कौवे, तुझे क्या पता कि धन क्या खूबी की चीज है। कौवा कहता है, ठीक कहते हो। धन का पागलपन आदमियों को छोड़ कर किसी पशु-पक्षी में नहीं है। और हम हंसते हैं कि आदमी धन को पाकर समझता है कि कुछ पा लिया। क्या फायदा, क्या मिल गया, सो वॉट? कवि कहता है, छोड़ अच्छा धन को। मैं सारी पृथ्वी का चक्रवर्ती सम्राट हो गया हूं। सारी पृथ्वी पर मेरा झंडा फहर गया है, सब पर मेरा राज्य है, अब कुछ मुझे जीतने को न बचा। सब मैंने जीत लिया है। वह कौवा कहता है, सो वॉट? फहर गया झंडा, क्या होगा इससे? जीत लिया सबको, क्या होगा इससे? क्या मिलेगा इससे? तुम क्या हो जाओगे इससे? चक्रवर्ती होने से तुम क्या हो जाओगे?
वह कवि कहता है, नासमझ, तुझे कुछ पता नहीं। तू कुछ समझता नहीं। ठहर,
मैं तुझे तीसरी कविता सुनाता हूं। और कवि तो रुकते नहीं, कविता सुनाए ही चले जाते हैं, चाहे कौआ ही सुनने वाला हो। वह तीसरी सुनाते हैं। नासमझ, कोई फिकर नहीं। वह कहता है, फिर तीसरी कविता कहता है, कि मैंने गीता जान ली, कुरान जान लिया, बाइबिल जान लिया, मैंने सब जान लिया, मैंने सब ज्ञान इकट्ठा कर लिया। मैं सर्वज्ञ हो गया हूं। जो भी जाना गया, सब मैं जानता हूं। जो भी लिखा है, सब मैं पढ़ा हूं। मुझसे बड़ा पंडित कोई भी नहीं। मैं महापंडित हूं। वह कौआ कहता है, सो वॉट? इससे क्या होता है? कवि गुस्से में किताब फेंक कर चल पड़ता है कि कहां के नासमझ कौवे से मुकाबला हो गया है। हर चीज में कहता है, सो वॉट? वह कौआ कहता है, भाग जाओ किताब छोड़ कर, उससे भी कुछ नहीं होता। सो वॉट?
वह कौआ ठीक कहता है। चाहे यश, चाहे धन, चाहे पाडिंत्य और चाहे त्याग, छोड़ कर भाग जाओ सब कुछ। कुछ भी नहीं होता। इस सबसे कुछ भी नहीं होता। तो लोग क्यों करते हैं इसे? नहीं, कुछ होता है। कौआ कुछ गलत कहता है। शायद कौआ आदमी को नहीं समझता है इसलिए ऐसी बातें कहता है। हो सकता है कौआ अंततः ठीक कहता हो। लेकिन आदमी कहेगा, गलत कहता है। कुछ जरूर होता है यश पाने से, धन पाने से, त्याग करने से, पांडित्य पाने से कुछ जरूर होता है। कौवे को पता नहीं, वृक्षों को पता नहीं, पक्षियों को पता नहीं, आदमियों को पता है। कुछ जरूर होता है। क्या होता है? कुछ होता है। आदमी का अहंकार भरता है, ईगो भरती है--मैं कुछ हूं। और मजा यह है कि जिन्हें यही पता नहीं कि हम क्या हैं, उनको यह भ्रम हो जाता है कि वे कुछ हैं। अहंकार भरता है। अहंकार से बड़ा असत्य और कुछ भी नहीं है। एक असत्य मजबूत होता है, एक झूठ मजबूत होती है। और अहंकार से बड़ा कुछ असत्य नहीं, कोई बड़ी झूठ नहीं।

मैंने सुना है, कैलिफोर्निया की एक झील के किनारे एक आदमी मछलियां मार रहा है। सामने ही तख्ती लगी है कि मछलियां मारना सख्त मना है, लेकिन वह वहीं बैठ कर मछलियां मार रहा है। आदमी का कुछ मन ऐसा है, जहां तख्ती लगी हो, मना हो, वहीं तबीयत मछली मारने की होने लगती है। तख्ती लगाना बड़ा खतरनाक है। अगर मछलियों को बचाना हो, तो मछली न मारने की तख्ती कभी मत लगाना। नहीं तो मछलियां मरेंगी। मछलियां मारना मना है। वह आदमी वहीं बैठ कर मछलियां मार रहा है। जगह-जगह आदमी मिलेंगे आपको, जहां-जहां मछलियां मारना मना है, वहीं-वहीं मछलियां मारते मिलेंगे। कई तरह की मछलियां हैं, कई तरह के बोर्ड हैं, कई तरह के आदमी हैं। लेकिन जहां निषेध है, वहां निमंत्रण है। वह आदमी मछली मार रहा है, एक आदमी पीछे से आकर खड़ा हो जाता है और उस आदमी से पूछता है कि भाईजान, कितनी मछलियां मारीं? वह पास में पड़े हुए एक झोले की तरफ इशारा करता है कि झोला भर गया है। बड़ी-बड़ी मछलियां मारी हैं। वह आदमी कहता है कि शायद आपको पता नहीं कि मैं कौन हूं। वह मछली मारने वाला कहता है, कौन हैं आप? वह आदमी कहता है कि मैं इस झील का निरीक्षक हूं। यहां मछलियां मारना मना है। मैं सबसे बड़ा अधिकारी हूं इस झील का। तख्ती देखते हैं पीछे। वह आदमी कहता है, तख्ती देखने की कोई जरूरत नहीं। आपको पता है कि मैं कौन हूं। वह निरीक्षक कहता है, आप कौन हैं? वह आदमी कहता है, मैं इस झील के आस-पास रहने वाला सबसे बड़ा झूठ बोलने वाला हूं। वह झोला खाली है। उसमें कोई मछली वगैरह नहीं है। तो वह आदमी कहता है, फिर काहे के लिए यह ढोंग कर रहे हो? झोला खाली है, उसको भरा बताते हो? धागा जो लटकाया है, उसमें कोई नीचे भोजन नहीं। मछली के लिए बस धागा ही लटकाया है। धागा उचका कर वह दिखाता है। तो फिर काहे के लिए ढोंग कर रहे हो? वह आदमी कहता है, कुछ मित्र आने वाले हैं, उनको मैं दिखाना चाहता हूं कि मैं भी मछली मारने वाला हूं। साधारण नहीं हूं। मैं भी कुछ हूं। वह आदमी कहता है, इससे क्या फायदा? वह मछली मारने वाला कहता है, अगर इससे फायदा नहीं, तो दुनिया की सब दौड़ व्यर्थ हैं। क्योंकि सब दौड़ एक ही बात दिखाना चाहती हैं कि मैं कुछ हूं।
वह आदमी ठीक कहता है। वह उस झील के आस-पास झूठ बोलने वाला सबसे बड़ा है।
और जो आदमी भी यह दिखाने की कोशिश में लगा है कि मैं कुछ हूं, वह चाहे कहीं भी रहता हो किसी झील के आस-पास, वह भी एक बहुत बड़ी झूठ को सम्हालने में लगा है।
अहंकार से बड़ी कोई झूठ नहीं। और अहंकार के लिए हम सारी खोज कर रहे हैं। एक तो यह खोज है। और जिस आदमी को यह दिखाई पड़ जाता है कि अहंकार तो एक झूठ है। मैं हूं, लेकिन क्या हूं? यही मुझे पता नहीं। तो मैं यह हूं, वह हूं, यह दिखाने की कोशिश में लग कर कहीं मैं भटक तो नहीं जाऊंगा? पहले यह तो जान लूं कि मैं कौन हूं? फिर मैं कहूं कि मैं यह हूं। समबडी होने के पहले, कुछ होने के पहले यह तो जान लूं कि क्या हूं? और मजे की बात है, जो यह जानने जाते हैं कि वे क्या हैं, वे खो जाते हैं। और उससे एक हो जाते हैं जो सब है। और जो इस यात्रा पर जाते हैं बताने के लिए कि मैं यह हूं--धन से, ज्ञान से, यश से, पांडित्य से, त्याग से, जो यह दिखाने की कोशिश करते हैं कि मैं कुछ हूं, वे सिकुड़ते चले जाते हैं। दीवाल चारों तरफ बनती चली जाती है। एक ईगो, एक अहंकार मजबूत हो जाता है। वही अहंकार कांटे की तरह चुभता है, दुख देता है, पीड़ा देता है, कष्ट देता है। फिर वह आदमी पूछता है कि शांति के लिए क्या करूं? बड़ा मन अशांत है। अगर मन अशांत हो, तो जानना कि अहंकार किया होगा मजबूत, इसलिए मन अशांत है। फिर वह आदमी कहता है, बहुत दुखी हूं, आनंद पाने के लिए क्या करूं? अगर दुख हो, तो जानना कि अहंकार के अतिरिक्त और कोई दुख नहीं है। अहंकार किया है मजबूत। और अब वह आदमी पूछता है, आनंद कहां पाऊं? और वह आदमी कहता है कि बड़े अज्ञान में भटक रहा हूं, ज्ञान चाहिए। लेकिन उससे ख्याल से पूछना, अज्ञान अहंकार के सिवाय और क्या है? और अगर अहंकार है, तो अज्ञान नहीं मिट सकता है।

एक मित्र ने पूछा है कि सुकरात कहता है कि मैं जानता हूं कि मैं नहीं जानता। इसका क्या अर्थ है?

इसका इतना ही अर्थ है कि सुकरात यह कह रहा है कि यह भी अहंकार कि मैं जानता हूं, अज्ञान का सबूत है। यह भी अहंकार कि मैं जानता हूं, मैंने जान लिया, मैंने पा लिया। यह जो "मैं" पर जोर है, तो वह अहंकार है। अहंकार है तो खतरा है। जो जानता है, वह कहेगा, जानता हूं लेकिन मैं कहां हूं। वह अहंकार कहां है, वह इगो कहां है? इसका यह मतलब नहीं है कि "मैं" मिट जाएगा, तो आप मिट जाओगे। मैं मिटा तभी आप पूरे अर्थों में आप हो पाते हो। लेकिन तब वह आप बहुत बड़ा आप हो जाता है, उसमें सब समा जाता है। अहंकार की खोज चल रही है सब तरफ। एक आदमी धन इकट्ठा करता है, धन के ऊपर खड़ा होता चला जाता है। क्यों? यह ढेर किसलिए? वह चारों तरफ के लोगों से ऊपर उठ कर दिखलाना चाहता है कि मैं तुमसे ऊपर हूं। छोटे बच्चों जैसी बुद्धि होगी। एक छोटा सा बच्चा अपने बाप के पास कुर्सी पर खड़ा हो जाता है और कहता है, देखते हैं पिताजी, मैं आपसे बड़ा हो गया हूं। पिता हंसता है, वह कहता है, ठीक है। जरूर कुर्सी पर ऊंचे खड़े हो गए हो, बड़े हो गए हो। तो आदमी धन की कुर्सी बनाता है, ग्रंथों की कुर्सी बनाता है और उस पर खड़ा हो जाता है और चिल्ला कर कहता है कि मैं बड़ा हो गया हूं।
मैंने सुना है, डा. पट्टाभि सीतारमैया ने एक संस्मरण लिखा है। लिखा है
कि मद्रास में एक मजिस्ट्रेट था, और मजिस्ट्रेट बिल्कुल पागल था। और पागलपन क्या था? वही जो हम सबका पागलपन है। पागलपन यह था कि उसने अदालत में एक ही कुर्सी रख छोड़ी थी खुद के बैठने के लिए। दूसरी कुर्सियां न थीं। हां, अंदर रख दी थीं कुर्सियां उसने। सात नंबर की कुर्सियां थीं। एक नंबर की शानदार कुर्सी थी। सात नंबर का एक मुढा था--गरीब। और आठवें नंबर के आदमी आते थे, तो खड़े-खड़े उनसे बात कर लेता था। आदमी देख कर कुर्सी बुलवाता था। एक दिन एक बूढ़ा आकर खड़ा हुआ, लकड़ी टेकता हुआ। उसने सोचा, बिना कुर्सी
के ही चल जाएगा। लेकिन तभी बूढ़े ने बाह खींची, घड़ी देखी। घड़ी कीमती है। मजिस्ट्रेट ने अपने नौकर को कहाः जल्दी जा, नंबर तीन की कुर्सी ले आ। वह भीतर से नंबर तीन की कुर्सी जब तक ला पाया तब तक उस बूढ़े ने कहा, शायद आप मुझे पहचानते नहीं? मैं रायबहादुर, फलां-फलां, फलां-फलां गांव का, भूल गए। मजिस्ट्रेट चिल्लायाः ठहर! चपरासी! नंबर दो की कुर्सी ला। चपरासी बीच से वापस लौट गया। उस बूढ़े ने कहाः नहीं, शायद आप पहचान नहीं पाए। मैंने पिछले महायुद्ध में सरकार को दस लाख रुपये दान दिए थे। तब तक चपरासी फिर चला आ रहा है नंबर दो की कुर्सी लेकर। वह मजिस्ट्रेट चिल्लाया, ठहर! नंबर एक की लेकर आ। वह बूढ़ा बोला, मैं खड़े-खड़े थक गया, आखिरी जो नंबर हो वही बुला लें, क्योंकि अभी और बातें मुझे बतानी हैं। अभी मुझे पहचानने में थोड़ा वक्त और लग जाएगा।
लेकिन यही हमारी पहचान है। यही बूढ़ा अगर न कहे कि रायबहादुर हूं, दस लाख दिए थे। घड़ी न हो कीमती, बस खत्म हो गया। क्या आदमी इतना ही है? इतनी ही चीजों का जोड़--कपड़े, रायबहादुर, पदमश्री। बस, इन्हीं का जोड़--कोट, कमीज, पगड़ी, इन्हीं का जोड़ है आदमी? धन जो खीसे में है; किताबें जो खोपड़ी में हैं; त्याग जो स्मृति में है, इन्हीं का जोड़ है आदमी? बस, यही काफी है? इतना जान लेने से जानना हो जाएगा? खोज पूरी हो जाएगी?
अधिक लोग इतने की ही खोज में व्यस्त हैं। और जो इतने की खोज में व्यस्त है वह अभी कपड़े खोज रहा है। और जो कपड़े खोज रहा है वह समय खो रहा है। खोजना उसे है जो अंतस, जो आंतरिक, जो आत्मा है।
और हम सब कपड़े खोज रहे हैं।
वह मित्र पूछते हैंः खोजें क्यों ईश्वर को? वह मित्र यह पूछते हैं कि कपड़े ही क्यों न खोजते रहें? क्यों खोजें आत्मा को?
मत खोजें। मर्जी आपकी। लेकिन कपड़े खोज-खोज कर परेशान हो जाएंगे।
कपड़ों का ढेर इकट्ठा हो जाएगा। आप कपड़ों में ही खो जाएंगे, दब जाएंगे। और आप, आप कपड़े नहीं हैं।
गालिब को एक दफा बहादुरशाह ने बुलाया है। निमंत्रण दिया है भोजन के लिए, आ जाओ। कवि है, गरीब आदमी है। फटे-पुराने कपड़े पहन कर चलने लगा।
मित्रों ने कहाः यह पहन कर मत जाओ। राजा के दरवाजे पर ये कपड़े नहीं पहचाने जाते। गालिब ने कहाः मुझे बुलाया है कि मेरे कपड़ों को? नासमझ रहा होगा।

दुनिया में कपड़े ही बुलाए जाते हैं, पहचाने जाते हैं। आदमी, आदमी को बुलाने का वक्त कहां आया अभी तक? समय कहां आया वह?
लेकिन गालिब नहीं माना। कुछ लोग जिद्दी होते हैं, नहीं मानते। मित्रों ने बहुत कहा, हम उधार कपड़े ले आते हैं। गालिब ने कहाः उधार कपड़े भी क्या उचित होगा? उससे तो फटे-पुराने अपने ही बेहतर, कम से कम अपने तो हैं। कोई यह तो नहीं कह सकता कि उधार हैं। उन्होंने कहाः पागल हुए हो, कौन पहचानता है कि क्या उधार है, क्याअपना है, इस दुनिया में सब उधार चल रहा है। उधार ज्ञान से आदमी ज्ञानी हो जाता है, तुम उधार कपड़ों की फिकर करते हो?
गालिब नहीं माना। गालिब ने कहा कि नहीं, जो अपना है वही ठीक है। गरीब
भी अपना ही तो है, फिर कपड़े की क्या फिकर। मैं हूं। मैं तो वही रहूंगा, कपड़े कोई भी हों। मित्रों ने कहाः यह सब तुम नासमझी की बातें कर रहे हो, आदमी कपड़े से बदल जाता है। कपड़े जैसे होते हैं वैसा आदमी हो जाता है।
नहीं माना गालिब, चला गया। दरवाजे पर जाकर भीतर जाने लगा, द्वार पर खड़े द्वारपाल ने एक धक्का दिया और कहाः कहां भीतर जा रहे हो? यह कोई धर्मशाला है? कहां घुस रहे हो?
गालिब ने कहाः मुझे बुलाया है। सम्राट मेरे मित्र हैं। मुझे निमंत्रण भेजा है।
उस सिपाही ने कहाः हद्द हो गई। हर किसी भिखमंगे को सम्राट से दोस्ती
का ख्याल हो जाता है। रास्ते पर चलो, अन्यथा उठा कर बंद करवा दूंगा। गालिब को तब मित्र याद आए कि गलती हो गई। शायद कपड़े ही पहचाने जाते हैं।
गालिब वापस लौट आया। मित्रों से कहाः क्षमा मांगता हूं, भूल हो गई। कपड़े ले आओ। मित्र तो उधार कपड़े ले आए। जूते उधार हैं, पगड़ी उधार है, कोट उधार है, सब उधार है। उधार आदमी बड़ा जंचता है। गालिब खूब जंचने लगे। उधार आदमी खूब जंचता है। गालिब खूब जंचने लगे। सड़क पर हर दुकानदार झुक-झुक कर नमस्कार करने लगा। आदमी की यह जात... यह आदमियत अब तक उधारी को ही नमस्कार करती रही है। यही गालिब थोड़ी देर पहले इसी रास्ते से निकला था, किसी ने नमस्कार नहीं किया था। रास्ता वही है, लोग वही हैं, गालिब वही है। कपड़े बदल गए, सब बदल गया।
गालिब तो हैरान हो गया। यह सत्य कभी न जाना था कि कपड़ों में इतना सत्य है। वही द्वारपाल के पास पहुंचा है, द्वारपाल ने झुक कर नमस्कार किया और कहा कि कहां पहुंचाऊं? कैसे आए महाराज? गालिब ने गौर से उसे देखा। लेकिन द्वारपाल नहीं पहचानता। आंख है, आंखों में कौन झांकता है? कपड़ों में देखने से फुरसत मिले कि कोई आंखों में झांके। आदमी कौन देखता है? कपड़ों से आंख हटे तो कोई आदमी को देखे। और जिनके भीतर आदमी बिल्कुल नहीं होता इसलिए वे चौबीस घंटे कपड़ों की फिकर में होते हैं। कोई गेरुआ कपड़े रंगे हुए खड़ा है। आदमी भीतर बिल्कुल नहीं है। कोई और तरह के कपड़े रंगे हुए खड़ा है। आदमी भीतर बिल्कुल नहीं है। कोई गहने पहने हुए खड़ा है। कोई स्त्री सजी-धजी खड़ी है। आदमी भीतर बिल्कुल नहीं है। जब तक यह साज-बाज बहुत जोर से चलेगा ऊपर, तब तक जानना कि भीतर कोई कमी है, जिसे ऊपर से छिपाया जा रहा है। लेकिन यही दुनिया है, यही पहचाना जाता है।
गालिब भीतर पहुंचा दिए गए। सम्राट ने कहाः बड़ी देर से राह देखता हूं। गालिब को भोजन पर बिठाया। उठा कर भोजन गालिब अपनी पगड़ी को कहने लगाः ले पगड़ी खा, ले कोट खा। सम्राट ने कहाः क्या करते हैं आप? आपके खाने की बड़ी अजीब आदत मालूम होती है। गालिब ने कहाः अजीब आदत नहीं महाराज! मैं तो पहले आया था, अब नहीं आया हूं। अब तो कपड़े ही आए हैं। मैं तो आकर जा भी चुका। और अब कभी न आऊंगा। क्योंकि जहां कपड़े पहचाने जाते हैं वहां अपनी क्या जरूरत। अब तो कपड़े ही आए हैं। अब तो कपड़ों को भोजन करा दूं और वापस लौट जाऊं।
यह हम जिस जिंदगी की दौड़ को दौड़ समझ रहे हैं, खोज को खोज समझ रहे हैं, यात्रा को यात्रा समझ रहे हैं, यह कपड़ों से ज्यादा है? हम क्या खोज रहे हैं? इस सबको खोज कर भी क्या हम उसे पा लेंगे जो हम हैं?

और फिर आप पूछते हैं, क्यों खोजें ईश्वर को? ईश्वर की खोज का मतलब क्या है? ईश्वर की खोज का मतलब है, उसकी खोज जो है। और संसार की खोज का मतलब है, उसकी खोज जो नहीं है। संसार की खोज का मतलब है, असत्य की खोज। प्रभु के मंदिर की खोज का अर्थ है, सत्य की खोज। और असत्य का केंद्र है, अहंकार। संसार का केंद्र है, अहंकार। और प्रभु को जो खोजने जाता है वह अपने को खोता है, धीरे-धीरे खोता है।
मैंने कल कहा, विश्वास खो दो। आज कहा, विचार भी खो दो। कल कुछ और खोने
को कहूंगा, परसों कुछ और। एक घड़ी ऐसी आती है कि जो भी नॉन-एसेंशियल है, जो भी ऊपर से जुड़ा है, जो भी वस्त्र हैं, वह सब खो दो। रह जाने दो उसे जो नहीं खोया जा सकता है। और जिस दिन सिर्फ वही बच जाता है जिसे खोना असंभव है। उसी दिन क्रांति घटित हो जाती है। प्रभु मंदिर का द्वार खुल जाता है।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना उसके लिए मैं बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं।
मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

प्रभु मंदिर के द्वार पर पांचवां प्रवचन

ध्यान है द्वार

मेरे प्रिय आत्मन्!
संदेह पूर्ण हो तो संदेह से मुक्ति हो जाती है। विचार पूर्ण हो तो विचार से भी मुक्ति हो जाती है। असल में जो भी पूर्ण हो जाए उससे ही मुक्ति हो जाती है। सिर्फ अधूरा बांधता है। अर्ध बांधता है। पूर्ण कभी भी नहीं बांधता है। लेकिन संदेह पूर्ण नहीं हो पाता और विचार भी पूर्ण नहीं हो पाता। जो संदेह भी करते हैं वे भी पूरा संदेह नहीं करते हैं। जो संदेह करते हुए मालूम होते हैं, उनकी भी आस्थाएं हैं, उनकी भी श्रद्धाएं हैं, उनका भी अंधापन है। और जो विचार करते हैं वे भी पूरा विचार नहीं करते, वे भी कुछ चीजों को बिना विचारे ही स्वीकार कर लेते हैं। संदेह करने वाला भी संदेह पर संदेह नहीं करता और विचार करने वाला भी विचार को बिना विचारे स्वीकार कर लेता है। यदि कोई पूर्ण संदेह करेगा तो अंततः संदेह पर भी संदेह आ जाएगा। और यह सवाल उठेगा कि मैं संदेह भी क्यों करूं? और यह भी सवाल उठेगा, क्या संदेह से कुछ मिल सकता है? जो विचार पूर्ण करेगा, अंततः उसे यह भी ज्ञात होगा कि क्या विचार से उसे जाना जा सकता है जिसे मैं नहीं जानता हूं? और क्या विचार से जो जाना जाएगा वह सत्य होगा ही? इस संबंध में कल थोड़ी सी बातें सुबह मैंने कहीं।
विचार की प्रक्रिया प्रभु-मंदिर के मार्ग पर एक सीमा तक लाकर छोड़ देती है। और जो विचार में ही रुक जाता है वह दर्शन में भटक जाता है, फिलासफी में, लेकिन धर्म तक नहीं पहुंच पाता है। जो विश्वास पर रुकता है वह अंधविश्वासों में भटक जाता है, सुपरस्टीशन में। जो विचार पर रुकता है वह फिलॉसफीज में, विचारधाराओं में भटक जाता है। लेकिन जो विचार के भी आगे चलता है वह वहां पहुंचता है जहां धर्म का मंदिर है। विचार के संबंध में थोड़ी और बात समझ लेनी उचित है, ताकि हम विचार से ऊपर उठने की बात समझ सकें। पहली बात तो यह है कि कोई भी विचार कभी मौलिक नहीं होता है। ओरिजिनल विचार जैसी कोई चीज नहीं होती। सब विचार बासे, सांयोगिक होते हैं। विचार भी सीखे हुए होते हैं। इसलिए विचार के द्वारा हम वही जान सकते हैं जो हम जानते ही हों। जो हम नहीं जानते हों, जो अननोन हो, अज्ञात हो, वह विचार के द्वारा नहीं जाना जा सकता। सच तो यह है जो ज्ञात नहीं है उसका विचार भी नहीं किया जा सकता। हम उसका विचार भी कैसे करेंगे जो ज्ञात नहीं है। जो हम ज्ञात है हम उसका विचार कर सकते हैं, पक्ष में विपक्ष में सोच सकते हैं, लेकिन जो हमें ज्ञात ही नहीं है वह हमारे विचार का विषय कैसे बनेगा? हम उसे सोचेंगे कैसे? हमें उसका चिंतन कैसे करेंगे? हम उसका मनन कैसे करेंगे? अज्ञात विचार के बाहर है और परमात्मा अज्ञात है, अननोन है। इसलिए विचार से कोई परमात्मा को कभी नहीं जान सकता है।
दूसरी बात मैंने कही, विचार भी उधार है, वह भी बारोड है। हजार तरफ से विचार की धाराएं हमारे मस्तिष्क की तरफ दौड़ती हैं। उन विचारों का एक मेल, तालमेल भीतर बैठ जाता है। हो सकता है वह तालमेल बिल्कुल नया मालूम पड़े। लेकिन फिर भी, बहुत से विचारों का संघट ही होगा। जैसे एक आदमी कहे कि मैंने एक नया विचार किया है, मैंने एक ऐसे सोने के घोड़े को सोचा है जिसके पंख हैं और जो आकाश में उड़ता है। निश्चित ही, सोने का घोड़ा पंखों वाला आकाश में उड़ता हुआ कभी नहीं हुआ है। यह विचार बड़ा मौलिक मालूम होता है। लेकिन यह जरा भी मौलिक नहीं है। घोड़े हम जानते हैं। सोना हम जानते हैं। पंख हम जानते हैं। उड़ना हमने देखा है। इन चार को जोड़ कर हम एक सोने का उड़ने वाला घोड़ा बना लेते हैं। इसमें कुछ भी नया नहीं है। इसमें चार पुरानी चीजों को तोड़-मरोड़ कर इकट्ठा कर लिया गया है। नये विचार दिखाई ही पड़ते हैं कि नये हैं। नया विचार नहीं होता। नया तो निर्विचार ही होता है। मौलिक विचार नहीं होता। ओरिजिनल विचार नहीं होता। ओरिजिनल, मौलिक अनुभूति तो निर्विचार ही होती है। विचार बासा है। उधार है। दूसरों से आया हुआ है। फिर विचार की सामर्थ्य स्मृति से ज्यादा गहरी नहीं है। वह हमारे प्राणों तक

प्रवेश नहीं करता है। हमारी मेमोरी के पर्दे तक जाता है। उससे आगे नहीं जाता।
मेरे एक मित्र हैं, डाक्टर हैं। ट्रेन से गिर पड़े। चोट खा गई स्मृति उनकी। वह सब भूल गए जो जानते थे। डाक्टरी सीखी थी वह सब भूल गए। डाक्टरी तो दूर की बात है, अपना नाम भूल गए। अपने पिता को भूल गए। दो ही दिन बाद मैं उनको देखने गया। बचपन से मेरे साथ पढ़े थे, खेले थे, लड़े थे, झगड़े थे। वे मुझे भी भूल गए। वे मेरी तरफ ऐसे देखने लगे जैसे किसी अजनबी और अपरिचित ने भी कभी नहीं देखा होगा। और वे कहने लगे, कौन हैं आप? और कैसे आए हैं? और अपने आस-पास के लोगों से पूछने लगे, ये कौन हैं? और उनकी आंखों में कोई स्मरण नहीं है। वह जो स्मृति थी वह चोट खा गई, वह टूट गई। वह जो टेप-रिकार्डिंग थी स्मृति की वह तंतु टूट गया, वह विस्मरण हो गया या उससे संबंध टूट गया। वह तो हैं, उनकी चेतना है, उनका प्राण है, सब कुछ है, लेकिन स्मृति नहीं है। तो विचार गए। स्मृति की गहराई ही हमारे विचार की गहराई है। विचार प्राणों तक प्रवेश नहीं करता। विचार अस्तित्व तक नहीं जाता। विचार एक्झिस्टेंस तक, बीइंग तक नहीं पहुंचता। विचार सत्य तक नहीं पहुंचता। हमारे प्राणों के आस-पास जो कामचलाऊ मेमोरी का यंत्र है, स्मृति का यंत्र है, उस तक पहुंचता है बस। उसके गहरे उसकी कोई पहुंच नहीं है। हम कितना ही विचारें, विचार स्मृति से गहरे नहीं जाता। स्मृति का सत्य से क्या संबंध है?
स्मृति का सत्य से क्या संबंध है? सत्य तो बहुत गहरे है। स्मृति तो बहुत ऊपर है। जैसे कोई सागर की सतह पर लहरें हैं। सागर की गहराइयों से लहरों का क्या संबंध है? लहरों को पता भी नहीं कि सागर की गहराई क्या है? लहरें तो ऊपर हैं, हवाओं के झोंकों से उठती हैं और मिटती रहती हैं। स्मृति भी ऊपर है चेतना की, ऊपर की सतह है। बाहर की हवाओं के झोंकें लगते हैं, घटनाएं घटती हैं, अनुभव होते हैं, शब्द सुने जाते हैं, याद किए जाते हैं, ज्ञान होता है, सारा अनुभव होता है, बाहर की हवाओं के झोंके लगते हैं। चेतना की ऊपर की पर्त पर स्मृति निर्मित होती है। स्मृति बाहर के झोंकों के प्रतिक्रिया में पैदा होती है। इस स्मृति को कोई भी पता नहीं है कि गहरे में सागर में कौन है? यह स्मृति का इस गहरे सागर से कोई भी संबंध नहीं जुड़ पाता। स्मृति का संबंध बाहर के संसार से जुड़ता है। स्वयं से गहरे में स्मृति को कोई भी पता नहीं है।
तो अगर कोई विचार पर ही अटकेगा तो स्मृति पर ही अटक जाएगा। और गहरे नहीं जा सकता। हम, हमारा होना और भी गहरा है। फिर यह भी ध्यान रहे कि विचार क्या है? सिवाय शब्दों के जोड़ के और क्या है? सिवाय शब्दों के जोड़ के विचार और क्या है? और शब्द में सत्य है, तब तो सभी को सत्य मिल गया होता। एक आदमी पढ़ता है, सुनता है, समझता है, विचारता है, कहता है, ब्रह्म ही सत्य है। शब्द उसने सीख लिया। ब्रह्म सत्य है, सीख लिया। स्मृति में बैठ गया। वह दोहराता हैः ब्रह्म ही सत्य है, जगत माया है। ब्रह्म ही सत्य है, जगत माया है। वह दोहराता चला जाता है, दोहराता चला जाता है। स्मृति मजबूत होती चली जाती है। और वह ऐसा प्रतीत करने लगता है कि जगत असत्य है और ब्रह्म सत्य है। लेकिन, यह कोई अनुभव नहीं। यह कोई सत्य नहीं। यह शब्द की पुनरुक्ति से पैदा हुआ आभास है। कोई भी शब्द की पुनरुक्ति करो, उसका आभास पैदा, उसका इलुजन पैदा हो जाता है।
तब हम कैसे जानें सत्य को? कैसे हम प्रभु मंदिर में प्रविष्ट हों? द्वार तक लाकर विचार छोड़ता है। जो विचार पर ही रुक जाते हैं, वे बहुत आगे नहीं गए। गए थोड़ा और रुक गए। विचार पर्याप्त नहीं है, नॉट इनफ। कुछ और आगे जाना पड़ेगा। और उस आगे जाने में विचार छूटेगा तो ही आगे जाया जा सकता है। एक आदमी सीढ़ियों पर चढ़ता है, एक सीढ़ी पर पैर रखता है। आगे की सीढ़ी पर पैर रखना हो तो पिछली सीढ़ी छोड़ देनी पड़ती है। थोड़ी देर पहले उसने उस पर पैर रखा था। अब छोड़ना पड़ता है। आगे की सीढ़ी पकड़नी पड़ती है तो पिछली सीढ़ी छोड़ देनी पड़ती है। विचार की सीढ़ी पर रखा हुआ पैर उठा लेना पड़ेगा, तो जो सीढ़ी आएगी उसका नाम ध्यान है। ध्यान का अर्थ है, निर्विचार। ध्यान का अर्थ है चित्त की समग्र मौन अवस्था। चित्त में टोटल साइलेंस, ऐसा मौन, जहां शब्द नहीं,

जहां विचार नहीं, जहां तर्क नहीं, जहां सिर्फ देखना है, जहां सिर्फ दर्शन है। जहां सिर्फ देखने कि शुद्ध अनुभूति।
ध्यान का अर्थ हैः निर्विचार में प्रवेश। लेकिन ध्यान के नाम से और न मालूम क्या-क्या प्रचलित है जो ध्यान नहीं है। पहले हम समझ लें कि ध्यान क्या नहीं है, तो समझना बहुत आसान होगा कि ध्यान क्या है।
ध्यान तीसरा सूत्र है। ध्यान प्रभु-मंदिर में जहां विचार छोड़ता है उससे आगे ले जाता है। विचार द्वार पर छोड़ देता है। ध्यान द्वार के भीतर ले जाता है। ध्यान क्या नहीं है, यह समझ लेना इसलिए जरूरी है कि ध्यान के नाम से बहुत झूठे ध्यान प्रचलित हैं, बहुत सूडो मेडिटेशंस प्रचलित हैं। पहली बात, ध्यान के नाम से एकाग्रता, कनसनट्रेशन प्रचलित है, जो ध्यान नहीं है। साधारणतः समझा जाता है एकाग्र हो जाना ध्यान है। एकाग्र हो जाना भी विचार की अवस्था है, ध्यान की नहीं। किसी एक विचार पर अगर कोई एकाग्र हो जाए तो वह ध्यान की अवस्था नहीं है। वह विचार की चंचल अवस्था होती है एक, और विचार की एकाग्र अवस्था होती है दो, विचार की ही अवस्था है। कोई आदमी राम पर चित्त को एकाग्र कर ले, कोई कृष्ण पर, कोई क्राइस्ट पर, कोई अल्लाह पर, कोई किसी और पर, कोई ओम पर, कोई किसी और पर, कोई व्यक्ति किसी एक शब्द और विचार पर अपने चित्त को एकाग्र कर ले, तो भी यह ध्यान नहीं है। तो भी यह एक विचार के आस-पास घूमता हुआ चित्त है। विचार मौजूद है। और जहां विचार मौजूद है वहां ध्यान नहीं है।
हां, विचार पर अगर एकाग्र किया जाए तो कुछ परिणाम होंगे। पहला परिणाम
यह होगा, अगर एक ही विचार रह जाए चित्त में, तो चित्त तत्काल तंद्रा में, निद्रा में, सम्मोहन में, बेहोशी में चला जाता है। असल में चित्त की आकांक्षा नित-नये की है। प्रतिक्षण नये की है। चित्त का स्वभाव चंचलता है। वह बदलता रहे तो सुखद रहता है। अगर बिना बदली कोई चीज रह जाए तो चित्त ऊब जाता है। बोर्डम से भर जाता है। घबड़ा जाता है। घबड़ा कर सो जाता है। आपने आज जाकर एक फिल्म देखी। कल फिर आपको वहीं फिल्म देखनी पड़े। आज बहुत अच्छी लगी, कल आप कहेंगे, ठीक है। परसों फिर आपको देखना पड़े, तो आप कहेंगे, कृपा करें, अब मैं नहीं जाना चाहता। फिर और आपको देखना पड़े, तो आप घबड़ा जाएंगे। और अगर एक कानून लगा दिया जाए कि आपको अब जीवन भर देखनी ही पड़ेगी, तो आप पागल हो जाएंगे। या विद्रोह कर देंगे कि अब यह मैं नहीं देखना चाहता हूं। एक ही चीज चित्त को बेचैन करती है, उबाती है, बोर करती है, घबड़ाती है। घबड़ाने पर एक ही रास्ता रह जाता है चित्त के सामने कि वह सो जाए, ताकि वह जो एक अटका है, वह भूल जाए। एक मां अपने बच्चे को सुलाती है, तो कहती है, राजा बेटा सो जा, राजा बेटा सो जा, राजा बेटा सो जा, राजा बेटा सो जाता है। मां सोचती है कि शायद बहुत मधुर संगीत की वजह से सो गया, तो गलत सोचती है। राजा बेटा सिर्फ ऊब गए, घबड़ा गए। उनसे कह रहे हो, राजा बेटा सो जा, राजा बेटा सो जा, राजा बेटा... वह बोर्डम से भर गए। और राजा बेटा क्या, राजा बेटा के बाप के साथ भी यह दुर्व्यवहार किया जाए, वह भी सो जाएंगे। यह दुर्व्यवहार है। उसको उबाया जा रहा है। वही एक शब्द, वही एक ध्वनि, एक ही मोनोटोनस, एकरस आवाज में कही जा रही है, नींद पैदा करती है।
धार्मिक सभाओं में लोग अकारण नहीं सोते। वही बात हजार दफे सुन ली। वही बात फिर कही जा रही है। अब सुनने को भी कुछ नहीं है। लोग सो रहे हैं। कुछ डाक्टर तो यह कहते हैं कि जिन लोगों को नींद न आती हो उनको धार्मिक सभा में जाना चाहिए। नींद की दवाएं भी जिन पर काम नहीं करतीं उन पर भी राम और कृष्ण की कथाएं काम कर जाती हैं। वे इतनी दफे सुनी गई हैं कि अब सिवाय सोने के कोई उपाय नहीं। वे इतनी परिचित हैं कि अब उबाने वाली हो गई हैं।
चित्त नये के प्रति जागता है, पुराने के प्रति सो जाता है। पुनरुक्त
के प्रति सो जाता है। नये के प्रति थोड़ी देर जागता है। फिर पुनरुक्त के प्रति सो जाता है। नया जैसे ही पुराना पड़ा चित्त सोने लगता है। चित्त को सुलाने की तरकीब है किसी एक ही चीज पर पुनरुक्ति पूर्वक उसे रोक लेना। एक आदमी बैठ कर कहता रहेः राम-राम-राम, ओम-ओम-ओम, कुछ भी शब्द चुन ले और कहता रहे, कहता ही चला जाए। चित्त घबड़ा जाएगा। फिर तंद्रा पकड़ लेगी, फिर चित्त सो जाएगा, फिर चित्त निद्रा में चला जाएगा। सम्मोहन का शास्त्र कहता है,

हिप्नोटिज्म कहता है, कोई भी एक चीज को पुनरुक्त करो और तुम बेहोश हो सकते हो। पुनरुक्ति बेहोशी लाने की दवा है। किसी भी चीज को तीव्रता से दोहराते चले जाओ और तुम सो जाओगे, चित्त अचेतन हो जाएगा, चेतन अचेतन में लीन हो जाएगा।
हजारों साल से पुनरुक्ति और एकाग्रता को ध्यान समझा जा रहा है। पुनरुक्ति और एकाग्रता सम्मोहन है। हिप्नोटिक स्लीप है, ध्यान नहीं। इधर पश्चिम में महेश योगी और उस तरह के सारे लोग जो बातें करते हैं, वह सिर्फ सम्मोहन, तंद्रा की बातें हैं। उनका ध्यान से कोई भी संबंध नहीं। और पश्चिम में इस तरह की बातों का जो प्रभाव पड़ता है उसका कारण, उसका कारण कुल इतना है कि पश्चिम नींद की कमी से बेचैन और परेशान है। पश्चिम में नींद उखड़ गई है। तनाव बहुत ज्यादा है, टेंशन बहुत है, चिंता बहुत है। आदमी सुबह से सांझ तक इस तरह तना हुआ है कि रात नींद भी नहीं आती। नींद लाने की दवा चाहिए। कोई ट्रेंक्वेलाइजर चाहिए। लोग दवाएं ले रहे हैं, ट्रेंक्वेलाइजर ले रहे हैं। लेकिन ट्रेंक्वेलाइजर भी थोड़े दिन तक काम करता है, फिर वह भी खत्म हो जाता है। तो पश्चिम में नये-नये जो एकाग्रता के प्रभाव चल रहे हैं उसका और कोई कारण नहीं, उसका कुल कारण इतना है कि यह मंत्र-जाप से भी नींद आने में सुविधा होती है। मंत्र-जाप भी निद्रा लाता है। इतना फायदा है। लेकिन निद्रा ध्यान नहीं है।
तो एक तो पहली बात यह ख्याल में ले लें, एकाग्रता, कनसनट्रेशन ध्यान
या मेडिटेशन नहीं है। एकाग्रता बात ही और है। ध्यान बात ही और है। एकाग्रता का अर्थ हैः एक विचार की पुनरुक्ति। ध्यान का अर्थ हैः निर्विचार, विचार की पुनरुक्ति नहीं।
समझ लें, एक छोटा बच्चा है और एक कमरे में सौ पेटियां रखी हुई हैं। वह छोटा बच्चा एक पेटी से दूसरी पेटी पर, दूसरी से तीसरी पर कूदता है, तीसरी से चौथी पर, चौथी से पांचवीं पर कूदता है। पेटी बदल जाती है। बच्चा कूदता चला जाता है। वह खेल खेल रहा है। फिर हमने निन्यानबे पेटियां अलग कर लीं, अब एक ही पेटी बची है। अब वह बच्चा एक ही पेटी पर जंप करता है। कूदता है। खेल अब भी जारी है, पर एक ही पेटी पर कूद रहा है। फिर हमने पेटी भी हटा ली। अब कूदने को कुछ भी न बचा। अब वह बच्चा बैठ गया है। अब कूदने को कुछ भी नहीं है। न एक है, न सौ हैं। चित्त की तीन अवस्थाएं हैं। एक अवस्था है चंचल चित्त कीः एक विचार से दूसरा विचार, दूसरे से तीसरा, तीसरे से चौथा, यह चित्त की सामान्य स्थिति है। फिर इसे रोक लो, सब विचार अलग कर लो, एक को बचाओ, एक पर चित्त कूदता है, एक पर ही कूदता रहता है। कूदने का काम जारी है। एक अभी भी शेष है। फिर एक को भी हटा दो। अब कोई भी शेष नहीं रहा, कूदने को जगह नहीं रही। चित्त बैठ गया, शांत हो गया, मौन हो गया।
पहली अवस्था चंचलता की है। दूसरी अवस्था एकाग्रता की है। तीसरी अवस्था ध्यान की है। ध्यान का अर्थ हैः जहां कोई आब्जेक्ट न रहा--चित्त में कोई विषय, कोई विचार, कोई शब्द, कुछ भी न रहा। चित्त परिपूर्ण मौन हो गया, शांत हो गया। एकाग्रता विचार की ही एक अवस्था है, ठहरे हुए विचार की। एक नदी भाग रही है, यह चंचल चित्त की अवस्था है। एक नदी ठहर गई है, जम
गई है, तालाब बन गई है, यह एकाग्रता की अवस्था है। एक नदी बची ही नहीं, धूप में, सूरज में उड़ गई है, सिर्फ खाली नदी का रेत का पाट रह गया, अब नदी है ही नहीं, यह ध्यान की अवस्था है। ध्यान और एकाग्रता में फर्क किए बिना कोई समझ नहीं पाएगा ठीक से कि ध्यान क्या है। और अधिक लोग एकाग्रता को ही ध्यान मान कर बैठ कर समय को नष्ट कर लेते हैं। वे सिर्फ तंद्रा में, निद्रा में अपने को सुलाते हैं। निश्चित ही नींद का भी मजा है। सो जाने का भी मजा है। जीवन में दुख है, तकलीफ है, परेशानी है, भूलने का मन होता है।
एक आदमी शराब पी लेता है, झंझट के बाहर हो गया। जितनी देर शराब में होता है, उतनी देर न दुख है, न चिंता है, न परेशानी है, न पत्नी बीमार है, न बच्चे को दवा की जरूरत है, न नौकरी की तलाश है। सब खत्म हो गया। आदमी ने शराब पी ली है, वह निश्चिंत हो गया है। सोमरस से लेकर लिसर्जिक एसिड तक, वेद के ऋषियों से लेकर अमरीका के नवीनतम ऋषि अल्डुअस हक्सले तक, शराब के, बेहोशी के नये-नये तरकीबें आदमी खोजता रहा है। एक आदमी शराब पीता है, तो हम

कहते हैं कि बुरा करता है। क्यों? बुरा क्यों करता है? बुरा इसलिए करता है कि वह सिर्फ जीवन को भूलता है। जीवन को बदलता नहीं है। और क्या बुराई है? भूलने से जीवन बदलता नहीं, वही बना रहता है। और जितनी देर हम भूले रहें, उतना समय व्यर्थ हो जाता है। उतने समय में जीवन के दुख को बदला जा सकता था। एक आदमी तीन घंटे के लिए सिनेमा में बैठ कर सब भूल जाता है। एक आदमी मंदिर में भजन-कीर्तन करके सब भूल जाता है। एक आदमी ढोल-तास बजा कर, जोर से नाच कर सब भूल जाता है। एक आदमी टविस्ट में भूल रहा है, एक आदमी जॉज में भूल रहा है, एक आदमी एक कोने में बैठ कर राम-राम, राम-राम जप कर भूल रहा है, एक आदमी शराब पीता है, एक आदमी मेस्कलीन लेता है, मारिजुआना लेता है, अफीम लेता है, भांग-चरस-गांजा लेता है। ये सारे लोग भूलने की कोशिश कर रहे हैं। भूलने की कोशिश अलग-अलग है। अच्छी और बुरी भी हो सकती है। लेकिन बुनियादी बात एक है कि जीवन में जो दुख है, जो पीड़ा है, जीवन में जो अंधेरा है, उसे ये भूलने की कोशिश कर रहे हैं। भूलने की कोशिश से अंधेरा मिटता नहीं, अज्ञान टूटता नहीं, दुख नष्ट नहीं होता है। फिर भूलने के बाहर आते हैं, फिर दुख वहीं है, पीड़ा वहीं है, अज्ञान वहीं है।
ध्यान भूलने की कोशिश नहीं है। ध्यान जीवन के सत्य को जानने की कोशिश है। जीवन के सत्य को भूलने की कोशिश नहीं है। वह फार्गेटफुलनेस नहीं है। वह पूरी रिमेंबरिंग है। वह पूरी स्मृति है जीवन के सत्य की। उसका पूरा बोध है। तो ध्यान और एकाग्रता में उलटा संबंध है। एकाग्रता ध्यान नहीं है। और अगर आप एकाग्रता की कोशिश में लगे हैं, तो सिर्फ निद्रा में जाने की कोशिश में लगे हैं। उससे कहीं आप ध्यान में, सत्य में, प्रभु के मंदिर में प्रविष्ट नहीं हो जाएंगे।
लेकिन बहुत लोग नशे में जाकर सोचते हैं कि भगवान के मंदिर में चले गए। नशे में जाकर। और इसीलिए आज हजारों किस्म के साधु-संत गांजा-अफीम पीते हुए मिलते हैं। उसका कुल कारण इतना ही है कि वे सोचते हैं कि नशा वह भी है। इस नशे से और सहारा ले लो और जल्दी पहुंच जाओ।
नशे से कोई कहीं पहुंच नहीं सकता। किसी भी तरह के नशे से कोई कहीं नहीं पहुंच सकता। जाग कर पहुंचना होगा, होश से भर कर पहुंचना होगा। अवेयरनेस चाहिए, बेहोशी नहीं। तो ध्यान एकाग्रता नहीं है।
फिर ध्यान क्या है? ध्यान जागरूकता है। ध्यान है चित्त के समस्त विषयों के प्रति पूरे रूप से जाग जाना। बहुत-बहुत विचार हैं मन में, और हम सोए हुए हैं।
एक दिन बुद्ध बोल रहे हैं और एक आदमी सामने बैठ कर पैर का अंगूठा हिला रहा है। बुद्ध अपना बोलना बंद कर देते हैं और उस आदमी से कहते हैं कि मेरे मित्र, यह पैर का अंगूठा क्यों हिलता है? जैसे ही बुद्ध यह कहते हैं, उसके पैर का अंगूठा बंद हो जाता है। अगर आप भी बैठे होते और पैर का अंगूठा हिलाते होते और बुद्ध कहते, आपका पैर का अंगूठा--सुनते ही बंद हो जाता। वह आदमी कहता है कि मुझे कुछ पता नहीं, यूं ही हिलता था। बुद्ध कहते हैं, बड़ी अजीब बात कहते हो! तुम्हारा अंगूठा और तुम्हें पता नहीं? और यूं ही हिलता है? अंगूठा तुम्हारा है या किसी और का? तुम होश में हो या बेहोशी में?
एक आदमी कुर्सी पर बैठा है और टांगें हिला रहा है। उसे कुछ पता नहीं
कि टांगें क्यों हिल रही हैं? एक आदमी बैठा है और बार-बार करवट बदल रहा है। बैठे-बैठे करवट बदल रहा है। उसे कुछ पता नहीं कि करवट क्यों बदली जा रही है? शायद उसे होश ही नहीं कि वह यह क्या कर रहा है? बुद्ध कहते हैं, यह अंगूठा तेरा है या किसी और का? वह कहता है, मेरा है। तो बुद्ध कहते हैं, तेरा है, और तुझे पता नहीं? हिलता है और तुझे पता नहीं है? और मैंने पूछा, और एकदम रुक क्यों गया? उसने कहाः जैसे ही मैं सजग हुआ, रुक गया। जब तक मैं सजग न था, चलता था।
जैसे पैर का अंगूठा हिल रहा है, पैर हिल रहे हैं और जीवन की सारी की सारी पत्तियां और शाखाएं हिल रही है, वैसे ही चित्त भी बिल्कुल अनजान हिल रहा है। हमें कुछ पता नहीं कि क्या चल रहा है भीतर? हमने शायद ही अपने मस्तिष्क के भीतर झांक कर, कभी बैठ कर देखा हो, क्या चलता है भीतर? अगर देखें, तो शायद घबड़ा जाएं। अगर दस मिनट कमरा बंद कर लें और कागज रख लें और

कलम ले लें, और जो भी चित्त में चलता हो उसे लिख डालें ईमानदारी से, वही जो चलता हो, तो अपने सगे मित्र को भी बताना मुश्किल पड़ेगा। क्योंकि वह भी देख कर फौरन कहेगा कि चलो किसी डाक्टर के पास, तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। यह तुम्हारे दिमाग में चलता है? हमने कभी भीतर अगर झांक कर देखा हो, तो हमारे भीतर एक बिल्कुल विक्षिप्त चित्त बैठा हुआ है। क्या-क्या चल रहा है वहां? पागल में और हममें फर्क क्या है? पागल में और हममें इतना ही फर्क है कि जो हमारे भीतर चलता है हम उसे किसी तरह दबाए रहते हैं, संयम रखते हैं उस पर, वह निकल नहीं जाता है एकदम। कभी-कभी तो निकलता है, मौके-बेमौके निकल जाता है। उसको हम क्रोध कहते हैं कि जरा हमसे गलती हो गई क्रोध में। वह सब निकल गया जो भीतर चलता था। लेकिन सामान्यतया हम सम्हाले रहते हैं।
हर आदमी अपने पागलपन को सम्हाले हुए चल रहा है। जो सम्हाल कर चल रहा
है उसको हम कहते हैं नार्मल और जो नहीं सम्हाल पाता है बेचारा, उसको हम कहते हैं पागल। पागल और नार्मल में इससे ज्यादा फर्क नहीं। डिग्री का फर्क है। कोई और ज्यादा फर्क नहीं। हममें से कोई भी किसी भी क्षण पागल हो सकता है। जरा सा धक्का लग जाए और वह जो भीतर सम्हला हुआ था छलक जाए बाहर, तो सब गड़बड़ हो गया।
यह भीतर जो हम लिए चल रहे हैं, यह जो चित्त है हमारा, यह जो माइंड है, यह
जो विचार के अनंत-अनंत भीतर जाल हैं, कभी इन्हें जाग कर देखा है या हम सिर्फ इनकी तरफ पीठ किए हुए हैं? जिन्होंने मन को खोजा है, वे कहते हैं कि ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जिसने कितनी ही बार आत्महत्या न की हो अपने भीतर। कितनी ही बार कितने ही खून न किए हों। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जिसने जितने अपराध हो सकते हैं उनकी किसी न किसी कोने में, मन के कहीं न कहीं अंधेरे में इच्छा न की हो। सब अपराध, सब पाप, सब बुराइयां, सब पागलपन हम सबके भीतर बीज-रूप में मौजूद हैं। और उन सबके विचार डोलते रहते हैं, तरंगें डोलती रहती हैं। भीतर सब चलता रहता है। पर हम कभी जाग कर उसे देखे नहीं। हम उसकी तरफ पीठ किए हुए हैं। हम डरते भी हैं कि वह सब दिखाई न पड़ जाए।
शायद इसीलिए हम चौबीस घंटे कहीं न कहीं उलझे रहना चाहते हैं कि जो भीतर है वह दिखाई न पड़ जाए। दिखाई पड़ेगा तो हम घबड़ा जाएंगे कि यह क्या पागलपन भीतर है? यह मैं हूं, यही मैं हूं जिसका मैं गौरव करता हूं, गान करता हूं, यही मैं हूं? जिस अहंकार की मैं घोषणा करता हूं? इसी पागल को मैं मैं समझे हुए हूं? तो डरता है मन। हम बाहर ही बाहर रहते हैं, भीतर जाते ही नहीं।
जैसे किसी घर में सांप-बिच्छू भरे हों और वह दरवाजे पर ताला लगा कर बाहर बैठा हो, और वह जानता है कि भीतर सब सांप-बिच्छू भरे हैं। वह भीतर की बात ही नहीं करता है। अगर कोई भीतर की याद भी दिलाता है तो वह कहता है, वहां सब ठीक है, कुछ और बात करो। क्योंकि उसे पता चलता है कि जैसे ही भीतर की बात चलती है सारे सांप-बिच्छू भीतर के ख्याल में आने लगते हैं। वह कहता है, कुछ ऐसी तरकीब बताओ कि मैं भीतर-भीतर सब भूल जाऊं। मुझे तो विस्मरण चाहिए। कुछ ऐसी तरकीब बताओ कि भक्ति-भाव में लीन हो जाऊं। कुछ ऐसा बताओ, समर्पण कर दूं। कुछ ऐसा बताओ कि यह सब मुझे याद ही न रहे। कुछ ऐसा बताओ कि मैं संसार से मुक्त हो जाऊं। वह उनके भीतर जो सांप-बिच्छू भरे हैं, वह जो अंधेरा भरा है, उसे देखने की हिम्मत नहीं जुटा पाता। और उसे पता नहीं है कि जब तक वह देखने की हिम्मत न जुटाए तब तक वे सांप-बिच्छू विदा न होगे। वह न देखने से ही पैदा हुए हैं। वह वहां मौजूद न होने से ही इकट्ठे हुए हैं। अगर मैं वहां चला जाऊं, पूरे होश से भर कर तो वे ऐसे ही विलीन हो जाएंगे जैसे कोई दीये को लेकर अंधेरे को खोजने चला जाए और जहां-जहां जाए वहीं-वहीं अंधेरा न पाए। हमारे चित्त की सारी रुग्णता, हमारे चित्त का सारा विष, हमारे चित्त
का सारा जहर हमारी गैर-मौजूदगी से पैदा हुआ है। हम अनुपस्थित हैं। हर आदमी अपने भीतर एब्सेंट है। एक जगह से हम बिल्कुल अनुपस्थित हैं, वहां हम कभी नहीं जाते। प्रॉक्सी देने वाला भी हमारा वहां कोई नहीं है। वहां सब अंधेरा पड़ा हुआ है। वहां हम कभी जाते नहीं। हम बाहर-बाहर घूमते रहते हैं। सब तरफ घूमते हैं, एक जगह छोड़ कर, वह जगह जो हम हैं, वह जो मैं हूं। वहां हम

प्रवेश नहीं करते, वहां हम कभी नहीं जाते। ध्यान का अर्थ है, वहां जाना। ध्यान का अर्थ है, चित्त में जो है उसके प्रति जागना। ध्यान का अर्थ है, जो भी है बुरा, भला, गंदा, पागलपन, उस सबके प्रति होश से भरना। लेकिन होश से वही भर सकता है जो चित्त के प्रति दमन से न भरा हो। इसलिए ध्यान की प्रक्रिया में दमन नहीं। यह ध्यान का पहला, सूत्र है। सप्रेशन नहीं। क्योंकि जिस आदमी ने दमन किया वह भीतर जाने से डरेगा। उसने भीतर सब गंदगी इकट्ठी कर दी। अब वह भीतर जाने से घबड़ाएगा। उसे पता है कि भीतर क्या-क्या है? और हम सबने दमन किया है--क्रोध का, काम का, लोभ का, सबका दमन किया है। भीतर सब इकट्ठा हो गया है। और वह सब इतना इकट्ठा हो गया है कि वहां जाने की हिम्मत जुटानी भी मुश्किल मालूम पड़ती है। वहां हम नहीं जाना चाहते। लेकिन ध्यान रहे, प्रभु मंदिर के द्वार तक पहुंचने में वहां से गुजरना ही पड़ेगा। अपने से गुजरे बिना कोई प्रभु तक नहीं पहुंच सकता। अपने से गए बिना कोई प्रभु तक नहीं पहुंच सकता। कोई कहीं भी हो और कहीं से भी चले, एक रास्ते से गुजरना ही पड़ेगा--वह जो मैं हूं। उससे गुजरे बिना कोई परमात्मा तक नहीं पहुंच सकता। मैं ही द्वार हूं। और इस द्वार से गुजरना ही पड़ेगा। और इसी द्वार से हम डर गए हैं। दमन के कारण डर गए हैं। हमने वहां सब छिपा दिया है। वहां हम देखने को भी जाने को राजी नहीं है, कि वहां क्या है? ध्यान का अर्थ हैः दमन नहीं, जागरण। जो भी चित्त में है उसे दबाना नहीं। दबाने का मतलब होता है, अनकांशस में धकेल दो, अंधेरे में धकेल दो, जहां दिखाई न पड़े। जैसे कोई आदमी अपने घर में तलघर बना लेता है। जो भी कचरा, कूड़ा, कबाड़ है, किसी की हत्या कर दी, किसी की चोरी कर लाए, वह सब तल-घर में डालता चला जाता है। नीचे तलघर भरता चला जाता है। न वह किसी को बताता है कि मेरे घर में तलघर है। क्योंकि वहां उसने हत्याएं की हैं। वहां वह दूसरों की स्त्रियों को उठा लाया है। वहां दूसरे का धन ले आया है। वहां उसने क्या नहीं किया है? तो वह तलघर को किसी को बताता नहीं है। वह खुद भी वहां जाने से डरता है। वहां उसने जो कुछ किया है वह इतना घबड़ाने वाला है कि मैं वहां कैसे जाऊं?
हमने अपने चित्त को दो हिस्सों में बांट रखा है। एक तो वह चित्त है, थोड़ा सा ऊपर का बैठकखाना, जहां हम मेहमानों का स्वागत करते हैं, और अच्छी- अच्छी बातें करते हैं। बिल्कुल झूठा है बैठकखाना। बैठकखाने से झूठी कोई जगह घर में दूसरी नहीं होती। बैठकखाना असली जगह नहीं है। वहां जो पर्दे हमने लगाए हैं और वहां जो फर्नीचर हमने लगाया है, वह सब दिखावा है। वह सिर्फ उनके लिए है जो बाहर से आते हैं, उनके लिए धोखा है। लेकिन कोई धोखा- वोखा नहीं खाएगा, क्योंकि ऐसे ही धोखा उन्होंने भी अपने घर में बना रखा है। बैठकखाना झूठी जगह है। वह हमारा असली घर नहीं है। असली घर तो बैठकखाने के पीछे शुरू होता है, और वहां जो है वहां हम खुद भी जाने से डरते हैं।
तो एक तो चित्त का वह हिस्सा है जिसे कांशस कहें, चेतन कहें। चित्त दो हिस्सों में बंटा नहीं है। हमने बांट दिया है। एक हिस्सा वह है जिसको चेतन कहें। वहां हम मेहमानों का स्वागत करते हैं, नमस्कार करते हैं, अभिवादन करते हैं, अच्छी-अच्छी बातें करते हैं। शिष्टाचार के नियम हैं। समाज है। सब संस्कृति है। सभ्यता है। वह बस वहीं है। वह बहुत छोटा हिस्सा है। अगर हम मन के दस खंड करें, तो वह एक खंड है। नौ खंड अंधेरे हैं भीतर। वहां असली आदमी रहता है, खूंखार, जंगली। हजारों लाखों वर्षों से जो आदमी वहां रहा है, वही वहां रहता है। वहां न सभ्यता है, न संस्कृति है, न शिष्टाचार है। वहां हम असली हैं। वहां हम जाते ही नहीं। वहां हम झांकते ही नहीं हैं। हम तो उसी बैठकखाने में जिंदगी गुजारने की कोशिश करते हैं जो बिल्कुल झूठा है। और तब हम कभी सत्य तक नहीं पहुंच सकते। अपने नौ खंडों को भी जानना पड़ेगा। इन नौ खंडों से बच कर भागने का उपाय नहीं। शराब में आदमी इन्हीं नौ खंडों से भागता है, और मंत्र जाप में भी इन्हीं से भागता है। प्रार्थना-पूजा में भी इन्हीं से भागता है। मेस्कलीन और लिसर्जिक एसिड में भी इन्हीं से भागता है। सिनेमा में, संगीत में, नाच में भी इन्हीं से भागता है। आदमी अपने ही उन खंडों से भागता है, जिन्हें वह देखने की भी हिम्मत नहीं जुटा पाता, साहस नहीं कर पाता।

लेकिन साधक को उसे देखना ही पड़ेगा। जानना ही पड़ेगा। उसे प्रवेश करना
ही पड़ेगा। उसे अपने उस पूरे चित्त में जाना पड़ेगा जहां वह कभी नहीं गया। ध्यान का अर्थ हैः अपने अचेतन में सचेत प्रवेश। ध्यान का अर्थ हैः जो भी मेरे भीतर है उसे मैं उघाडूंगा और साक्षात्कार करूंगा उसका, उसे देखूंगा कि वह क्या है? जरूरी है इसके लिए कि मैं दमन न करूं। जरूरी है इसके लिए कि मैं चित्त की किसी वृत्ति के प्रति कोई निर्णय न लूं, कोई जजमेंट न लूं। क्योंकि जैसे ही मैंने निर्णय लिया, तो जिसको मैं बुरा कहता हूं उसको मैं सामने न लाना चाहूंगा। और जिसे अच्छा कहता हूं उसे सामने लाना चाहूंगा। जिसे मैं बुरा कहता हूं उसको हटा दूंगा और जिसे अच्छा कहता हूं उसे द्वार पर लगा लूंगा। फिर खंड-खंड चित्त शुरू हो जाएगा। जिस आदमी को ध्यान करना है उसे जजमेंट, उसे निर्णय कि यह बुरा है, यह अच्छा है, यह कुछ भी करने की जरूरत नहीं है। उसे तो इतना ही जानना है कि क्या है? जो है उसे मैं जानूंगा। वह बुरा हो, भला हो, पाप हो, पुण्य हो, वह जो भी हो, मैं कोई निर्णय नहीं लेता। मैं अनिर्णीत, मैं बिना किसी निर्णय के जाऊंगा और देखूंगा कि क्या है?
और बड़े आश्चर्य की बात है जो आदमी निर्णय नहीं लेता पूर्व से, यह बुरा है, यह भला है, यह पाप है, यह पुण्य है, यह करना है, यह नहीं करना है, यह होना है, यह नहीं होना है, ऐसा जो डिवीजन, ऐसा जो खंड नहीं करता, उसका चित्त अखंड हो जाता है, एक। और जो आदमी अपने चित्त को उसकी समग्रता में अत्यंत निष्पक्ष भाव से साक्षी बन कर देखने की हिम्मत जुटाता है उस आदमी के जीवन में एक क्रांति आनी शुरू होती है, जिसका हमें कुछ भी पता नहीं है। जैसे ही वह निष्पक्ष होकर देखना शुरू करता है, वे सारी बातें, जो कल तक बड़ी भारी मालूम पड़ती थीं, विदा होने लगती हैं। छायाओं की तरह विदा होने लगती हैं। यह निष्पक्ष साक्षीभाव, यह बिना चुनाव के, बिना निर्णय के, चित्त में जो भी है उसे देखने की हिम्मत और साहस ध्यानी का लक्षण है। ध्यान का अर्थ हुआः जो भी मेरे भीतर है उसे मैं जानूं और देखूं। न निर्णय करूं, न बुरा कहूं, न भला कहूं। न कंडेमनेशन न जस्टीफिकेशन। जो भी है उसे मैं देखूं और जानूं कि यह है। सिर्फ इतना ही, ध्यान का इतना ही अर्थ है कि चित्त के समस्त पर्तों के सामने निष्पक्ष भाव से खड़े हो जाना।
लेकिन हम, हम बड़ी अजीब मनोदशा में हैं। हम तो किसी चीज के साथ निष्पक्ष खड़े ही नहीं हो सकते। हम तो किसी भी चीज के साथ बिना पक्ष लिए एक क्षण नहीं ठहर सकते। अगर गुलाब के फूल के पास खड़े होंगे, तो यह बिना कहे नहीं ठहर सकते कि सुंदर है। ऐसा नहीं हो सकता कि हम कुछ न कहें और दो क्षण गुलाब के फूल के पास ठहर जाएं। जो भी हो गुलाब का फूल सुंदर हो, कि असुंदर हो, हम कुछ न कहें, हमारा चित्त कोई निर्णय न ले। सिर्फ फूल को देखें और ठहर जाएं। हम नहीं ठहर सकते। कि हम चांद को देखें और ठहर जाएं और निर्णय न लें कि सुंदर है, असुंदर है। एक स्त्री का चेहरा दिखाई पड़े, एक सुंदर युवक का चेहरा दिखाई पड़े, तो यह असंभव है कि हम यह सोचे बिना एक क्षण रुक जाएं कि इसे मैं पा लूं, इसका मैं मालिक हो जाऊं। हमारी सारी आदत तत्काल पक्ष निर्णय करने की है। हम निष्पक्ष एक क्षण भी नहीं ठहरते।
ध्यान का अर्थ हैः निष्पक्ष, जो है उसके पास ठहर जाना। कुछ निर्णय न लेना जल्दी में। क्योंकि जैसे ही निर्णय लिया, ध्यान विदा हुआ, विचार शुरू हुआ। इसे समझ लेना। जैसे ही निर्णय लिया, ध्यान गया, विचार शुरू हुआ। निर्णय विचार है, पक्ष विचार है। जैसे ही मैंने कहा, गुलाब का फूल सुंदर है, विचार शुरू हो गया, फूल विदा हो गया। दर्शन समाप्त हुआ। ध्यान अंत हुआ। विचार बीच में आ गया। अगर मैं यह न कहूं कि गुलाब का फूल सुंदर है, अगर मैं यह न कहूं कि पहले भी इस फूल को देखा था, अगर मैं यह न कहूं कि इसे मैं तोड़ कर अपने बटन-होल में लगा लेना चाहता हूं। अगर मैं यह कुछ भी न कहूं। गुलाब वहां हो, मैं यहां होऊं, बीच में कोई विचार न हो। तब गुलाब और मेरे बीच जो मिलन होगा वह ध्यान में हुआ। और ऐसे ही हम अपने चित्त के सारे फूल, सारे कांटे, जो भी वहां है, उसे देखें, उसका दर्शन करें। इस दिशा में थोड़ा प्रयोग करना पड़े। इसकी थोड़ी आदत बनानी पड़े। इस तरफ थोड़ा अभ्यास ले जाना पड़े। क्योंकि हमारी निरंतर की आदत, दर्शन हुआ नहीं कि शब्द हमने दिया

नहीं। कुछ हुआ और हमने फौरन शब्द दिया कि यह ऐसा है। और वह शब्द द्वार पर खड़ा हो गया। दर्शन बंद हो गया। ध्यान विलीन हो गया।
ध्यान का अर्थ हैः निःशब्द निर्विचार, साक्षीभाव, थॉटलेस विटनेस। कोई विचार नहीं, सिर्फ साक्षीभाव, सिर्फ देख रहा हूं। इसे बाहर भी प्रयोग करें। फूल के पास से गुजरें तब भी, पत्नी के पास से गुजरें तब भी, बेटे के पास से गुजरें तब भी, पति जब सामने हो तब भी, अनजान आदमी रास्ते से गुजरता हो तब भी, आकाश का तारा देखें तब भी। बाहर भी प्रयोग करें ध्यान का। चुप हो जाएं, देखें जो है, और फिर खोजें कि क्या होता है सिर्फ देखने से? फिर भीतर भी प्रयोग करें। जब विचार चले तब, जब क्रोध चले तब, जब काम चले, सेक्स चले तब। तब देखें कि क्या है भीतर, कौन सा धुआं चल रहा है, देखूं मैं, चुप होकर देखूं, क्या है उसे पहचानूं। और पहचान तभी सकूंगा जब पूरा देखूं। बीच में कुछ न आने दूं। बाहर भी, भीतर भी ध्यान का प्रयोग चले तो विचार से मुक्ति होगी, और जो है उसे जानने की क्षमता प्रगाढ़ होगी। और एक बिल्कुल नया द्वार खुलेगा जिसकी हमें अब तक कोई पहचान नहीं है। एक बहुत सौंदर्य की अनूठी संभावना खुलेगी, जिसे हमने कभी नहीं जाना। एक सत्य की बिल्कुल नई हवा चलेगी जिससे हम बिल्कुल अपरिचित हैं। कुछ ऐसे फूल खिलेंगे, कुछ ऐसी सुगंध होगी जिसे हम पहचानते नहीं, कुछ अज्ञात हममें प्रवेश करेगा।
ध्यान के अतिरिक्त अज्ञात कभी प्रवेश नहीं करता। विचार तो ज्ञात का
ही पुनरुक्ति है। और जब हम एक फूल के पास खड़े होकर कहते हैं कि हां, देखा है, पहचाना है, रिकग्नाइज करते हैं, विचार पुराना है। पहले के देखे हुए फूल हैं। यह फूल कब देखा था? यह फूल तो कभी नहीं देखा था। यह तो परमात्मा भी पहली ही बार देख रहा होगा। यह तो किसी ने कभी नहीं देखा था। इस फूल को देखने के लिए सब फूल विदा हो जाएं, फूलों का विचार विदा हो जाए, सब शब्द विदा हो जाएं, सीधा मैं इसके सामने खड़ा हो जाऊं। जैसा फूल के लिए वैसा स्वयं के लिए, चित्त की समस्त स्थितियों के सामने मैं खड़ा हो जाऊं। सीधा खड़ा हो जाऊं, जो भी है उसे देखूं। डरूं भी नहीं। बहुत बुरा दिखाई पड़ेगा, लेकिन वह बुरा इसीलिए मालूम होता है कि हमने बुरे की धारणा बना रखी है। प्रशंसित भी न हो जाऊं। बहुत पुण्य भी दिखाई पड़ सकते हैं। बहुत प्रेम भी वहां दिखाई पड़ सकता है, लेकिन प्रशंसित भी न होऊं, निंदित भी न होऊं, क्योंकि जैसे ही मैं वह हुआ, मन, चित्त डांवाडोल हुआ, ध्यान विलीन हुआ, विचार शुरू हुआ। विचार का कंपन बीच में न आए। एक दर्पण की भांति, जैसे खाली दर्पण जिस पर कोई धूल नहीं है वैसे मैं स्वयं को देखने की दिशा में चलूं। इस प्रक्रिया का नाम ध्यान है। ध्यान हैः आत्म-निरीक्षण। ध्यान हैः स्वयं के प्रति साक्षीभाव। ध्यान हैः अपने ही लिए विटनेस हो जाना।
स्वामी राम अमरीका गए। वहां लोग बड़ी मुश्किल में पड़े, क्योंकि स्वामी राम की आदत से वे परिचित ही न थे। राम हमेशा थर्ड परसन में बोलते थे। वह ऐसा नहीं बोलते थे कि मैं गया एक जगह और कुछ लोग मुझे गाली देने लगे। वह ऐसा ही कहते थे कि आज बड़ा मजा हुआ, राम गए एक जगह, कुछ लोग राम को गालियां देने लगे। लोगों ने कहाः आप किसके बाबत कहते हो? राम यानी आप हीं न? राम ने कहाः मैं कहां, मैं तो दूर खड़ा देखता था कि राम को गालियां पड़ती थीं। राम बेचैन होते थे। राम गुस्से से भरते थे। मैं दूर खड़ा देखता था और हंसता था कि अच्छे फंसे राम। आज अच्छे फंसे। क्या गालियां पड़ रही हैं। अब क्या करोगे? और राम जो करते थे वह मैं देखता था।
बड़ी मुश्किल थी लोगों को समझने में कि यह आदमी क्या कह रहा है? कभी आपने भी यह हिम्मत की है कि आप दूर खड़े हो गए हों और देखा हो कि यह चित्त क्या करता है? ये राम क्या करते हैं? जब इन पर गालियां पड़ती हैं तब ये क्या करते हैं? कभी आप दूर खड़े हुए? कभी आप तीसरे आदमी बने? अगर नहीं बने तो ध्यान का आपको कोई पता नहीं हो सकता।
ध्यान का अर्थ हैः तीसरे आदमी बन जाना। हम हमेशा दो आदमी हैं। आप मेरे पास आए और मुझे गाली दें, तो वहां दो आदमी हैं। एक आप गाली देने वाले, एक मैं गाली का उत्तर देने वाला। लेकिन एक कोई और भी है न, जो देख रहा है यह सब कि गाली दी गई, गाली ली गई, गाली का उत्तर दिया गया। वह तीसरा भी मेरे भीतर है न। और आपके भीतर भी एक तीसरा है। वहां चार हैं। लेकिन प्रत्येक के लिए

तीन हैं। एक यह जिसको गाली दी जा रही, यह जो बेचैन हो रहा गाली सुन कर, और एक वह जो गाली दे रहा, जो इन दोनों को देख रहा है। यह तीसरा निखरना चाहिए तो ध्यान विकसित होगा। ध्यान यानी यह तीसरा, दि थर्ड। यह साफ होना चाहिए। थोड़ा प्रयोग करके देखें और बहुत हैरानी होगी। पैर में चोट लगी है, दर्द हो रहा है, कष्ट हो रहा है, सिर दुख रहा है, थोड़ा देखें, वहां दो हैं या तीन? दर्द है, दर्द जिसे हो रहा है, वह है, कोई एक और भी है जो दोनों को देख रहा है--दर्द भी है और दर्द हो रहा है और कोई एक और भी है, एक और भी है। वह एक और भी साक्षी होने से क्रमशः प्रकट होगा।
सिकंदर हिंदुस्तान आया। वापस लौटता है। उसके मित्रों ने कहा था कि एक संन्यासी भी ले आना। सब लूट कर जब जाने लगा है तो एक गांव में ख्याल आया कि एक संन्यासी तो और ले आएं। तो पूछा किसी से, कोई संन्यासी होगा? था एक संन्यासी। दो सिपाही भेजे कि ले आओ उसको और कहो कि हम तुम्हें शाही सम्मान देंगे, सुविधा देंगे, आदर देंगे। हमारे साथ यूनान चलो। महान सिकंदर की आज्ञा है।
वे सिपाही नंगी तलवार लेकर गए और उस संन्यासी से कहा कि चलो, महान सिकंदर ने कहा है। वह संन्यासी हंसने लगा, उसने कहा, पागल है जो स्वयं अपने को महान कहता हो। उन्होंने कहाः तुम्हें पता नहीं, तुम किसको पागल कह रहे हो? मुश्किल में पड़ जाओगे। तुम्हें आज्ञा दी गई है, चलो हमारे साथ।
उस संन्यासी ने कहाः तुम्हें शायद पता नहीं, संन्यास का अर्थ ही यह होता हैः जिसने सबकी आज्ञा पालना छोड़ दिया। अब हम किसी की आज्ञा नहीं पालते। अब हम किसी की आज्ञा पालते ही नहीं। उन लोगों ने कहाः तुम्हें पता नहीं कि सिकंदर गर्दन अलग करवा देगा। उसने कहाः तुम सिकंदर से जाकर कहना कि संन्यासी होने का अर्थ ही यह होता है कि हम जानते हैं कि गर्दन अलग है, उसे अब अलग करने का कोई सवाल नहीं है, वह है ही अलग।
सिकंदर को खबर की गई। सिकंदर खुद गया। और उसने कहाः तुम भयभीत नहीं होते? यह तलवार देखते हो? उस संन्यासी ने कहाः भयभीत! जो भयभीत होता है उसको भी मैं देख रहा हूं, जो भयभीत कर रहा है उसको भी मैं देख रहा हूं। और मैं? मेरा कोई लेना-देना नहीं है। न भयभीत करने वाले से, न भयभीत होने वाले से। मैं दोनों को देख रहा हूं।
पता नहीं सिकंदर समझा या नहीं समझा। लेकिन उसने कहाः अच्छा होगा कि तुम मेरे साथ चलो, अन्यथा मैं तुम्हें खत्म करके जाऊंगा। उस संन्यासी ने कहाः तुम खत्म करो, बड़ा मजा होगा। तुम भी देखोगे कि गर्दन गिरी और मैं भी देखूंगा कि गर्दन गिरी, हम दोनों देखेंगे गर्दन को गिरते।
यह जो देखने वाला है भीतर, यह ध्यान है। यह जो देखने की क्षमता है, यह ध्यान है। यह जीवन को खड़े होकर जो भी हो रहा है उसको देखने की जो क्षमता है वह ध्यान है।
तीसरा सूत्र हैः ध्यान। जीवन को देखें। मन को देखें। जो हो रहा है उसको देखें। एक द्रष्टा हो जाएं। लड़ें न, निर्णय न करें, चुनें न, देखें, बस देखें।
लेकिन हमें तो देखना बहुत मुश्किल है। हम तो नाटक भी देखने जाते हैं
तो वहां भी भूल जाते हैं कि सिर्फ देखने वाले हैं, और यह भी भूल जाते हैं कि जो हो रहा है पर्दे पर, वह जो फिल्म के पर्दे पर घटित हो रहा है, वह सिर्फ बिजली का खेल है छाया और धूप का, वहां कोई है नहीं। वहां कोई दुख की घटना घटती है और देखें हॉल में। लोग एक-दूसरे से बचा कर आंसू पोंछ रहे हैं। देख लेते हैं आस-पास कि कोई देख तो नहीं रहा। और इसलिए सिनेमा में अंधेरा बड़ा सहयोगी होता है, अंधेरा बड़ा उपयोगी है। किसी दिन अगर सिनेमा प्रकाश में होने लगा तो इतना मजा नहीं देगा, क्योंकि बड़ा डर लगेगा कि कोई देख न ले। आंसू पोंछ रहे हैं लोग। क्या देख कर पोंछ रहे हैं आंसू? पर्दे को? और पर्दे पर चलती हुई विद्युत की किरणों की बनी छाया, धूप-छाया की रेखाओं को? वहां कोई भी तो नहीं है।
विद्यासागर एक नाटक देखने गए थे कलकत्ते में। और इतने उत्तेजित हो गए नाटक देख कर। एक आदमी है जो पीछे पड़ा है एक औरत के, उसे परेशान कर रहा है। आखिर में एक जंगल में, घने अंधकार में उसने उस स्त्री को पकड़ लिया है, वह

बलात्कार करने को है ही कि विद्यासागर भूल गए, छलांग लगा कर मंच पर चढ़ गए, निकाला जूता और मारने लगे उस पात्र को। उस पात्र ने विद्यासागर से ज्यादा बुद्धिमत्ता दिखाई। जूता हाथ में लेकर नमस्कार किया और लोगों से कहाः इतना बड़ा पुरस्कार अभिनय का मुझे कभी नहीं मिला। विद्यासागर जैसा बुद्धिमान आदमी अभिनय को समझ गया सच है। इस जूते को सम्हाल कर रख लूंगा। अब इसे मैं विद्यासागर जी आपको दूंगा नहीं। यह मेरा सबसे बड़ा पुरस्कार है। यह याद रहेगा कि कभी अभिनय ऐसा किया था कि सत्य मालूम पड़ गया। और विद्यासागर को भी लगा कि सच है। भूल गए कि नाटक हो रहा है।
साक्षी वहां भी हम नहीं रह पाते नाटक में, तो जिंदगी में कैसे रह पाएंगे? नाटक को हम ऐसा समझ लेते हैं कि जिंदगी है। और ध्यान करने वाले को जिंदगी ऐसी समझनी होगी जैसे नाटक है। ध्यान में जाने वाले को जानना होगा कि क्या है यह सब? किसी ने गाली दी है, तो क्या है? शब्दों की, कुछ ध्वनियों की टंकार। जो कान के पर्दों को हिला जाती हैं, और क्या है? और किसी ने जूता फेंक कर मार दिया और सिर पर लगा है जूता, तो क्या है? कुछ अणुओं का कुछ दूसरे अणुओं पर दबाव, और क्या है? कुछ अणुओं का कुछ और अणुओं पर दबाव, और क्या है? ध्यान वाले को जानना पड़ेगा। और किसी ने काट दी है गर्दन, तो गुजर गई है तलवार गर्दन से, आर-पार हो गई है। जगह थी वहां, इसीलिए आर-पार हो गई है। चीजें अलग थीं, इसीलिए अलग हो गई हैं। और क्या है?
ध्यान के प्रयोग में निरंतर जानना होगा कि है क्या? और खोज करनी पड़ेगी
और जागना पड़ेगा। और तब धीरे-धीरे बहुत अदभुत होगा और अदभुत के द्वार खुलने लगेंगे। साक्षी जैसे ही मन होता है वैसे ही वैसे एक अनुपम शांति, एक सन्नाटा, एक शून्य आने लगता है। बीच में जगह खाली स्पेस पैदा होने लगती है। आकाश बीच में आने लगता है। चीजें अपनी सचाई में दिखाई पड़ने लगती हैं। नाटक नाटक हो जाता है। और जब नाटक नाटक हो जाता है तब संभावना उतरती है उसकी जो सत्य है। जब तक नाटक सत्य है तब तक सत्य असत्य ही बना रहेगा। जब नाटक नाटक हो जाएगा, असत्य असत्य हो जाएगा। दि फाल्स इ.ज नोन एज दि फाल्स। जब हम भ्रामक को, मिथ्या को जान लेंगे मिथ्या है, तब उसकी प्रतीति, उसका उदघाटन, उसका वह जो सत्य है, वह जो मिथ्या नहीं है, वह उतरना शुरू होता है। ध्यान द्वार में प्रवेश है। लेकिन प्रभु में पहुंच जाना नहीं।
ध्यान द्वार में प्रवेश है। मैं आपके मकान में प्रविष्ट हो गया, लेकिन यह आपमें पहुंच जाना नहीं। और प्रभु मंदिर में पूर्ण प्रवेश तो जब प्रभु में हम एक ही हो जाएं, तभी संभव होता है।
तो तीसरा सूत्र हैः ध्यान, साक्षीभाव। इसमें द्वार खुल जाएगा। आप भीतर पहुंच जाएंगे। लेकिन फिर भी एक रुकावट है। प्रभु और है, आप और हैं। मंदिर में पहुंच गए, वह और है, आप और हैं। सत्य दिखाई पड़ा है। लेकिन सत्य वह रहा, आप यह रहे। अब यह फासला भी टूट जाए, तो ही सत्य को उसकी परिपूर्णता में जीया और जाना जा सकता है। अभी सत्य को देखा गया बाहर से, दूर से, अभी सत्य को पहचाना गया बाहर से, दूर से। अभी सत्य ही नहीं हो जाया गया है। सत्य को जानना ही नहीं है, सत्य को जीना भी है। सत्य को देखना ही नहीं है, सत्य हो जाना भी है। परमात्मा में पूर्ण प्रवेश स्वयं के परमात्मा हुए बिना नहीं हो सकता है। ध्यान के भी ऊपर उठना होगा।
कल चौथे सूत्र में हम ध्यान के भी पार चलें--समाधि।

मेरी बातों को इतनी शांति से सुना उससे अनुगृहीत हूं, और सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

प्रभु मंदिर के द्वार पर छठवां प्रवचन

साक्षीभाव है द्वार

मेरे प्रिय आत्मन्!
पिछली चर्चाओं के आधार पर मित्रों ने बहुत से प्रश्न पूछे हैं, एक मित्र ने पूछा है कि आप गांधी जी की भांति हरिजनों के घर में क्यों नहीं ठहरते हैं?

एक छोटी सी कहानी से समझाऊं। जर्मनी का सबसे बड़ा पादरी आर्च-प्रीस्ट
एक छोटे से गांव के चर्च का निरीक्षण करने गया था। नियम था कि जब भी वह किसी चर्च का निरीक्षण करने जाए, तो उस चर्च की घंटियां उसके स्वागत में बजाई जाती थीं। लेकिन उस गांव के चर्च की घंटियां न बजीं। जब वह चर्च के भीतर पहुंचा तब उसने उस चर्च के पादरी को पूछा, मेरे स्वागत में घंटियां बजती हैं हर चर्च की, तुम्हारे चर्च की घंटी क्यों नहीं बजी? उस पादरी की आदत थी कि वह कोई भी कारण बताए, तो उसका तकियाकलाम था, वह इसी से शुरू करता था, कि इसके हजार कारण हैं। उसने कहाः इसके हजार कारण हैं। पहला कारण तो यह कि चर्च में घंटी ही नहीं है। तो उस आर्च-प्रीस्ट ने कहाः बाकी कारण रहने दो, उनके बिना भी चल जाएगा, यह एक ही कारण काफी है।
मुझसे आप पूछते हैंः मैं हरिजन के घर क्यों नहीं ठहरता?
पहली तो बात यह कि मेरी दृष्टि में कोई हरिजन नहीं है। उसको ढूंढूं कहां? आदमी हैं, हरिजन नहीं हैं। गांधी जी की दृष्टि में हरिजन होंगे, इसलिए वे हरिजन का घर ढूंढ लेते हैं। यह ध्यान रहे, कि अछूत और शूद्र बड़े अच्छे शब्द थे, यह हरिजन बहुत खतरनाक शब्द है। अछूत और शूद्र में एक चोट थी, एक दर्द था, एक पीड़ा थी। अछूत और शूद्र अपने को कोई कहने में घबड़ाता था, बुरा मानता था। यह हरिजन बहुत खतरनाक शब्द है। इसे कहने में अकड़ मालूम पड़ती है, कि हम हरिजन हैं। बात वही है। बीमारी का नाम बदल देने से बीमारियां नहीं बदल जाती हैं। और जहर के ऊपर शक्कर लगा देने से सिर्फ मरने की सुविधा हो जाती है, खाने में आसानी हो जाती है और कुछ भी नहीं होता।
ये हरिजन जैसे शब्द बड़े खतरनाक हैं। किसी भी तरह से हरिजन को रिकग्निशन देना हरिजन को बचाने की तरकीब है। चाहे उसको गाली दो और चाहे सम्मान दो, और चाहे उसे छुओ मत और चाहे उसके घर ठहरने का आयोजन करो। लेकिन हरिजन की स्वीकृति, रिकग्निशन कि यह आदमी हरिजन है, छूने योग्य नहीं है या इसके घर ठहरना जरूरी है, बड़ी ऊंची बात है। दोनों स्थितियों में हरिजन बचता है और बचाया जाता है। हरिजन को मिटाना है, बचाना नहीं है।
लेकिन गांधी जी के साथ एक कठिनाई थी। बड़ी बीमारी के, वह हिंदू नाम की
जो बीमारी है, उसके वे बड़े प्रेमी थे। उसी बीमारी की यह छोटी संतति है। यह जो हरिजन है, यह जो शूद्र है, अछूत है, उसी बड़ी बीमारी की पैदाइश है। उस बड़ी बीमारी को तो वे बचाना चाहते थे और उसी बड़ी बीमारी के भीतर इस छोटी बीमारी के लिए भी कोई समझौते का रास्ता खोजना चाहते थे। सच तो यह है कि हिंदू, मुसलमान, ईसाई, ये सारी बीमारियां मिटनी चाहिए। और जो लोग हिंदू समाज के भीतर दुखी अनुभव करते हैं उन्हें हिम्मत जुटानी चाहिए कि वे कहें कि हम हिंदू नहीं हैं। क्या जरूरत है उन्हें हिंदू होने की? हिंदू होने ने उन्हें क्या दिया है? लेकिन अगर वे हिम्मत भी जुटाए कि हिंदू नहीं हैं, तो वे कहेंगे कि हम मुसलमान होते हैं, हम ईसाई होते हैं, हम बौद्ध होते हैं। एक जेल से छूटे नहीं कि वे फौरन पूछते हैं कि हम किस जेल में जाएं? अंबेदकर ने थोड़ी हिम्मत जुटाई और कहा कि छोड़ दो हिंदू धर्म! लेकिन हिम्मत पूरी नहीं है वह भी। अंबेदकर ने इधर हिम्मत जुटाई, तत्काल दूसरे जेल में भिजवा दिया। हो सकता है दूसरा जेल थोड़ा कंफर्टेबल हो। कंफर्टेबल जेल और खराब होते हैं। क्योंकि उनको छोड़ने का मन भी नहीं होता। हिंदू से हटो, बौद्ध हो जाओ, ईसाई हो जाओ, मुसलमान हो जाओ। वे भी सब पागल घर हैं। यह भी एक पागल घर है। हरिजनों को, अछूतों को, शूद्रों को मुक्त हो जाना चाहिए सब जेलों से। कह देना चाहिए, हम सिर्फ निपट आदमी हैं। और हम किसी के साथ

जुड़ते नहीं। लेकिन वे भी उत्सुक हैं कि उनको हरिजन माना जाए। वे भी बड़े उत्सुक हैं कि उनको सम्मान दिया जाए हरिजन होने का। अपमान उन्होंने काफी झेल लिया है, अब बदले में सम्मान चाहते हैं। लेकिन ध्यान रहे, अपमान हो या सम्मान हो, हरिजन होने से आदमी आप नहीं हो सकते हैं।
और इस समय दुनिया को आदमियों की जरूरत है। एक प्रयोग करना चाहिए कि हम कारागृह से बाहर होंगे। जब तक पृथ्वी पर इतने हिम्मतवर लोग कुछ इकट्ठे नहीं होते जो सब जेलखानों को इनकार कर दें और कहें कि हम बस सिर्फ आदमी हैं। और यह हिंदुस्तान की सरकार है, सिक्युलर कहलाती है अपने को, धर्म-निरपेक्ष कहलाती है। लेकिन यहां भी नौकरी के फार्म पर लिखा रहता हैः आपका धर्म क्या है? क्या पागलपन है! धर्म पूछने की जरूरत क्या है? एक आदमी का आदमी होना काफी है। स्कूल में भरती करो लड़के को, तो फार्म में लिखा रहता है कि धर्म क्या है? यह क्या पागलपन है! धर्म पूछने की क्या जरूरत है? आदमी होना काफी है।
सेंसेस होगा, मुल्क की मतगणना होगी, जनगणना होगी, उसमें भी भरा रहेगाः कौन किस धर्म को मानता है? फिर यह सब बेईमानी की सेक्यूलरिज्म है। यह कोई ठीक सेक्यूलरिज्म न हुआ। धर्म-निरपेक्ष होने का मतलब है कि हम इस देश में आदमी को सिर्फ आदमी मानते हैं। और हम कोई दूसरी सीमा और कोई विशेषण उसके ऊपर नहीं लगाते। अगर थोड़ी हिम्मत जुटाई जाए तो हिंदुस्तान आदमियों का समाज बन सकता है। लेकिन सब तरफ वही आदमी और आदमी के बीच दीवाल खड़े करने का बड़ा आग्रह है। गांधीजी ने कितनी मेहनत की जिंदगी भर कि हिंदू-मुसलमान एक हो जाएं। लेकिन पहले बीमारी को स्वीकार करते हैं। फिर एक करना चाहते हैं। पहले कहते हैं, हिंदू भी ठीक, मुसलमान भी ठीक। दोनों एक हो जाएं। दोनों गलत हैं। और दोनों के एक होने की जरूरत नहीं है। दोनों के मिटने की जरूरत है। वह दोनों मिटेंगे तो आदमियत एक होगी। दोनों एक नहीं हो सकते। हिंदू- मुसलमान एक नहीं हो सकते। उनका हिंदू होना, मुसलमान होना ही उनका अन्य होना है, अलग होना है, पृथक होना है। हिंदू होने में ही दुश्मनी छिपी है। मुसलमान होने में दुश्मनी छिपी है। हिंदू-मुसलमान दोनों मिट जाएं तो आदमियत एक हो सकती है। हिंदू-मुसलमान कभी एक नहीं हो सकते। अब मलेरिया- प्लेग एक हो जाएं तो फायदा थोड़ी ही होगा, और खतरा होगा। इनको मिटाने की जरूरत है। इनको एक करने की जरूरत नहीं। जिंदगी भर गांधीजी वही कोशिश करते रहे कि सब बीमारियों के साथ समझौते की उनकी आदत है। किसी बीमारी को मिटाने के लिए सीधा ख्याल नहीं है। वही शूद्रों और हरिजनों के साथ चला सिलसिला।

एक और मित्र ने पूछा हैः कि आपका शंकराचार्य वर्णाश्रम के संबंध में
जो कहते हैं, शास्त्र जो कहते हैं, उस संबंध में क्या मत है?

मेरा क्या मत होता है, यह भी पूछने की जरूरत है। मनुष्य को और मनुष्य
के बीच भेद डालने वाले सारे शास्त्र अपराधी हैं। मनुष्य और मनुष्य के बीच किसी भी तरह का ऊंच-नीच का विचार करने वाला कोई भी शास्त्र शोषकों के द्वारा लिखा गया होगा। वह किन्हीं ऋषि-मुनियों की बात नहीं हो सकती। और कोई भी, मनुष्य और मनुष्य के बीच, किसी भी तरह की ऊंच-नीच की धारणा को कायम रखना चाहता हो, तो वह क्रिमिनल है, वह अपराधी है। एक चोर के साथ जो हम व्यवहार करते हैं, एक हत्यारे के साथ हम जो व्यवहार करते हैं, उससे भी ज्यादा सजग इस तरह के अपराधियों के प्रति होना आवश्यक है। क्योंकि एक चोर क्या नुकसान पहुंचा सकता है? इधर का पैसा उठा कर इधर रख सकता है। और क्या फर्क कर सकता है? एक घर की चीज दूसरे घर में रख आ सकता है। एक हत्यारा क्या फर्क कर सकता है? एक आदमी जो दस-बीस साल बाद मरता उसे आज मार सकता है। लेकिन अगर कोई आदमी वर्ण-व्यवस्था जैसी बात की ताईद करता है और सिफारिश करता है, तो करोड़ों-करोड़ों लोगों के जीवन को नरक बनाने का जिम्मेवार ठहरता है। ऐसे आदमी, ऐसे विचार, ऐसे शास्त्र, सब अनादृत होने चाहिए। उनकी कोई जगह नहीं होनी चाहिए।
लेकिन यह मुल्क बहुत बेईमान है। शंकराचार्य पुरी के अगर कहेंगे, तो उनका विरोध किया जाएगा। लेकिन जिन शास्त्रों के आधार पर वे कह रहे हैं

उन्हीं शास्त्रों की पूजा चलती रहेगी। यह कैसा मुल्क है? ये कैसे लोग हैं? शंकराचार्य कहते हैं, तो उनका विरोध करते हैं आप, और जिन शास्त्रों के आधार पर वे कहते हैं उन शास्त्रों की पूजा जारी है। तो फिर समझ में आने वाला मामला नहीं दिखता। फिर कोई बेईमानी दिखती है। ऐसा दिखता है, कि समय की हवा बदल गई, इसलिए शंकराचार्य का विरोध भी करते हैं। लेकिन चित्त नहीं बदला। इसलिए शास्त्र की पूजा भी करते हैं। शंकराचार्य का क्या कसूर है? इतना ही कसूर हो सकता है कि उनके पास कोई अपनी बुद्धि नहीं मालूम पड़ती। शास्त्र ही उनकी बुद्धि है। और कोई कसूर नहीं मालूम पड़ता है। वे एक टेप-रिकार्डर मालूम होते हैं। शास्त्र में जो लिखा है, वह दोहराते हैं। उनका क्या कसूर है? लेकिन सारा मुल्क उन पर टूट पड़ा। और उन सारे शास्त्रों की पूजा जारी रहेगी, तो फिर यह उचित नहीं है। यह अन्यायपूर्ण है। यह ठीक नहीं है। शास्त्रों से मुक्त होने की जरूरत है। सच तो यह है कि अतीत से मुक्त होने की जरूरत है। क्योंकि उस अतीत ने ही यह सारी की सारी नासमझियां पैदा कीं। उस अतीत की जड़ें, वह जो बीत गया हमारा अतीत का इतिहास, उसमें इन सब रोग के कीटाणु हैं। उसको तो हम गौरव से गौरवान्वित करते हैं। उसका तो हम शोरगुल मचाते हैं पूरा। उसका तो हम चाहते हैं कि राम-राज्य फिर से आ जाए। राम-राज्य फिर से आ जाए तो फिर शंकराचार्य ठीक कहते हैं। फिर आप सब गलत कहते हैं।
अगर राम-राज्य फिर से आएगा, तो शूद्र होगा। और यह भी होगा कि कोई शूद्र वेद के वचन नहीं सुन सकेगा। और शूद्र अगर वेद के वचन सुन लेगा, तो उसके कान में शीशा पिघला कर डाला जाएगा। बिल्कुल डाला जाएगा। अगर राम-राज्य लाना है तो इसकी तैयारी रखना। या फिर राम-राज्य जैसी बेकार बातों में मत पड़ना। गया जो गया। वह अब नहीं लौटाया जा सकता है। न लौटाने की जरूरत है। लेकिन हमारे मुल्क का पूरा चित्त अतीत से बंधा है। और सारी बीमारियां जो अतीत ने दी हैं उनसे हम छूटना चाहते हैं और अतीत से छूटना नहीं चाहते। तो एक तरह की जीच, एक तरह की तनाव की स्थिति मुल्क के चित्त के सामने पैदा हो गई है। और यह ध्यान रहे, यह मत सोचना कि हम ऐसा कर सकते हैं कि अतीत का जो अच्छा है उसे बचा लें। और जो बुरा है उसे छोड़ दें। इसे थोड़ा समझ लेना।
हर समय एक आर्गनिक यूनिटी है। ऐसा नहीं है कि एक आदमी की आंखें बहुत प्यारी लगती हैं, तो आंखें बचा लो, बाकी आदमी को जाने दो। ऐसा नहीं हो सकता कि आदमी का हमें हृदय बड़ा प्यारा लगता है, तो हृदय बचा लें, बाकी हमको नहीं जंचता, जाने दें। आदमी एक आर्गनिक इकाई है, एक इकट्ठी इकाई है। हर युग, हर समय, हर सदी, हर शास्त्र, हर विचार, हर धर्म एक आर्गनिक यूनिटी है। अगर जाएगा तो पूरा जाएगा। अगर बचेगा तो पूरा बचेगा।
लेकिन हम इस मुल्क में यह कर रहे हैं कि हम कहते हैं जो गलत है उसे छोड़ दें, जो ठीक है, उसे हम बचा लें। लेकिन जिस चित्त से वह ठीक पैदा हुआ था उसी चित्त से वह गलत पैदा हुआ था। वह गलत और ठीक किसी एक ही चीज के दो हिस्से हैं। और इसलिए हम बड़ी मुश्किल में पड़े हैं। हम हमेशा यह ख्याल करते हैं कि कुछ अच्छा है, उसे बचाते चलें। जो बुरा है, उसे छोड़ते चलें। ऐसा नहीं होता। पिछली इकाई को छोड़ना होता है। नई इकाई को जन्म देना होता है। पिता मरता है तो ऐसा नहीं होता कि पिता की खोपड़ी बहुत अच्छी थी इसलिए बेटे की खोपड़ी अलग रखो, पिता की खोपड़ी जोड़ दो। पिता पूरा मरता है। बेटा पूरा पैदा होता है। हर युग को पूरा मरना चाहिए, ताकि हर नया युग पूरा पैदा हो सके। अगर पुराने युग में से कुछ बचाने की कोशिश चलती है तो नये युग के हाथ-पैर पंगु हो जाते हैं, वह पैदा नहीं हो पाते। हिंदुस्तान बहुत दिन से इस मुश्किल में पड़ा हुआ है। पुराना यहां मरता ही नहीं हैं, नये को जन्म की सुविधा नहीं। और वे जो पुराने के पक्षपाती हैं वे तो ठीक ही हैं, साफ हैं। लेकिन वे जो पुराने पक्षपातियों के विरोधी हैं, वे भी पुराने पक्षपाती हैं। इसलिए इस मुल्क के मस्तिष्क में साफ-साफ नहीं हो पाता कि हम क्या करें? क्या न करें?
जो लोग शंकराचार्य का विरोध करेंगे और कहेंगे, शंकराचार्य गलत कहते हैं, वह भी शास्त्रों को उठा कर यह सिद्ध करने की कोशिश करेंगे कि शास्त्रों में शूद्र नहीं है। लेकिन शास्त्रों में ही सिद्ध करने की कोशिश करेंगे। यह नहीं कहेंगे कि होगा शास्त्रों में, लेकिन शास्त्रों से

हमें प्रयोजन क्या? कोई ठेका ले लिया है शास्त्रों ने, सदा के लिए कि हम उनसे बंधे हैं? कोई मनु महाराज ने कोई ठेका ले लिया है कि अब आने वाली दुनिया कभी भी उनसे मुक्त नहीं हो सकेगी। मनु महाराज मर गए। उनका विचार भी मर जाना चाहिए। सब चीजें मरनी चाहिए अगर जिंदगी को जिंदा रखना है। जैसे आदमी बदलते हैं, वैसे ही समाज, शास्त्र, विचार सब बदलने चाहिए। सभ्यता को भी मरना सीखना चाहिए। और जो सभ्यता मरना नहीं सीखती, उसका नया जन्म होना बंद हो जाता है। सभ्यताएं भी मरती हैं। लेकिन इस देश में हमें यह ख्याल है कि हमारी सभ्यता कोई बहुत अदभुत बात है।
रोम मर गया, बेबीलोन मर गया, सीरिया मर गया, इजिप्त मर गया। हम? हम मरते ही नहीं। कहीं ऐसा तो नहीं है कि मरे-मराए हों इसलिए नहीं मरते हों। सिर्फ मरा हुआ नहीं मरता है। ध्यान रहे, मरे हुए आदमी को एक फायदा होता है, फिर नहीं मर सकता है। फिर मरने का सवाल ही नहीं है। जिंदा कौम मरती भी है, जन्मती भी है। जिंदगी का लक्षण है यह। युग मरने चाहिए, ताकि नये युग पैदा हो सकें। शास्त्र भी मरने चाहिए, ताकि नये शास्त्र जन्म ले सकें। विचारक भी विदा होने चाहिए, ताकि नये विचारक आ सकें। यह धारा बढ़नी चाहिए, रुक नहीं जानी चाहिए। लेकिन यह सब रुकी हुई है।
वे शंकराचार्य कहते हैं, हमारी किताब में यह लिखा है। उनका भी दावा किताब का है। उनके विरोधी कहते हैं कि नहीं, उस किताब का दूसरा मतलब है। लेकिन किताब के दोनों दावेदार हैं। ये दोनों दुश्मन हैं देश के। इनमें एक नहीं है दुश्मन। शंकराचार्य नहीं है, वह दूसरा भी है। क्योंकि वह यह कहता है, नहीं लिखा। लेकिन अगर सिद्ध हो जाए कि लिखा है, फिर वह भी राजी हो जाएगा। पर किताब से मुक्त होने की हिम्मत किसी की भी नहीं है।
यह क्या मामला है? क्या हमारे पास कोई बुद्धि सोचने वाली नहीं है जो
हम उधार बुद्धि से ही सोचते रहें। क्या ऐसा कुछ हो गया है कि संपूर्ण ज्ञान प्राप्त हो गया है, अब आगे कोई ज्ञान प्राप्त नहीं होना है? ज्ञान रोज आगे बढ़ेगा। और जो कौम तय कर लेगी कि हम अब आगे नहीं सोचेंगे वह कौम सड़ने लग जाएगी। और ध्यान रहे, सभ्यता जितनी पुरानी हो जाती है उतनी ही पाखंडी हो जाती है। नई सभ्यता में ताजगी होती है। नयापन होता है। ईमानदारी होती है। पुरानी सभ्यता बेईमान हो जाती है। उसका कारण है। अनुभव चालाक कर देता है।
एक बच्चा पैदा होता है। बच्चे में इनोसेंस होती है, निर्दोषता होती है, ताजगी होती है। वही बच्चा जब सत्तर साल के बाद बूढ़ा हो जाएगा तो चालाक हो जाता है। कनिंग हो जाता है। बूढ़ा आदमी और निर्दोष खोजना, जरा मुश्किल है। बच्चा और चालाक खोजना जरा मुश्किल है। और जो बच्चे और बूढ़े के संबंध में सच है वही नई सभ्यता और पुरानी सभ्यता के संबंध में सच है। यह हमारी पूरी सभ्यता चालाक हो गई है। इसके इतने अनुभव हैं कि अनुभवों ने इसे बेईमान कर दिया है। और अनुभवों का ढेर लगता चला जाता है। नई सभ्यताएं ताजी होती हैं। जिंदा होती हैं। ताकतवर होती हैं, कुछ करने की हिम्मत होती है। हममें कुछ भी करने की हिम्मत नहीं। शूद्र जैसी सड़ी और गिरी-गिराई चीज को भी गिराने की हिम्मत नहीं, उसको भी हम पूछते हैं कि कैसे गिराएं? उसको भी हम पूछते हैं कि शूद्र को कैसे मिटाएं? शूद्र को मिटाने के लिए क्या करना पड़ेगा? कुछ करना पड़ेगा। सिर्फ मुल्क सोच ले और शूद्र आज मिट गया? कुछ मिटाने के लिए कुछ उपाय करना पड़ेगा। शूद्र कोई टी. बी., कोई कैंसर है कि कोई इलाज करना पड़ेगा? सिर्फ मान्यता है। एक आदमी शूद्र है, सिर्फ यह मान्यता है। मान्यता को मिटाने के लिए भी कुछ करना पड़ेगा? सिर्फ मान्यता छोड़ देनी पड़ेगी। लेकिन वह मान्यता भी नहीं छोड़ पा रहे हैं। वह मान्यता भी नहीं मिट पा रही हैं। तो हद हो गई। शायद हम कुछ भी करने में समर्थ नहीं रह गए हैं। मैं किसी आदमी को नीचा-ऊंचा नहीं मानता हूं।

एक मित्र ने पूछा है कि ये शूद्र पैदा क्यों हो गए हैं? ये हरिजन पैदा क्यों हो गए हैं?

पैदा हो जाने का कारण है। दुनिया में वर्ग सदा से हैं, क्लासेस सदा से हैं। लेकिन वर्ण? वर्ण हिंदुस्तान की अपनी ईजाद है। वर्ण दुनिया में कहीं भी नहीं है। वर्ग सब जगह हैं--गरीब है, अमीर है, लेकिन शूद्र और ब्राह्मण और क्षत्रिय और वैश्य जैसा वर्ग कहीं भी नहीं है। वर्ण कहीं भी नहीं है। वर्ग का मतलब यह होता है कि कोई आदमी गरीब है; वह चाहे तो कल अमीर भी हो सकता है। कोई रुकावट नहीं है। फ्लूडिटि है एक, एक तरलता है। अमीर गरीब हो सकता है। गरीब अमीर हो सकता है। हिंदुस्तान ने एक बहुत चालाकी का काम किया है। उसने गरीबी और अमीरी के बीच फ्लूडिटि, जो तरलता थी, वह खत्म कर दी, और उसने निश्चित वर्ण पैदा कर दिए। वर्ण का अर्थ हैः ठोस हो गया वर्ग, जिसमें बदलाहट नहीं हो सकती, जम गया वर्ग, फ्रोजन क्लास। शूद्र को, गरीब को उसने कह दिया; दीन को, हीन को, उसने कह दिया कि बस, तू जम गया। अब तेरे भीतर से बदलाहट नहीं हो सकती। तू ऊपर नहीं जा सकता। ऊपर की क्लासेस को इससे फायदा हुआ क्योंकि नीचे की क्लासेस का काम्पिटीशन, प्रतियोगिता खत्म हो गई। हिंदुस्तान ने एक तरकीब ईजाद की प्रतियोगिता खत्म करने की। करोड़ों शूद्रों से प्रतियोगिता खत्म हो गई। अब उनके बेटे ब्राह्मणों के बेटों से संघर्ष न कर सकेंगे ऋषि होने का। अब उनके बेटे वैश्यों के बेटों से धनपति होने का संघर्ष न कर सकेंगे। अब उनके बेटे बहादुरों की तरह लड़ न सकेंगे, क्षत्रियों से संघर्ष न कर सकेंगे। एक बड़े वर्ग को, नीचे के विराट वर्ग को हमने बिल्कुल जमा दिया और द्वार बंद कर दिए, अब तुम कहीं आ-जा न सकोगे। ऊपर के वर्गों को लाभ हुआ। फिर क्रमशः हम जमाते चले गए। शूद्र के बाद वैश्य को हमने जमा दिया, और उससे कह दिया धन तेरी दुनिया है। इससे आगे तू नहीं बढ़ सकता है। यश और ज्ञान तेरी दुनिया नहीं। क्षत्रिय को कह दिया कि यश तेरी दुनिया है लेकिन ज्ञान तेरी दुनिया नहीं। और सबके ऊपर वह जो ज्ञानवान है, वह जो पंडित है, वह जो ब्राह्मण है, वह बैठ गया। ये वर्ग जमा दिए, इससे प्रतियोगिता खत्म हो गई और समाज जड़ हो गया। हिंदुस्तान को वर्ण से जितनी मृत्यु मिली, जितनी जड़ता मिली उतनी किसी और चीज से नहीं मिली। इसका फिर परिणाम अनंत रूपों से घातक हुआ।
हिंदुस्तान पर हमला हुआ। हिंदुस्तान पर हमला हुआ तो शूद्र ने कहा, हमें क्या मतलब है? शूद्र को क्या मतलब है? भंगी भंगी रहेगा, चाहे मुसलमान दिल्ली में बैठें कि हिंदू बैठें कि अंग्रेज बैठें। भंगी में क्या फर्क पड़ने वाला है? भंगी भंगी रहेगा। भंगी ने कहा, हमारा भाग्य तो तय है। तो कोई भी राजा हो, हमें क्या हानि है। हम तो अपने चलते चले जाएंगे। हम जो करते हैं, करते चले जाएंगे।
हिंदुस्तान की विराट जनता वर्णों के कारण हिंदुस्तान के जीवन में अरुचि से भर गई। विरागपूर्ण हो गई। हिंदुस्तान कभी गुलाम न होता अगर हिंदुस्तान में शूद्र न होते। हिंदुस्तान कभी गुलाम न होता अगर हिंदुस्तान में वर्ण न होते। हिंदुस्तान की वर्ण व्यवस्था ने हिंदुस्तान में ऐसे तबके बांट दिए कि एक आदमी को कोई जरूरत न रही चिंतित होने की। सिर्फ थोड़े से लोगों को, चिंता क्षत्रियों को थी कि हम अपने राज्य को बचाएं। बाकी पूरे देश को प्रयोजन न था। गरीब को क्या प्रयोजन है अमीरों के झगड़े से? कोई प्रयोजन नहीं है। वही तो अभी भी हो गया। फिर से वही हो गया। अंग्रेज हिंदुस्तान से गए। गरीबों ने सोचा था, हमें कुछ मिल जाएगा। फिर उनको पता चला, कुछ नहीं मिलता। अंग्रेज पूंजीपति बदल जाता है, हिंदू पूंजीपति उसकी जगह बैठ जाता है। गरीब अपनी जगह है। वह वहीं के वहीं हैं। उसे कोई फर्क नहीं पड़ता है।
अमीरों के झगड़े हैं, ऊपर के झगड़े हैं। नीचे के आदमी को क्या मतलब है?
यह हिंदुस्तान के हजारों वर्ष के शूद्रों की वर्ण-व्यवस्था की टूटने ऐसी स्थिति जमा दी कि हिंदुस्तान में कोई सामाजिक धारणा, कोई राष्ट्र, कोई नेशन, कोई भी पैदा नहीं हो सका। लेकिन जो लोग इनके विरोध में खड़े हैं, वे भी मौलिक आधारों के विरोध में नहीं हैं। गांधीजी चाहते थे कि अछूत मिट जाए, लेकिन गांधीजी कर्म के सिद्धांत के संबंध में एक शब्द भी विरोध में नहीं बोले। और शायद आपको ख्याल में भी न हो कि हिंदुओं ने जो व्यवस्था की है, हिंदुओं का दिमाग इतना सिस्टममेकर रहा है, उन्होंने इतनी व्यवस्था की है

सिद्धांतों की। सिद्धांतों के मुकाबले सिद्धांत बनाने के लिए हमसे बढ़िया लोग दुनिया में खोजने मुश्किल हैं। हम ऐसे गजब के सिद्धांत बनाते हैं। हम इतने कुशल हैं सिद्धांत बनाने में कि जिसका कोई हिसाब नहीं। शूद्र हमने ऐसे ही खड़ा नहीं कर दिया। हमने पूरी मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक पृष्ठभूमि बनाई है। हमारा कहना यह है कि जो आदमी जैसे कर्म करता है वैसा उसे जन्म मिलता है। शूद्र वे हैं जिन्होंने पाप किए हैं, वे शूद्र वर्ग में पैदा होते हैं। ब्राह्मण वे हैं जिन्होंने पुण्य किए हैं, वे ब्राह्मण वर्ग में पैदा होते हैं। पिछले जन्मों में जिन्होंने जैसे कर्म किए हैं उनके चार विभाजन, और उन चार विभाजनों में लोग पैदा होते हैं। इसलिए शूद्र भी बेचारा राजी हो गया। उसने कोई बगावत नहीं की। उसने कहा कि ठीक है, हमने पिछले जन्म में बुरे कर्म किए होंगे, इसलिए हम शूद्र हो गए हैं। अब अच्छे कर्म करेंगे तो अगले जन्म में ब्राह्मण हो जाएंगे। अगले जन्म की आशा में वह आज शूद्र होने को राजी हो गया। हिंदुस्तान का शूद्र राजी है, अगले जन्म की प्रतीक्षा कर रहा है। और हिंदुस्तान का दिमाग बेईमान है। जिसको भी राजी करवाना हो उसे अगले जन्म का प्रलोभन दे दो। वह राजी हो जाता है।
जब तक यह कर्म की विचार-सरणी न टूटे और जब तक हम इसकी पुनर्व्याख्या न करें तब तक शूद्र को मुक्त होना बहुत मुश्किल मामला है। और बड़ा मजा तो यह है कि जिससे उसे मुक्त होना है वह उसी से बंधने की पूरी कोशिश कर रहा है। विनोबाजी या गांधीजी उसको उन्हीं मंदिरों में ले जाने के लिए प्रवेश दिलवा रहे हैं, जिन मंदिरों से उसे मुक्त होना चाहिए। यह बड़े मजे की बात है। जिन हिंदू पुरोहितों से मुक्त होना है गांधीजी और विनोबाजी कह रहे हैं कि उन मंदिरों में शूद्र का प्रवेश होना चाहिए। यह बड़ी क्रांति की बात है कि मंदिर में शूद्र का प्रवेश हो! किसके मंदिर में? उसी मंदिर ने जिसने उसे शूद्र बनाया? उन्हीं पुरोहितों के मंदिर में जिन्होंने उसको हजारों वर्षों तक पीड़ित किया और शोषित किया?
मैं तो कहूंगा, एक शूद्र को किसी मंदिर में नहीं जाना चाहिए। अगर सारे ब्राह्मण पैर पड़ें तो भी नहीं जाना चाहिए। क्योंकि उस मंदिर में क्यों जाना जिस मंदिर ने तुम्हें तोड़ा और नष्ट किया और बरबाद किया और शोषण किया। लेकिन गांधीजी और उनके सब साथी कहते हैं कि मंदिर का द्वार खोलो। हम शूद्र को मंदिर में ले जाएंगे। यह बड़ी क्रांति हो रही है। शूद्र को मंदिर में ले जाने की। यह ब्राह्मण का ढीला पंजा जो हो रहा है उसको फिर कसे जाने की तरकीब है। फिर ब्राह्मण के हाथ में पहुंच जाएगा यह शूद्र उसके मंदिर में जाते ही। आज वर्ण टूटने के करीब आ गए हैं। व्यवस्था टूटने के करीब आ गई है। उसको फिर से नई शक्ल देकर, फिर उसको उसी व्यवस्था के भीतर रखने की कोशिश चल रही है। डर है कि कहीं शूद्र हिंदुओं के बाहर न चला जाए।
लेकिन शूद्र को हिंदू के भीतर रहने की जरूरत क्या है? सच तो यह है किसी
को भी हिंदू होने की जरूरत क्या है? किसी को मुसलमान होने की जरूरत क्या है? आदमी होना पर्याप्त है। और जिसको आदमी होना पर्याप्त नहीं मालूम होता वह हिंदू या मुसलमान होने से कुछ और विकसित नहीं हो जाएगा? आदमी होना काफी है। हिंदुस्तान में एक क्रांति की जरूरत है कि शूद्र तो कह ही दें कि अब हम हिंदू नहीं हैं। लेकिन बहुत से वे लोग जो शूद्र नहीं हैं और बुद्धिमान हैं, वे भी कह दें कि हम हिंदू नहीं हैं। और बहुत से वे लोग जो बुद्धिमान हैं, कह दें कि हम मुसलमान नहीं हैं। बहुत से वे लोग जो बुद्धिमान हैं, कह दें कि हम जैन और ईसाई नहीं हैं, हम आदमी हैं। और अगर हमें खोज लगनी है सत्य की। अगर हमें प्रभु को खोजना है, तो हम खोजेंगे। लेकिन हिंदू के मंदिर में नहीं, मुसलमान के मंदिर में नहीं। इतनी बड़ी दुनिया उसका मंदिर है, हम यहीं खोजेंगे। हम क्यों किसी मंदिर की बंद दीवालों के भीतर जाएं, इतना विराट मंदिर है उसका, हम इसका दर्शन यहीं करेंगे। लेकिन इसकी हिम्मत शूद्र भी नहीं पाते हैं।े वे भी कहते हैं, हम हरिजनों को अधिकार दो, हम हरिजनों को जगह दो, मंदिर का द्वार खोलो, हम भीतर प्रवेश करेंगे। तुम किससे अधिकार मांगते हो? और ध्यान रहे, अधिकार मांगने वाले कभी भी स्वतंत्र नहीं हो सकते? अधिकार मांगने वाले कैसे स्वतंत्र हो सकते हैं। जिनसे अधिकार मिलेंगे, वे उनके परतंत्र बने ही रहेंगे। और जिन्होंने हजारों वर्षों तक दिमागी

सांचे बना कर आदमी को कसा है वे इतने होशियार हैं कि वे नये सांचे बना लेंगे और फिर कस लेंगे।
नहीं, सब जाल तोड़ कर बाहर आने की जरूरत है। किसी हिंदू मंदिर में किसी शूद्र को जाने की जरूरत नहीं है। और किसी शूद्र को अपने को हरिजन कहने की जरूरत नहीं है। आदमी कहना काफी है। तो मुझसे मत पूछें कि मैं हरिजन के घर में क्यों नहीं ठहरता? मैं घर में ठहरता हूं। हरिजन और गैर-हरिजन से मुझे कोई मतलब नहीं है। आप आ जाएं और मुझसे कहें कि चलें मेरे घर, वहां मैं ठहर जाऊंगा, लेकिन अगर जरा भी आपको भ्रम हो और आप प्रचार करें कि हरिजन के घर में ठहरा हूं, तो ऐसे पागलपन में मैं नहीं जाने को राजी होऊंगा। यह पागल-घर है। आदमी का घर होता है। मैं मेहमान बन सकता हूं आदमी का, हरिजन वगैरह से मुझे कोई मतलब नहीं है। हजार कारण हो सकते हैं, लेकिन एक ही कारण काफी है।

एक मित्र ने पूछा है कि विचार छोड़ दें, कैसे छोड़ दें? विचार छूटेगा कैसे? सुबह आपने कहा कि विचार छोड़ दो और निर्विचार हो जाओ, लेकिन विचार कैसे छोड़ दें?

इसे थोड़ा समझना उपयोगी है। मैं यह मुट्ठी बांधे हुए हूं और आपसे आकर पूछूं कि यह मुट्ठी मुझे खोलनी है, कैसे खोलूं? तो आप क्या कहेंगे? आप कहेंगे, बांधो मत, मुट्ठी खुल जाएगी। बांधो मत, खोलने के लिए कुछ भी नहीं करना पड़ता है। बांधने के लिए कुछ करना पड़ता है। बांधने के लिए मुझे श्रम करना पड़ रहा है। मुट्ठी अगर मैं न बांधूं तो मुट्ठी खुल जाएगी। खुला होना मुट्ठी का स्वभाव है। इसमें दो बातें समझ लेनी जरूरी हैं। एक, विचार हम कर रहे हैं, पकड़े हुए हैं इसलिए चल रहा है। तो यह मत पूछें कि हम विचार को कैसे छोड़ें? यह पूछें कि हम विचार को कैसे पकड़े हुए हैं? और पकड़ने की तरकीब ख्याल में आ जाए, तो छूटना अपने आप हो जाएगा। हम पकड़े कैसे हुए हैं? पकड़ने की तरकीब हैः तादात्म्य, आइडेंटिटी। हम प्रत्येक विचार के साथ अपना तादात्म्य कर लेते हैं। क्रोध आया और आप कहते हैं कि मुझे क्रोध आ गया। आप फासला नहीं कर पाते कि मैं अलग हूं और क्रोध अलग है। एक विचार भीतर चल रहा है और आप उस विचार के साथ एक हो जाते हैं, और लगता है, यही मैं हूं। कभी आपने ख्याल किया कि आप सदा पृथक हैं। आपके विचार अलग चल रहे हैं। आकाश में एक नीला बादल उड़ा जा रहा है। आप देख रहे हैं, आप यह कहते हैं कि मैं नीला बादल हूं? आप कहते हैं, वह नीला बादल रहा--देखने वाला मैं हूं।
मन के आकाश पर एक विचार चल रहा है। आप फौरन कहते हैं कि यह मैं हूं। झंझट में पड़ गए। मन के आकाश पर विचार उतनी ही दूरी पर चल रहा है आपसे जितना उस आकाश पर एक बदली का टुकड़ा चल रहा है। आप फिर भी अलग हैं। आप दूर खड़े साक्षी से ज्यादा नहीं हैं। यह हमें स्मरण करना होगा निरंतर कि विचार से मैं पृथक हूं, अलग हूं। और कोई विचार से मैं जुड़ा हुआ नहीं हूं। लेकिन हम? हम विचार से अपने को जोड़ने की आदत के इतने आदी हो गए हैं कि हमें ख्याल ही नहीं आता। जब क्रोध आता है, तो बजाय इसके कि आप यह कहें कि मेरे सामने क्रोध आ गया है, आप कहते हैं, मैं क्रोधी हो गया हूं। आप गलत कहते हैं। जब आपके सामने सुख आ जाए तो बजाय यह कहने के कि मेरे सामने सुख आ गया, आप कहते हैं, मैं सुखी हो गया हूं। अगर आप सुखी हो गए हैं तो अब कभी दुखी न हो सकेंगे? लेकिन हम जानते हैं कि सुख चला जाएगा, दुख आ जाएगा।
एक कमरे में मैं सुबह बैठ जाऊं। सूरज निकले, किरणें भर जाएं, तो मैं यह नहीं कहता कि मैं प्रकाश हो गया हूं। मैं कहता हूं, कमरे में प्रकाश भर गया है, मैं प्रकाश को देख रहा हूं। फिर सांझ आती है, अंधेरा भर जाता है, मैं कहता हूं कि मैं अंधेरा हो गया हूं? मैं कहता हूं, अब अंधेरा भर गया, अब मैं अंधेरे को देख रहा हूं। प्रकाश, अंधेरा कमरे में आता-जाता है, मैं दृष्टा हूं, देखता हूं। मन में विचार आते-जाते हैं, सुख-दुख आते-जाते हैं, क्रोध, प्रेम, घृणा आते-जाते हैं, भाव आते हैं, जाते हैं और वह जो बैठा हुआ है भीतर, वह हरेक के साथ कहने लगता है कि यह मैं हो गया हूं। तब पकड़ शुरू हो जाती है। तब क्लिंगिंग शुरू हो जाती है। फिर मुक्त होना बहुत मुश्किल हो जाता है।

इसलिए मैंने सुबह कहा, ध्यान का अर्थ हैः साक्षीभाव। मैं देखूं, जो आ रहा है।
एक सम्राट ने अपने वजीरों को कहा कि मैं तुमसे एक ऐसा सूत्र चाहता हूं
जो मुझे हर स्थिति में काम दे सके। सुख आए तो काम दे, दुख आए तो काम दे। मुझे एक सूत्र ताबीज पर लिख दो जो हर स्थिति में काम दे। वजीर बड़ी मुश्किल में पड़ गए। क्या लिखें? ऐसा कौन सा सूत्र है जो हर जगह काम दे। फिर उन्होंने एक फकीर को पूछा। फकीर ने एक ताबीज दे दिया और उसमें एक कागज की पुड़िया लिख कर रख दी। और कहा कि जब सुख-दुख आए, इसे खोल कर पढ़ लेना। राजा पर सुख आया, उसने ताबीज खोला। दुख आया, ताबीज खोला। उसमें सिर्फ एक छोटा सा वाक्य लिखा था, लिखा थाः दिस टू विल पास। यह भी चला जाएगा। इतना ही लिखा था उस कागज पर, दिस टू विल पास। सुख आया, राजा ने पढ़ा, यह भी चला जाएगा। और राजा पृथक हो गया। क्योंकि जो चला जाएगा वह मैं नहीं हो सकता हूं। मैं तो बच रहूंगा। फिर दुख आया और राजा ने पढ़ा, यह भी चला जाएगा, और राजा अलग हो गया। क्योंकि जो चला जाएगा वह तो मैं नहीं हूं। मुझ पर चीजें आती हैं, जाती हैं, मैं तो अलग हूं। इस पृथकता को खोजना ही साक्षीभाव है।
तो यह मत पूछें कि हम विचार को कैसे रोकें। रोकने की कोई जरूरत नहीं है। विचार को आने दें, जाने दें, आप पृथक हो जाएं, आप अलग हो जाएं, आप भिन्न हो जाएं। आप जान सकें कि मैं अलग हूं, तो विचार धीरे-धीरे अपने आप विसर्जित हो जाते हैं। उन पर पकड़ छूट जाती है। फिर वही रह जाता है जो है, अकेला। उस अकेले में जो अनुभव होते हैं निर्विचार के, वे ध्यान के अनुभव हैं।
लेकिन हम क्या करते हैं, हम विचार से लड़ते हैं। लड़ कर तो आप कभी विचार
को अलग नहीं कर सकते। ध्यान रहे, लड़ना तो बुलाने का उपाय है। अगर किसी विचार से आप लड़े और आपने कहा, इसे मैं अलग करके रहूंगा। बस फिर आप मुश्किल में पड़ जाएंगे। फिर उस विचार से कभी आप मुक्त न हो सकेंगे। आप जितना लड़ेंगे उतना ही वह आएगा। क्योंकि जितना आप लड़ेंगे उतना ही आप मान रहे हैं कि मैं उससे एक हूं। नहीं तो लड़ेंगे क्यों, लड़ने की क्या जरूरत है? वह अलग है। मैं अलग हूं। वह आया है, चला जाएगा। मुझे क्या प्रयोजन है? लेकिन हम लड़ते हैं।
मैंने सुना है, तिब्बत में एक फकीर था। उसके पास एक आदमी आया। और उसने कहा, मुझे एक मंत्र दे दें। मैं कोई सिद्धि करना चाहता हूं। फकीर ने कहाः मेरे पास कोई मंत्र नहीं। लेकिन नहीं माना वह व्यक्ति, पैर पकड़ लिए, हाथ जोड़ने लगा, दे ही दें। तो उस फकीर ने एक कागज पर एक मंत्र दे दिया और कहा, इसे पांच बार पढ़ लेना। फिर तो वह आदमी भागा। उसने लौट कर धन्यवाद भी न दिया। वह मंदिर की सीढ़ियां उतरता था, तब वह फकीर चिल्लाया कि ठहरो, मैं एक बात भूल गया, एक शर्त बताना भूल गया। ध्यान रहे, बंदर का स्मरण न आए जब तुम यह मंत्र पढ़ो। अगर बंदर का स्मरण आया, मंत्र बेकार हो जाएगा। बंदर दुश्मन है इस मंत्र का। उस आदमी ने कहा, मुझे कभी बंदर का स्मरण जिंदगी हो गई नहीं आया। इसकी फिकर मत करो। लेकिन भूल हो गई। पूरी सीढ़ियां उतरना भी मुश्किल हो गया। बंदर का स्मरण शुरू हो गया।
रास्ते पर घर की तरफ चला और बंदर चारों तरफ मन में घूमने लगे। बहुत आंख बंद करता है, बंदरों को भगाता है, लेकिन बंदर जोर से आते हैं। घर पहुंचा। स्नान करता है, लेकिन बंदर तो घिरते चले जाते हैं। रात हो गई। मंत्र लेकर बैठता है, हाथ में मंत्र है, लेकिन भीतर बंदर हैं। तो घबड़ा गया। उसने कहाः, इन बंदरों से कोई संबंध कभी नहीं रहा, आज क्या हो गया है? क्या ये बंदर पांच मिनट के लिए भी न रुकेंगे? रात भर मुश्किल हो गई। लेकिन पांच मिनट के लिए बंदर से छुटकारा नहीं। सुबह तो पागल हो गया। जाकर मंत्र वापस लौटा दिया उस फकीर को और कहाः क्षमा करो, अगले जन्म में हो सकती है अब यह सिद्धि। फकीर ने कहाः क्यों, क्या बात है? उसने कहाः वह बंदर जान लिए ले रहे हैं। और अब उनसे छुटकारा इस जन्म में नहीं हो सकता। और तुम्हें अगर मालूम था कि बंदर से बाधा है, तो एक दिन रुक जाते, बाद में बता देते, तो यह सिद्ध हो जाता मंत्र। अब यह नहीं हो सकेगा। उस फकीर ने कहाः मैं क्या कर सकता हूं, यही शर्त है। यह शर्त पूरी करनी जरूरी है।

क्या हो गया उस आदमी को, बंदर से छुटकारा नहीं होता। जिस विचार से हम लड़ते हैं, उस विचार पर हम केंद्रित हो जाते हैं। जिस विचार से हम लड़ते हैं उस विचार से हम हिप्नोटाइज्ड हो जाते हैं। जिस विचार से हम हटना चाहते हैं, सारा चित्त उसी पर केंद्रित हो जाता है। किसी को भुलाने की कोशिश करो, फिर मुश्किल हो जाएगी। वह नहीं भूलेगा। प्रेमियों से पूछो, प्रेमिकाओं को भुलाने की कोशिश बहुत मुश्किल हो जाती है। जिनको नहीं भुलाना, वे भूल जाते हैं। जिनको भुलाना है, वे कभी नहीं भूलते। चित्त की आदत है। जिससे लड़ोगे, चित्त वहीं केंद्रित हो जाएगा। एक नया-नया आदमी साइकिल सीखता है। रास्ते पर एक पत्थर पड़ा है। इतना बड़ा रास्ता है, साठ फीट चौड़ा, लेकिन वह पत्थर उसे दिखा कि वह डरता है, कहीं पत्थर से न टकरा जाऊं। अब अगर कोई निशानेबाज भी साठ फीट रास्ते पर पत्थर से टकराना चाहे तो चूकने की संभावना ज्यादा है। लेकिन ये सज्जन टकराएंगे। ये नहीं बच सकते। साठ फीट रास्ता अब इनको दिखाई न पड़ेगा। अब इनको वह पत्थर ही दिखाई पड़ेगा। अब इनका चाक घूमा और इनके प्राण घबड़ाए और ये हिप्नोटाइज्ड हुए उस पत्थर से। अब इनकी साइकिल चली उस तरफ। ये उससे टकराएंगे।
आदमी जिससे बचना चाहता है उसी से टकरा जाता है। आदमी जिससे भागना चाहता है उसी से घिर जाता है। पूछो ब्रह्मचारियों से, सिवाय स्त्रियों के और किसी का दर्शन नहीं होता। हो ही नहीं सकता। अगर भगवान भी प्रकट होंगे तो स्त्री की शक्ल में ही प्रकट होंगे। और किसी शक्ल में वे प्रकट नहीं हो सकते। ब्रह्मचारी का कष्ट है बेचारे का, वह सेक्स से लड़ रहा है और सेक्स से घिर गया है। इसीलिए तो ऋषि-मुनि स्त्रियों के लिए इतनी नाराजगी जाहिर करते हैं। यह नाराजगी किसके लिए है? वे जो स्त्रियां उनको घेर लेती हैं, उनके लिए। असली स्त्रियों के लिए नहीं। असली स्त्रियों से क्या मतलब है? ऋषि-मुनि कहते हैं, स्त्रियां नक का द्वार है। स्त्री से बचो। यह किससे बचने के लिए कह रहे हैं? वह जो भीतर स्त्री उनको घेरती है। और घेरती क्यों है? स्त्री से भागते हैं इसलिए स्त्री घेरती है। जिससे भागोगे, वह घेर लेगा। जिससे बचोगे, वह पकड़ लेगा। जिसको हटाओगे, वह आ जाएगा। जिसको कहोगे, मत आओ, वह समझ जाएगा कि डर गए हो। आना जरूरी है। वह आ जाएगा।
चित्त से लड़ना, चित्त के विचार से लड़ना आत्मघातक है। फिर वही उलझन हो जाएगी। इससे बचना जरूरी है। बचेंगे कैसे? बचने के लिए आवश्यक है कि विचार से लड़ो ही मत। सेक्स से मुक्त होना हो, तो सेक्स से लड़ो मत, साक्षी बनो। क्रोध से मुक्त होना हो, लड़ो मत, साक्षी बनो। जिससे मुक्त होना हो, उसे देखो और जानो कि मैं पृथक हूं, वह पृथक है। दूरी है, फासला है। दोनों के बीच अनंत फासला है। मैं अलग हूं, वह अलग है। और सच्चाई यही है। और जितनी यह स्पष्टता गहरी होगी कि मैं अलग हूं, उतनी हंसी आएगी कि मैं किससे लडूं। जिससे कोई झगड़ा ही नहीं, जिससे कोई संबंध नहीं, उससे लड़ने की जरूरत क्या है? और तब जिससे लड़ना बंद हो जाता है, जैसा मैंने कहा, लड़ने से आती है कोई चीज, न लड़ने से जाने लगती है। न लड़ने से जाने लगती है। ब्रह्मचर्य सेक्स से लड़ने से नहीं आता। सेक्स के प्रति जागने से सेक्स चला जाता है। जो शेष रह जाता है, उसका नाम ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य सेक्स से उलटा नहीं है। ब्रह्मचर्य सेक्स के विदा हो जाने का अभाव है। वह जो शेष रह जाता है सेक्स के चले जाने पर। लेकिन सेक्स से लड़ कर कोई ब्रह्मचारी नहीं हो सकता।
मुझे साधु-संन्यासी मिलते हैं, जब वे सबके सामने होते हैं तब वे आत्मा-परमात्मा की बात करते हैं। फिर वे कहते हैं, अकेले में मिलना है। और जब अकेले में मिलते हैं तो सिवाय सेक्स के दूसरी बात ही नहीं करते। असली सवाल तो वही है। सबके सामने पूछ भी नहीं सकते। क्योंकि सबको तो वे सुबह से सांझ तक यही बातें सिखा रहे हैं, जो उनको ही नहीं हो सकी हैं। और होंगी भी नहीं। क्योंकि विधि ही गलत है, मेथड ही गलत है। अज्ञानपूर्ण है। अ-मनोवैज्ञानिक है। खतरनाक है। असंगत है। उसकी कोई संगति नहीं है जीवन के परिवर्तन और रूपांतरण से। लड़ने की संगति है, झगड़े की संगति है।
गांधीजी के आश्रम में रामायण पढ़ी जाती थी। तो एक प्रसंग आता है--वह सबको पता है प्रसंग कि सीता को रावण लेकर भाग गया है। भागते में सीता ने अपने गहनें फेंक दिए मार्ग पर। राम खोजते निकलेंगे तो गहनों से पता चल सके

कि सीता किस रास्ते से चुरा कर ले जाई गई है। गहने मिल गए हैं। राम-लक्ष्मण खोजते गए हैं। गहनें मिल गए हैं। लेकिन राम इतने दुख में हैं, शोक में हैं कि उनकी आंखें इतनी आंसुओं से भरी हैं कि वे गहनों को पहचान नहीं पाते। और सच तो यह है कि कोई पति अपनी पत्नी के गहने नहीं पहचान पाएगा। पत्नी के गहने पहचानना बहुत मुश्किल है। पत्नी को कोई देखता ही नहीं है इतने गौर से कि उसके गहने पहचाने जा सकें। पड़ोस की पत्नी ने क्या गहने पहने हैं, यह पहचाने जा सकते हैं। राम को भी नहीं समझ में आते कि ये गहने सीता के हैं। तो लक्ष्मण से पूछते हैं कि ये गहने तू पहचानता है? लक्ष्मण कहता है, गहने! मैं सिर्फ पैर के गहनें पहचानता हूं, क्योंकि रोज-रोज पैर पड़ता हूं तो पैर के गहने पहचानता हूं। बाकी गहनों का मुझे कुछ पता नहीं। गांधीजी कहते हैं, यह कैसे हुआ होगा कि लक्ष्मण इतने दिनों से साथ है, वह सीता के गहने नहीं पहचानता? तो विनोबा ने कहा कि इसका कारण है, लक्ष्मण ब्रह्मचर्य धारण किए हुए है। वह सीता का मुंह नहीं देखता, वह सीता के ऊपर नहीं देखता, वह सिर्फ पैर पर ही नजर रखता है। वह ब्रह्मचारी है। गांधीजी को यह व्याख्या जंच गई। और उन्होंने कहाः विनोबा बड़ी ठीक व्याख्या करते हैं। मैं बहुत हैरान हुआ यह व्याख्या पढ़ कर। अगर विनोबा की व्याख्या ठीक है तो लक्ष्मण ब्रह्मचारी नहीं, व्यभिचारी सिद्ध होता है। क्योंकि जो लक्ष्मण सीता के चेहरे की तरफ देखने से डरता हो, वह ब्रह्मचारी है?
सीता के भी चेहरे को देखने से जो डरता हो वह ब्रह्मचारी है? यह ब्रह्मचर्य का अर्थ हुआ? यह ब्रह्मचर्य का अर्थ नहीं हुआ। यह तो अत्यंत कामुक चित्त का अर्थ हुआ। सीता के चेहरे पर भी देखने में जहां भय हो!
भय का अर्थ क्या है? भीतर कहीं कोई वासना है, तो भय है। नहीं तो भय क्या है सीता के चेहरे में? नहीं, लक्ष्मण इसलिए नहीं पहचान पाया दूसरे गहनों को कि उसने सीता का चेहरा नहीं देखा। पैर के गहने पहचान सकता है। निश्चित रोज पैर पड़े होंगे, वह परिचित रहे होंगे। यह दूसरी बात है। लेकिन यह कहना कि वह इसलिए नहीं पहचान पाया कि उसने ऊपर कभी देखा नहीं सीता को, क्योंकि वह ब्रह्मचर्य की साधना कर रहा था। तो वह बड़े गलत ब्रह्मचर्य की साधना करता था लक्ष्मण।
अगर विनोबा ठीक कहते हैं, तो वह बड़ी गलत ब्रह्मचर्य की साधना कर रहा था। और उस ब्रह्मचर्य की साधना में बड़ी मुश्किल में पड़ा होगा, जैसे ब्रह्मचारी पड़ते हैं। और जो सीता के चेहरे को देखने से डरा होगा तो सपने में सिवाय सीता के चेहरे के और कुछ भी नहीं देखा होगा।
नहीं, लेकिन लक्ष्मण पर यह बात, व्याख्या थोपनी ही गलत है। यह व्याख्या ही गलत है। लक्ष्मण को पैर के गहनें पहचान गए होंगे क्योंकि रोज उसने पैर पड़े होंगे। वे गहनें परिचित थे। इसका यह मतलब नहीं कि उसने और गहनें न देखें होंगे, चेहरे की तरफ न देखा होगा। लेकिन हमारा तथाकथित ब्रह्मचर्य इसी तरह एस्केपिस्ट है, भागने वाला है। वह कहता है, भाग जाओ, देखो मत। वह डराने वाला है। फियर है वहां। और जहां भय है, जहां भागना है, जहां पलायन है, जहां आंख बंद करना है। ध्यान रहे, जिससे आंख बंद होगी, वही आंख के भीतर खड़ा हो जाता है। फिर उससे छुटकारा बहुत मुश्किल है।
इसलिए मैं कहता हूं, चित्त के किसी भी विकार से, चित्त की किसी भी विकृति से, चित्त के किसी भी विचार से, चित्त की किसी भी प्रवृत्ति से कभी मत लड़ना। भूल कर मत लड़ना। लड़े कि हारे। हारना हो तो लड़ना। जो लड़ेगा वह हारेगा। उसकी हार सुनिश्चित है। अपने चित्त से लड़ कर कोई कभी जीत नहीं सकता। हां, अगर जीतना हो तो लड़ना मत। देखना, जानना, साक्षी बनना। और जैसे ही साक्षी बनोगे, पाओगे कि मैं तो बाहर हूं। मैं तो बियांड हूं। मैं तो जो दिखाई पड़ रहा है उससे अलग और दूर हूं। वह जो चारों तरफ घिरा है धुआं, वह अलग है, मैं अलग हूं। सूरज के चारों तरफ अंधेरा घिर जाए तो भी सूरज अंधेरा नहीं है, लेकिन अगर सूरज अंधेरे से लड़ने लगे और अंधेरे पर ही ध्यान केंद्रित करने लगे और कहने लगे कि मरा, गया, यह अंधेरा मुझे घेर रहा है, अंधेरा हुआ जा रहा हूं मैं, तो सूरज मुश्किल में पड़ जाएगा। लेकिन अगर सूरज जाने कि ठीक है, अंधेरा वह है, मैं तो सूरज हूं, मैं तो अलग हूं। घिरने दो अंधेरे को।

कितना ही अंधेरा निकट आ जाए, फिर भी मैं सूरज हूं। कितना ही अंधेरा पास आ जाए, फिर भी मैं अलग हूं। फिर भी प्रकाश और अंधेरे के बीच फासला अनंत है। यह प्रत्येक के भीतर जो साक्षी है, जो चेतना है, जो कांशसनेस है, उसे सजग करने से, जागने से, साक्षी बनने से विचार विसर्जित होते हैं। वृत्तियां विसर्जित होती हैं। मन विसर्जित होता है। और धीरे-धीरे वह जगह आती है जहां चित्त का आकाश खाली हो जाता है और सिर्फ चेतना रह जाती है। वह साक्षीभाव के लिए सुबह मैंने कहा हैः यह मत पूछें कि कैसे लड़ें? यह मत पूछें कि कैसे विचारों को निकालें? यह मत पूछें कि कैसे विचारों को बंद करें? यह पूछें ही मत। यह पूछना ही गलत है। यह पूछें कि कैसे जागें? कैसे देखें? कैसे पहचानें? कैसे साक्षी बनें? वह मैंने सुबह कहा, कल सुबह हम और बात करेंगे।

एक-दो छोटे प्रश्न और हैं।
एक मित्र ने पूछा है कि आप पहले तो बहुत सौम्य, मृदु-भाषा में बोलते थे। अब आप बहुत एग्रेसिव, बहुत आक्रामक क्यों हो गए हैं?

वह मेरी गलती थी सौम्य और मृदु-भाषा में बोलना। और सौम्य और मृदु-भाषा में बोल कर मैंने देखा, वह मेरी गलती थी। गलती इसलिए थी कि यह समाज सौम्य और मृदु-भाषा पसंद करता है, क्योंकि सौम्य और मृदु-भाषा किसी को कोई चोट नहीं पहुंचाती। कोई परिवर्तन नहीं लाती। सौम्य और मृदु-भाषा सुखद है, मनोरंजक है, लेकिन जीवन को कहीं बदलती नहीं। अब तो दुनिया में ऐसे लोग चाहिए जो भीतर चाहे कितने ही सौम्य और मृदु हों, जो बाहर आक्रामक हो सकें, बाहर एग्रेसिव हो सकें, तो इस जिंदगी की कुरूपता को बदला जा सकेगा, अन्यथा नहीं बदला जा सकता है। दुनिया में बहुत अच्छे आदमी हुए। और कठिनाई यही रही कि अच्छा आदमी सौम्य और मृदु था। इसलिए दुनिया बुरी है। अच्छा आदमी सौम्य और मृदु रहेगा दुनिया बुरी रहेगी। अच्छे आदमी को भी हिम्मत जुटानी पड़ेगी। जीसस चर्च में गए। जीसस के मित्र उन्हें जानते थे। बहुत सौम्य और मृदु हैं। लेकिन वहां उन्होंने देखा कि चर्च के बाहर ब्याजखोर बैठे हुए हैं, और जन्मों से चल रहा है ब्याज लोगों का, और नहीं चुकता। जीवन बीत गए हैं बूढ़ों के, और जितना कर्ज उन्होंने लिया था उससे कई गुना वे चुका चुके, और वह नहीं चुकता। और मंदिर के सामने ही ब्याजखोर बैठे हैं। वे सब ब्याजखोर पुरोहितों के एजेंट हैं। जीसस ने कोड़ा उठा लिया। उठा कर कोड़ा उन्होंने दुकानें उलट दीं, कोड़े मारने शुरू कर दिए। जीसस के मित्रों ने कहा होगा, क्या करते हैं आप? आप जो कहते हैं कि जो एक गाल पर चांटा मारे उसके सामने दूसरा गाल कर देना। इतने मृदु, इतने सौम्य आप, आप कोड़ा उठा कर ब्याजखोरों की दुकानें उलटते हैं? तो मैं कहता हूं, जीसस ने ठीक किया। ब्याजखोरों की दुकानें किसी को उलटनी ही पड़ेंगी। अगर ब्याजखोरों की दुकानें कोई नहीं उलटता तो ब्याजखोर तो यह चाहता है कि सौम्य और मृदु-भाषा में आप बात करें, ताकि उसकी ब्याज की दुकान चलती रहे। और सौम्य और मृदु- भाषा कहीं कोई चोट नहीं पहुंचाती, कहीं कोई नुकसान नहीं करती। दुनिया में अब आने वाले बुद्धों को, आने वाले महावीरों को, आने वाले कनफ्यूशियस को, आने वाले जीसस को आक्रमक होना पड़ेगा। दुनिया बहुत कुरूप रह चुकी। और सौम्य होने से अब नहीं चल सकता है। इसलिए वह आपने जो पूछा, ठीक पूछा। लेकिन, क्या आप कभी समझते हैं कि आक्रामक होना हिंसा से ही निकलता हो, ऐसा अनिवार्य नहीं है। आक्रामक होना करुणा से भी निकल सकता है, कंपेसोनेट भी हो सकता है। लेकिन हम एक ही तरह के आक्रमक होने को जानते हैं--हिंसा के आक्रमण को। हम एक दूसरे आक्रमण को नहीं जानते--करुणा के आक्रमण को। अब तक हिंसा आक्रामक रही है। अहिंसा सौम्य रही है। करुणा सौम्य रही है। सौम्य करुणा के कारण ही दुनिया में अच्छी बातें तो बहुत हुईं, लेकिन दुनिया अच्छी नहीं हो सकी है। करुणा को भी आक्रामक होना पड़ेगा। करुणा को भी बदलने के लिए क्रांतिकारी होना पड़ेगा। करुणा को भी चोट करनी पड़ेगी। और कई बार ऐसा होता है कि हमें दिखाई भी नहीं पड़ता कि चोट हमारे हित में है, हमारे मंगल में है। कठिनाई तो यह है कि जिनके हित में चोट हो वे ही आकर कहेंगे कि

आप और ऐसी चोट की बात कर रहे हैं? क्योंकि हजारों साल से उन्हें समझाया गया है कि चोट की बात ही नहीं करनी है।
मैंने सुना है, एक फकीर था। उस फकीर के पास एक आदमी आया। और उस आदमी ने आकर उस फकीर को कहा कि मैं अध्यात्म, योग, ज्ञान-साधना चाहता हूं, मैं आध्यात्मिक होना चाहता हूं। मुझे अपनी शरण में लें, मुझे वह शास्त्र बताएं जिसे पढ़ कर मैं आध्यात्मिक हो जाऊं। उस फकीर ने कहाः बंद कर बकवास! अध्यात्म वगैरह की बात मत कर, और यहां से बाहर निकल जा और दुबारा इस आश्रम में लौट कर मत आना, बाहर होओ। वह आदमी तो घबड़ा गया। आस-पास दस-पच्चीस जो बैठे दूसरे आदमी थे वे भी घबड़ा गए। वह आदमी तो बेचारा चला गया। उन दस-पच्चीस लोगों ने कहा कि महाराज हम तो सदा आपको सौम्य समझते थे, और आपने यह कैसा दुर्व्यवहार किया? हम समझे नहीं। आप इतने जोर से क्यों बोले?
उस फकीर ने कहाः थोड़ी देर ठहरो। इसके पहले कि मैं तुम्हें भी निकाल कर बाहर करूं, मैं तुम्हें एक दृष्टांत देता हूं। वह फकीर थोड़ी देर चुप बैठा रहा। एक पक्षी खिड़की से घुसा भीतर और सारे कमरे में चक्कर लगाने लगा। अब आप जानते ही हैं पक्षियों को, आदमियों जैसी ही बुद्धि उनकी भी होती है। अगर पक्षी कमरे के भीतर घुस जाए तो खुली खिड़की को छोड़ कर सब जगह चोट मारेगा, निकलने की कोशिश करेगा, खुली खिड़की छोड़ देगा। आदमियों जैसी बुद्धि उसकी भी होती है। खुली खिड़की छोड़ देगा और सब दीवालों पर चोट मारेगा। और जहां से न निकल सकेगा वहां और जोर से चोट मारेगा। और जब नहीं निकल सकेगा, घबड़ा जाएगा, घबड़ाहट में पागल की तरह चोट मारेगा। फिर खुली खिड़की देखना मुश्किल हो जाएगी। वह पक्षी जोर से चक्कर काट रहा है, दीवाल से टकरा रहा है। फिर वह जाकर घबड़ा कर खुली खिड़की के ऊपर बैठ गया। फकीर ने एक क्षण उसे बैठे देखा और जोर से ताली बजाई। वह ताली का बजना, वह पक्षी फड़फड़ाया, घबड़ा गया और खिड़की के बाहर हो गया।
उस फकीर ने उन बैठे हुए मित्रों को कहाः देखा, मेरी ताली सुन कर पक्षी
ने सोचा होगा, बड़ा दुष्ट है, कैसा दुर्व्यवहार कर रहा है, लेकिन उसी फड़फड़ाहट में वह खुले आकाश में चला गया है। अब शायद उसे पता चले कि ताली किसलिए बजाई गई थी। हो सकता है अब भी पता न चले। तो जिसको मैंने जोर से बाहर निकाल दिया है, अगर उसमें थोड़ी भी समझ होगी तो वह खुले आकाश में पहुंच जाएगा। मेरा आक्रोश, उस फकीर ने कहा, उसकी स्वतंत्रता के लिए ही है।
मैं भी आपसे कहता हूं, बहुत सी बातें हैं, जो मैं बहुत आक्रोश से कहना चाहता हूं। कहता हूं वह सिर्फ इसलिए है कि इस देश के प्राण जो न मालूम कितने दिनों से बंदी हैं। यह भूल ही गए कि बंदी हैं, वह मुक्त हो सकें। इस देश की आत्मा जो कितने दिन से गुलाम है, यह भूल ही गई कि वह गुलाम है। गुलामी को ही स्वतंत्रता समझ रही है और जंजीरों को आभूषण समझ रही है। उस पर चोट लग सके। उसे दिखाई पड़ सके। निश्चित ही सोए आदमी को जगाना सोए आदमी को बहुत एग्रेसिव मालूम पड़ता है। सोए हुए आदमी को जगाएं, बहुत गुस्सा आता है। सपने देखते थे, सब तोड़ दिया। नींद खराब कर दी। लेकिन सोए हुए को जगाना हो तो हिलाना ही पड़ता है। मेरा आक्रोश हिलाने के अतिरिक्त और किसी प्रयोजन से नहीं है। नीचे से जड़ें टूट जाएं। अतीत का पाखंड छूट जाए। गुलामी टूट जाए। जंजीरें टूट जाएं। इस देश की आत्मा मुक्त हो सके। खुले आकाश में उड़ सके। इसके लिए अब शांति की बातें और राम-धुन करने भर से नहीं चल सकता है। बहुत हो चुकी राम-धुन! बहुत हो चुके भजन-कीर्तन! बहुत हो चुकी शांति की वार्ता! किसी न किसी को शांति को क्रांति बनाना ही पड़ेगा। किसी न किसी को शांति को अंगार देना पड़ेगा। क्रांति की ज्योति देनी पड़ेगी। किसी न किसी को अब शांति को भी धार देनी पड़ेगी। उसमें भी धार आ जाए। और शांति भी शांति रह कर मुर्दा न हो जाए, जीवंत बने और जीवन को बदले।
इसलिए मैं कहता हूं, वह निश्चित मित्र पूछते हैं, वह मेरी गलती थी जो मैं सौम्य था। अब ऐसी गलती नहीं होगी।
और कुछ प्रश्न रह गए हैं, वह कल संध्या हम बात करेंगे। सुबह चौथे सूत्र पर बात करूंगा। कल सांझ आपके उत्तर दूंगा।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उसके लिए अनुगृहीत हूं।
और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

प्रभु मंदिर के द्वार पर सातवां प्रवचन

स्वयं के चित्त के प्रति जागरण

मेरे प्रिय आत्मन्!
साक्षीभाव ध्यान है। ध्यान किसका? लोग पूछते हैं। ध्यान किसी का भी नहीं, वरन जो भी चित्त में घटित हो और चित्त के आस-पास, सबको, सब कुछ को ध्यानपूर्वक लेना है। ध्यान का कोई संबंध किसी ऑब्जेक्ट, किसी विषय, किसी मूर्ति, किसी प्रतिमा, किसी नाम, किसी शब्द से नहीं है। लेकिन हमें ऐसा ही सिखाया गया है कि ध्यान किसी का करना पड़ेगा। जब ध्यान किसी का होगा, तो वह ध्यान नहीं रह जाएगा, एकाग्रता होगी। और कल मैंने कहा कि एकाग्रता ध्यान नहीं है।
किसी व्यक्ति को मैंने कहा, प्रेम करो, उस व्यक्ति ने पूछा, किससे प्रेम करें? मैंने उससे कहाः किससे का सवाल नहीं है, जो भी निकट हो, दूर हो; जो भी पास आए, न आए, सबके प्रति प्रेमपूर्वक होने का सवाल है। किससे प्रेम? ऐसा प्रश्न गलत है। प्रेमपूर्ण? ऐसा सवाल सही है। ऐसे ही, किसका ध्यान? यह नहीं पूछना है। जो भी मैं जीऊं, जो भी सोचूं, जो भी विचारूं, जो भी मेरे चित्त पर घटे, उस सबके प्रति मुझे ध्यानपूर्वक होना है। ध्यानपूर्वकता मेरे चित्त की दशा होनी चाहिए। जैसे प्रेमपूर्णता मेरे चित्त की दशा होनी चाहिए। ध्यानपूर्णता, ध्यानपूर्वकता उसका अर्थ हैः साक्षीभाव। जो भी घटे उसे मैं जानूं, देखूं, जागरूक भाव से घटे, मूर्च्छित भाव से नहीं। मैं सोया-सोया न जीऊं, जागा-जागा जीऊं, ध्यान का यह अर्थ है।
लेकिन हम सोए-सोए ही जीते हैं। हम ऐसे जीते हैं जैसे एक गहरी निंद्रा में जी रहे हों। भीतर चित्त जागरूक नहीं है, हम जान नहीं रहे हैं जो घट रहा है उसे, भीतर भी स्वयं के भीतर ही जो हो रहा है, उसका भी हमें कोई स्मरण, कोई बोध, कोई जागरूकता नहीं है।
स्वयं के चित्त की समस्त क्रियाओं के प्रति जाग जाने का नाम ध्यान है। इसे थोड़ा समझना उपयोगी होगा।
आप रास्ते पर खड़े हो जाएं और रास्ते पर चलते हुए लोगों को देखें गौर से। तो आपको अनेक लोग ऐसे दिखाई पड़ेंगे जैसे नींद में चले जा रहे हों। कोई अपने से ही बातें करता हुआ जा रहा है, किसी के होंठ कंप रहे हैं, कुछ सोचता चला जा रहा है। उन चलते हुए राह पर लोगों को गौर से देखेंगे, तो पाएंगे कि रास्ते का उन्हें कोई पता ही नहीं है कि चारों तरफ क्या हो रहा है? वे अपने में डूबे और सोए हुए जा रहे हैं। अगर स्वयं के बाबत भी कभी रास्ते पर चलते हुए चौंक कर खड़े हो जाएं और ख्याल करें, मैं जागा हुआ चल रहा हूं या सोया हुआ? तो शायद पता चले कि सब सोए-सोए ही चल रहे हैं।
बुद्ध एक रास्ते से गुजरते थे। साथ में एक भिक्षु है। बुद्ध उससे बात
कर रहे हैं, एक मक्खी बुद्ध के सिर पर आकर बैठ गई। बुद्ध उससे बात करते रहे मक्खी को उड़ा दिया। फिर ठहर गए, खड़े हो गए, फिर दुबारा हाथ वहां ले गए जहां मक्खी बैठी थी, और अब नहीं थी, फिर उड़ाया। उस साथ के भिक्षु ने पूछा, आप क्या कर रहे हैं? जो मक्खी उड़ चुकी उसको अब उड़ा रहे हैं। अब आप यह क्या कर रहे हैं? बुद्ध ने कहाः उस बार मैंने मक्खी को सोए-सोए मूर्च्छित अवस्था में उड़ा दिया, ध्यानपूर्वक नहीं। अब मैं इस भांति हाथ को ले गया हूं जैसे मुझे ले जाना चाहिए था। अब मैं मक्खी को ध्यानपूर्वक उड़ा रहा हूं, जैसे मुझे उड़ाना चाहिए था। फर्क समझे आप? मक्खी बैठी है, आप बात कर रहे हैं, उड़ा दिया हाथ ने यंत्र की भांति, न तो हाथ के उठने का हमें होश है, न मक्खी के उड़ाए जाने का हमें होश है। उड़ा दिया, हम कहीं और लगे हैं, मक्खी उड़ा दी। यह मूर्च्छित कृत्य हुआ। यह कृत्य अध्यानपूर्वक हुआ। नॉन-मेडिटेटिवली हुआ। फिर मक्खी को हम ध्यानपूर्वक उड़ाते हैं। हाथ ले गए हैं, तो हमें हाथ के ले जाने का पूरा बोध है। मक्खी हमने उड़ाई है, तो उसका बोध है। यह पूरी क्रिया जागरूक हुई है, सोए-सोए नहीं, तो फिर यह क्रिया ध्यानपूर्वक हो गई।
आप भोजन कर रहे हैं--हम सभी भोजन करते हैं--लेकिन कौन ध्यानपूर्वक भोजन करता है? भोजन कर रहे हैं और हजार काम और भी साथ कर रहे हैं। भोजन

यहां चल रहा है, मन कहीं और चल रहा है। यहां भोजन चल रहा है मन कहीं और चल रहा है। तो क्रिया एक तरफ, मन दूसरी तरफ, तो क्रिया सोई हुई होगी और मन अनुपस्थित होगा।
हमारी सारी क्रियाएं सोई हुई हैं। इसका अर्थ, जहां हम कर रहे हैं क्रियाएं वहां हमारा चित्त उपस्थित नहीं है। क्रिया सोए-सोए होगी। चित्त अनुपस्थित है तो क्रिया जागरूक नहीं हो सकती। जो हम करें चित्त वहां मौजूद हो। पूरी प्रजेंस हो। जो भी हम करें, वहां हम पूरी तरह मौजूद हों। स्नान करें तो, राह पर चलें तो, भोजन करें तो, प्रेम करें तो, क्रोध करें तो, जो हम करें; सोचें तो, न सोचें तो, जो हो वह हमारा जागरूक हो, बोधपूर्वक हो, तो जीवन में ध्यान प्रविष्ट होगा, तो हम ध्यान की क्रिया को उपलब्ध होंगे। अदभुत परिणाम हैं ध्यान के। ध्यान की स्थिति के बनते ही जो व्यर्थ है वह होना बंद हो जाएगा। जैसे क्रोध समाप्त हो जाएगा। कोई व्यक्ति ध्यानपूर्वक क्रोध न कभी कर सका है और न कभी कर सकता है। यह असंभावना है, यह असंभव है।
नेपोलियन कहता है, कुछ भी असंभव नहीं। गलत कहता है, बहुत कुछ असंभव है। जैसे ध्यानपूर्वक क्रोध करना असंभव है। कोई व्यक्ति जागरूक, जानते हुए गलत नहीं कर सकता। गलत के करने के लिए सोया हुआ होना, मूर्च्छित होना, बेहोश होना अत्यंत जरूरी है।
एक भिक्षु एक गांव से गुजरता था, नाम था नागार्जुन। नग्न है, हाथ में लकड़ी का भिक्षापात्र है। गांव की साम्राज्ञी, गांव की महारानी से उसने भिक्षा लेने... महारानी ने निमंत्रण दिया है। महारानी ने पैर छूकर कहा कि यह जो भिक्षापात्र है मुझे दे दें, आपकी स्मृति मैं अपने पास रखूंगी। और मैंने आपके लिए एक स्वर्णपात्र बनवाया, वह मैं आपको देती हूं। नागार्जुन ने कहाः जैसी मर्जी। कोई और भिक्षु होता तो कहता, स्वर्ण! स्वर्ण मैं छूता नहीं, मैं स्वर्ण को मिट्टी मानता हूं! लेकिन अगर स्वर्ण को मिट्टी मानते हो, तो स्वर्ण छूने से डरते क्यों हो? रानी भी थोड़ी चिंतित हुई कि स्वर्णपात्र लेने में नागार्जुन कुछ भी नहीं कह रहा है। वह स्वर्णपात्र लाई। स्वर्णपात्र में उसने बहुमूल्य हीरे लगाए हैं, लाखों की कीमत है उस स्वर्णपात्र की। नागार्जुन ने उसे ले लिया।
उस रानी ने मन में सोचा था कि नागार्जुन कहेगा, नहीं, स्वर्णपात्र मैं क्या करूंगा, मैं स्वर्ण छूता नहीं, मैं भिक्षु हूं, मैं संन्यासी हूं। लेकिन नागार्जुन ने कुछ भी न कहा। वह सच्चा ही भिक्षु रहा होगा, इसलिए मिट्टी का पात्र हो कि लकड़ी का कि स्वर्ण का, उसने कुछ अंतर न माना होगा। रानी जरूर चौंकी होगी। रानी भी तभी खुश होती जब वह कहता, नहीं-नहीं, सोना मैं न लूंगा। पैसे वाले उन्हीं को पैसा देते फिरते हैं जो कहते हैं, पैसा, नहीं-नहीं पैसा हम न लेंगे। पैसा लेने की यह तरकीब रही। पैसा लेना हो तो कहो कि पैसा हम न लेंगे। धन इकट्ठा करना हो तो कहो कि धन मिट्टी है।
रानी बड़ी चिंतित हुई। नागार्जुन ने भिक्षापात्र लिया और रास्ते पर वापस लौट गया। नंगा आदमी, सोने का भिक्षापात्र, चमकती हुई मणियां, सारा गांव देखने लगा होगा। गांव में एक बड़ा चोर है, वह नागार्जुन के पीछे हो लिया। उस चोर ने सोचा, यह नंगा आदमी कितनी देर तक इस भिक्षापात्र को बचा सकता है। कोई न कोई ले ही जाएगा। तो अकारण दूसरे को मौका देना गलत है, मैं ही क्यों न चला चलूं? वह चोर पीछे हो लिया। नागार्जुन ने पीछे कदमों की चाप सुनी, समझ गया मेरे पीछे तो कोई कभी आता नहीं है, भिक्षापात्र के पीछे ही कोई आता होगा।
गांव के बाहर एक मरघट में वह ठहरा है, एक खंडहर में। भीतर गया, न द्वार है, न दरवाजा है। चोर बाहर एक खिड़की के पास छिप कर बैठ गया है। नागार्जुन ने सोचा, अब तो मेरी दोपहर हुई, सोने का समय हुआ, मैं तो सो जाऊंगा, भिक्षापात्र तो वह बाहर बैठा हुआ व्यक्ति ले ही जाएगा। अकारण उसे चोर बनने का मौका क्यों दूं? उसे चोर बनाने का जिम्मा मैं क्यों लूं? इस भिक्षापात्र को फेंक ही दूं। एक तो बहुत देर बेचारे को बैठना पड़े, फिर चोर बनना पड़े। उसने खिड़की से वह भिक्षापात्र बाहर फेंक दिया। चोर के पास पात्र गिरा, तो चोर हैरान हो गया! इतना बहुमूल्य पात्र फेंक दिया गया? उसे

उठ कर धन्यवाद देने का मन हुआ। उसने उठ कर उस नग्न भिक्षु को कहा कि मैं धन्यवाद करता हूं। आश्चर्य, मैं जिसे चुराने आया था उसे आपने फेंक दिया? उस भिक्षु ने कहा कि तुम्हें चोर बनाने का जिम्मा लेने की मेरी तैयारी नहीं। फिर अकारण तुम बहुत देर इस धूप में बैठे हुए प्रतीक्षा करते, ले तो तुम जाते ही, क्योंकि मेरे सोने का समय हुआ। मैं तो अब सो जाऊंगा। जाओ तुम ले जाओ। उस चोर ने कहाः बड़ी कृपा होगी अगर दो क्षण मुझे भीतर आने की आज्ञा दें। ऐसे अदभुत आदमी के पास थोड़ी देर मैं बैठना चाहता हूं। नागार्जुन ने कहाः मैंने इसीलिए पात्र बाहर फेंका ताकि तुम भीतर आ सको। आओ। वह चोर आकर बैठ गया और नागार्जुन से कहने लगा, मन में ईर्ष्या होती है, कब ऐसा दिन मेरे जीवन में भी आएगा कि स्वर्णपात्र को ऐसे मिट्टी की तरह फेंक दूं? नागार्जुन ने कहाः आज ही आ सकता है, अभी आ सकता है। वह चोर कहने लगा, मुझे बताएं, लेकिन एक शर्त, मैं साधुओं-संन्यासियों के पास जाता हूं, उनसे कहता हूं कि कब मेरे मन को शांति मिलेगी, कब आनंद, कब प्रभु का द्वार खुलेगा? तो मैं जाहिर चोर हूं। वे मुझे कहते हैं, पहले चोरी छोड़ो। वहीं बात अटक जाती है। न चोरी छूटती है, न आगे बढ़ता हूं। तो यह चोरी छोड़ने की बात तो नहीं कहेंगे? नागार्जुन ने कहा कि इसका मतलब है कि तू साधुओं के पास गया ही नहीं होगा, क्योंकि साधुओं को चोरी छोड़ने, न छोड़ने से क्या प्रयोजन? तू चोरों के पास पहुंच गया होगा। मुझे क्या मतलब तेरी चोरी से? तेरी चोरी और तू जान। मैं तुझे कुछ और कहता हूं, वह तू कर। उसने कहाः तब अपना मेल बैठ सकता है। मेल तो तभी बैठ गया जब आपने भिक्षापात्र बाहर फेंक दिया। क्या रास्ता है? नागार्जुन ने कहाः एक काम कर जो तुझे करना है कर, लेकिन जागरूक होकर कर। चोरी भी कर तो होशपूर्वक कर। जागा रहना, जानते रहना चोरी कर रहा हूं। तिजोरी खोल रहा हूं, धन बाहर निकाल रहा हूं, यह नींद में न हो, मन कहीं और न हो, मन यहीं हो, चोरी में ही हो। बस इससे ज्यादा मैं कुछ नहीं कहता। चोरी करने को मना नहीं करता, चोरी ध्यानपूर्वक करने को कहता हूं।
उस चोर ने कहाः तब अपनी बात बन सकती है। ध्यानपूर्वक करूंगा। पंद्रह दिन बाद वह चोर वापस आया, नागार्जुन के पैर पकड़ कर पड़ गया और कहने लगा, बड़ी मुश्किल में डाल दिया, चोरी करने गया, होशपूर्वक करता हूं तो हाथ आगे नहीं बढ़ते, चोरी रुक जाती है। चोरी होती है तो होश नहीं सम्हलता, बेहोशी आ जाती है। कल रात राजमहल में घुस गया था। वर्षों के बाद यह मौका मिला था, तिजोरी खोल ली है, आंखों के सामने बहुमूल्य हीरे-जवाहरात पड़े हैं, स्वर्णमुद्राएं पड़ी हैं, हाथ आगे बढ़ाता हूं होशपूर्वक और हंसी आती है और हाथ रुक जाता है। उठाता हूं स्वर्णमुद्राओं को तो मूर्च्छा में उठाता हूं, छोड़ देता हूं, क्योंकि तय कर लिया कि होशपूर्वक ही करूंगा। लेकिन रात भर मेहनत करके वापस लौट आया हूं, होशपूर्वक चोरी नहीं हो सकती। तुम बड़े बेईमान निकले, धोखा दे दिया है मुझे!
नागार्जुन ने कहाः मुझे मतलब नहीं तेरी चोरी से। हम कोई चोर हैं? तू अपनी चोरी जान। एक ही बात ध्यान रखना, ध्यानपूर्वक करना। और जो ध्यानपूर्वक न हो सके, समझना वह करने योग्य नहीं है। जो ध्यानपूर्वक हो सके, वही करने योग्य है। पाप का अर्थ हैः जो ध्यानपूर्वक न हो सके। पुण्य का अर्थ हैः जो ध्यानपूर्वक ही हो सके। जो ध्यानपूर्वक हो सके वह पुण्य है और जो ध्यानपूर्वक न हो सके वह पाप है। इसलिए सवाल पाप को छोड़ने का और पुण्य को करने का नहीं है, सवाल है ध्यानपूर्वक सब-कुछ करने का। और जो व्यक्ति जितना ध्यानपूर्वक हो जाता है उतना ही उसका जीवन धर्म और पुण्य बन जाता है और पाप तिरोहित हो जाता है। ध्यान का अर्थ हैः एक-एक क्रिया मेरी जागरूक हो, होश से भरी हो, सोई-सोई न हो। यह तीसरी सीढ़ी है। जिससे हम बिल्कुल द्वार पर पहुंच जाते हैं, द्वार में प्रविष्ट हो जाते हैं। लेकिन ध्यान वहां पहुंचा देता है जहां परमात्मा का निवास है, लेकिन वहां नहीं पहुंचाता जहां परमात्मा ही है, उसका हृदय है। मंदिर में पहुंच जाते हैं, परमात्मा के अभी भी बाहर रह जाते हैं। क्योंकि ध्यान में भी दो बच जाते हैंः एक मैं हूं जो ध्यान में है, जागा है, और एक वह सबकुछ है जिसके

प्रति जागा है। अभी दो बाकी हैं। ध्यान में दो नहीं मिटते, द्वैत नहीं मिटता। ध्यान में द्वैत बना ही रह जाता है।
तो अंततः ध्यान को भी जाना पड़ेगा। ध्यान को भी छोड़ देना पड़ेगा। द्वैत
को भी छोड़ देना पड़ेगा। अंततः मैं भी खो जाऊं, मैं भी न बचूं, यह भी न बचे कि मैं साक्षी हूं, यह भी बच जाना है। यह भी न बचे कि मैं आत्मा हूं। यह भी न बचे कि मैं जानने वाला हूं, दृष्टा हूं। यह मैं की अंतिम रेखा भी न बचे। इसलिए आज चौथी बात ध्यान से भी बाहर निकल जाना है।
ध्यान से बाहर निकल जाने का नाम समाधि है। ध्यान से बाहर निकल जाना ऐसे ही है जैसे कोई नदी सागर से मिल जाए। फिर नदी के बाहर निकल गई। फिर वहां नदी नहीं रह जाती, सागर ही हो जाती है। ध्यान भी एक पतली धारा है, व्यक्ति की, व्यक्तित्व की। फिर ध्यान सागर से मिल जाए, फिर यह भी ख्याल न रह जाए कि मैं हूं, तू है, यह कोई ख्याल न रह जाए।
रूमी की एक छोटी सी कहानी। एक प्रेमी अपनी प्रेयसी के द्वार पर दरवाजा खटखटाता है। अंदर से पूछा जाता है, कौन है तू? और वह प्रेमी कहता है, पहचानी नहीं, मेरी आवाज से नहीं पहचानी, मैं हूं तेरा प्रेमी। भीतर से आवाज चुप हो जाती है। वह बहुत द्वार पीटता है, फिर भीतर से इतनी ही आवाज आती है, वापस लौट जाओ, यह प्रेम का घर बहुत छोटा है, इसमें दो न समा सकेंगे। मैं पहले से ही यहां हूं और एक मैं और तुम आ गए। दो "मैं" इस छोटे से घर में न बन सकेंगे। बड़ी कलह होगी।
जहां-जहां दो "मैं" हो जाते हैं, वहीं कलह होती है। सब घर छोटे हैं, और
सब जगह दो "मैं" समा गए हैं। सब जगह कलह है। वह प्रेमी कहता है, मैं तेरा प्रेमी हूं, द्वार खोल! वह कहती है, जब तक तू मौजूद है तब तक कैसा प्रेमी है? द्वार नहीं खुलेगा। मैं के लिए प्रेम का द्वार नहीं खुलता।
वह प्रेमी वापस लौट जाता है। वर्ष बीतते हैं। वह अपने मैं को गलाता है, मिटाता है, शून्य करता है, राख करता है, जलाता है, फेंक डालता है। वर्षों के बाद फिर उसी द्वार पर फिर एक पूर्णिमा की रात द्वार खटखटा रहा है। भीतर से फिर आवाज आती है, कौन है तू? वह प्रेमी कहता है, कौन? अब तो मैं नहीं हूं, तू ही है। रूमी कहता है, द्वार खुल जाते हैं।
मैं मानता हूं, रूमी ने जरा जल्दी द्वार खुलवा दिए। अभी द्वार नहीं खुल सकते हैं। क्योंकि वह प्रेमी कहता है, मैं नहीं हूं, तू ही है। जिसे तू दिखाई पड़ता है उसका मैं मिटा नहीं, बहुत सूक्ष्मतम रूप में जीवित है, शेष है। क्योंकि मैं के अभाव में तू भी दिखाई नहीं पड़ सकता है। जहां मैं नहीं वहां तू कहां? जहां मैं है वहीं तू का बोध हो सकता है। तू का बोध मैं का ही बोध है।
रूमी जरा जल्दी दरवाजा खोल देता है। मैं दरवाजा खोलने को राजी नहीं। रूमी कहीं मिल जाए--अब मिलना बहुत मुश्किल--तो रूमी को कहूं, कविता अधूरी है। अभी फिर प्रेमी वापस लौटना चाहिए। मैं कविता को आगे ले जाना चाहता हूं। वह प्रेमिका फिर कहती है भीतर से, तू, अभी तुझे तू का पता है? तो फिर तेरा मैं शेष है, अभी लौट जा, दो यहां न बन सकेंगे। और वह प्रेमी वापस लौट जाता है। फिर वह कभी वापस नहीं आता लौट कर, फिर प्रेमिका ही उसे खोजती- फिरती है, क्योंकि अब वह कैसे वापस आए? अब मैं बचा ही नहीं, अब तू भी नहीं बचा। अब वह किसके पास वापस आए? अब वह किसके पास जाए? वह कहीं नहीं जाता, उसे प्रेमिका ही खोजती है। प्रेमिका ही उसे ढूंढती है। अब वह नहीं है, अब उसे ढूंढना भी बहुत मुश्किल है। अब वह सब जगह है, क्योंकि जिसका मैं मिट गया अब वह कहीं छोटी जगह नहीं हो सकता। अब वह सर्वव्यापी हो जाता है।
जैसे ही ध्यान के ऊपर उठता है व्यक्ति वैसे ही परमात्मा को हमें खोजने नहीं जाना पड़ता, हम मिट जाते हैं, परमात्मा खोजता हुआ आ जाता है। आज तक कोई आदमी परमात्मा को खोजता हुआ परमात्मा के पास तो पहुंच सकता है, परमात्मा के बिल्कुल भीतर नहीं पहुंच सकता है। खुद मिट जाता है, परमात्मा उतर आता है। अंततः परमात्मा ही हमें खोज लेता है। हम मिटते हैं, खाली होते हैं और वह भर जाता है। हम शून्य होते हैं और वह प्रविष्ट हो जाता है। रवींद्रनाथ एक रात एक बजरे पर यात्रा कर रहे हैं। आधी रात है, चांद की रात है, पूरा चांद ऊपर है। बजरा है, नाव है, उस बजरे में बैठे हुए कोई किताब

पढ़ते हैं। छोटा सा दीया जला रखा है, मोमबत्ती जला रखी है, उसी की टिमटिमाती रोशनी है, उसी में वे पढ़ते चले जाते हैं। उस मोमबत्ती की टिमटिमाती धीमी सी पीली रोशनी से बजरा भरा है। बीमार सी, रुग्ण सी रोशनी। आधी रात गए वे थक गए, किताब बंद करते हैं, फूंक कर बुझा देते हैं मोमबत्ती को, और अचानक जैसे कोई बंद द्वार खुल जाए, अचानक जैसे किसी अंधे को आंख मिल जाए, अचानक जैसे किसी बहरे के कानों पर वीणा का संगीत गूंजने लगे, अचानक जैसे कोई कांटे फूल बन जाएं, ऐसे रवींद्रनाथ चौंक कर खड़े हो जाते हैं। मोमबत्ती बुझी कि द्वार से, खिड़कियों से, रंध्र-रंध्र से बजरे की, चांद की किरणें भीतर भर आती हैं। सारा कक्ष चांद की रोशनी से भर जाता है। रवींद्रनाथ नाचने लगते हैं। और उस रात वे अपनी डायरी में लिखते हैं कि अदभुत अनुभव हुआ, छोटी सी मोमबत्ती की रोशनी जलती थी तो चांद भीतर न आ सका, बाहर खड़ा रहा। इतना बड़ा चांद, इतनी छोटी सी मोमबत्ती, लेकिन इतनी छोटी सी मोमबत्ती जलती थी भीतर तो चांद बाहर रहा, नहीं आया, भीतर द्वार पर ठहरा रहा। बुझी मोमबत्ती और चारों तरफ चांद की लहरें भीतर प्रविष्ट हो गईं। उसकी किरणें भीतर नाचने लगीं। उन्होंने जाल बुन दिया। कैसा पागल था मैं जो धीमी सी, पीली सी, गंदी सी, पुरानी, बासी सी रोशनी में बैठा रहा। और चांद झरता रहा बाहर और मैं अपनी रोशनी जलाए रहा।
उस दिन रवींद्रनाथ ने लिखाः कहीं ऐसा तो नहीं है कि जब तक "मैं" की मोमबत्ती जलती है, तब तक परमात्मा बाहर खड़ा रहता हो? और जब मैं की धीमी सी रोशनी बुझ जाती है, तो वह भीतर आ जाता है।
ऐसा ही है। ऐसा ही है। बिल्कुल ऐसा ही है। जब तक मैं की आखिरी, आखिरी सीमा तक मैं की बत्ती जलती रहती है, तब तक हम कितने ही निकट पहुंच जाएं, लेकिन वही नहीं हो पाते। वह उसमें और हमारे बीच मैं का फासला बना रहता है। ध्यान से भी ऊपर उठ जाना है। क्योंकि ध्यानी को भी मैं का पता है। ध्यान से भी ऊ पर उठ जाना है, क्योंकि ध्यानी को भी मैं साक्षी हूं, जानने वाला हूं, मैं हूं। जो लोग ध्यान से ऊपर नहीं उठ पाते वे आत्मा से ऊपर नहीं उठ पाते। इसलिए बहुत से ध्यानी आत्मा के ऊपर परमात्मा नहीं है, ऐसा कहते हुए मिलेंगे। वह मैं पर ही रुक गए हैं, आखिरी मैं पर रुक गए हैं। आखिरी सीमा पर रुक गए हैं।
मैं भी जाने दो, ध्यान भी जाने दो, साक्षी भी जाने दो, सब मिट जाने दो, कुछ मत बचाओ, टूट जाओ, बिखर जाओ। तब जहां शून्य हो जाता है वह पूर्ण उतर आता है। यहां बत्ती बुझी वहां उसकी रोशनी भीतर चली आती है। अंततः मैं से... अंततः मैं को भी तोड़ डालना है। विश्वास को उखाड़ा कि विचार आ सके, विचार आया कि उसे भी फेंक दिया कि ध्यान आ सके, ध्यान आया कि उसे भी उठा देना है, ताकि सब मिट सके, फिर मिटाने को भी कुछ न बचे। जब तक मिटाने को कुछ बचता है तब तक प्रभु के मंदिर में पूरा प्रवेश नहीं है। जब मिटाने को कुछ भी नहीं बचता, जब यह कहने को भी नहीं बचता कि मैं हूं, जब यह भी नहीं रहता कि मैं साधना कर रहा हूं, साधक हूं, ध्यान कर रहा हूं।
एक युवक ध्यान की तलाश में, प्रभु की तलाश में, सत्य की तलाश में एक आश्रम में गया है। वह सुबह से सांझ तक बैठ कर ध्यान करता है। उसका गुरु उसे बार-बार पूछता है आकर, क्या हुआ? वह कहता है, ध्यान हो रहा है, मैं साक्षी हो रहा हूं। गुरु हंसता है और वापस लौट जाता है। वर्षों बीत गए हैं, बार-बार गुरु आकर पूछता है, कुछ हुआ? वह कहता है, बहुत कुछ हुआ, मैं बड़ा शांत हो गया हूं, मैं बड़ा आनंदित हो गया हूं। गुरु हंसता है और वापस लौट जाता है। वह शिष्य बहुत हैरान है, यह गुरु कभी स्वीकृति नहीं देता कि हो गया। हस्ताक्षर नहीं कर देता कि हो गया। गुरुफिर हंसता है और वापस लौट जाता है।
फिर वह आता है, पूछता है, वह कहता है, मैं मुक्त हो गया हूं। लेकिन वह मैं नहीं छूटता। वह मैं कभी शांत है, कभी मुक्त है, कभी आनंदित है, लेकिन है।
मैं तब भी था, जब दुख था मैं तब भी था, जब अशांति थी, अशांति बदल गई, दुख बदल गया, लेकिन मैं मौजूद है। मैं नहीं जाता।
एक दिन वह बैठा है आंख बंद किए, दिन भर बीत गया, सांझ हो गई है। गुरु आया है, वह एक सामने ही पड़ी ईंट को उठा लेता है गुरु और पत्थर पर ईंट को जोर से घिसने लग गया है। पीछे, पीछे वह साधक बैठा है आंख बंद किए, सामने उसका

गुरु ईंट को पत्थर पर घिसता है। ईंट की रगड़, शोरगुल, आवाज, उसका ध्यान टूट जाता है। वह जोर से कहता है, आप क्या पागलपन कर रहे हैं? वृद्ध होकर यह क्या बच्चों का खेल कर रहे हैं? यह ईंट किसलिए घिस रहे हैं? मेरे ध्यान को क्यों खराब करते हैं? मेरे ध्यान में क्यों बाधा बनते हैं? वह गुरु कहता है, मैं किसी को बाधा नहीं बन रहा, मैं इस ईंट को दर्पण बनाना चाहता हूं। घिस-घिस कर इसको दर्पण बना लूंगा। वह युवक कहता है, आप वृद्धावस्था में पागल तो नहीं हो गए? कभी सुना है कि ईंट घिस-घिस कर दर्पण हो जाए? तो वह बूढ़ा कहता है, कभी सुना है कि मैं घिस-घिस कर ध्यान हो जाए? कभी सुना है कि "मैं" बना रहे और उसका दर्शन हो जाए? कभी सुना है कि मैं दर्पण बन जाए? ईंट दर्पण बन भी सकती है, लेकिन मैं कभी दर्पण नहीं बन सकता। वह ईंट फेंक कर चला जाता है। वह साधक पहली दफा ख्याल में आता है, सब बदल गया, लेकिन मैं मौजूद है भीतर, उतनी दीवाल मौजूद है।
मैं को कभी भी दर्पण नहीं बनाया जा सकता है। इसलिए अंततः योग के ऊपर
भी उठ जाना है। ध्यान के ऊपर भी। बियांड मेडिटेशन। बियांड योग। योग पर जो रुक जाता है वह भी अहंकार पर रुक जाता है। ध्यान पर जो रुक जाता है वह भी अहंकार की सूक्ष्मतम वृत्ति पर रुक जाता है। इसके पार जाना है। इससे पार जाना है। हर चीज के। बियांड एण्ड बियांड। और वहां चले जाना है जिसके आगे फिर बियांड नहीं होता। जिसके पार नहीं होता है। वहीं प्रभु है जिसके पार फिर आगे कुछ भी नहीं है।
यह मैं कैसे जाएगा? साक्षी हम हो गए हैं, शांत हम हो गए हैं, आनंदित हम
हो गए हैं, लगता है कि मैं सिर्फ दृष्टा हूं, बाकी सब हो रहा है। अब इस दृष्टा को भी विदा कर दें और कहें कि अब बस मैं दृष्टा हूं यह भाव भी छोड़ता हूं। अब मैं हूं, यह भाव भी छोड़ता हूं। अब सिर्फ होना रह जाएगा, एक्झिस्टेंस रह जाएगा, मैं को भी छोड़ता हूं, अब सिर्फ होना है। और भीतर थोड़ा झांक कर देखें, वहां मैं हूं ऐसी कोई बात ही नहीं है, वहां हूं बस ऐसी ही बात है। वहां इ.जनेस है, वहां होना है। वहां मैं हूं ऐसा कुछ है ही नहीं। कभी भीतर झांकें, श्वासों के पार, वहां कोई कहता है कि मैं हूं। वहां होना भर है। जस्ट बीइंग, वहां सिर्फ अस्तित्व है। जैसे पत्ते हिल रहे, नदी बह रही, चांद निकला, फूल खिल रहे, श्वास चल रही, मैं कहां है? मैं बिल्कुल ही भ्रम है। मैं बुनियादी इलुजन है। मैं बुनियादी माया है। मैं सबसे बड़ा झूठ, सबसे बड़ा जादू है, मैं सबसे बड़ा सम्मोहन है। मैं कहां है?
सुना है मैंने, एक राजमहल के पास पत्थरों का ढेर लगा है। एक बच्चा खेलता निकला है, एक पत्थर उठा कर फेंका है महल की तरफ। पत्थर जब ऊपर उठने लगा, नीचे पड़े पत्थरों से उसने कहा, मैं आकाश की यात्रा को जा रहा हूं। फेंका गया था। लेकिन उस पत्थर ने कहा, मैं आकाश की यात्रा को जा रहा हूं। नीचे पड़े पत्थर क्या कह सकते हैं? जानते हैं पत्थर फेंका गया है। लेकिन वह पत्थर कहीं मानेगा, उस पत्थर को लग रहा है मैं जा रहा हूं। फेंका गया पत्थर, थ्रोन, वह समझ रहा है कि मैं जा रहा हूं। छोटी सी भूल, लेकिन कितनी बड़ी भूल, पत्थर कहता है, मैं जा रहा हूं। वह गया। वह जाकर टकरा गया महल की कांच की खिड़की से। कांच चकनाचूर हो गया। अब जब पत्थर कांच से टकराता है, तो कांच चकनाचूर हो जाता है। पत्थर करता नहीं है। पत्थर को कांच को चकनाचूर करना नहीं पड़ता, वह पत्थर का कोई कर्म नहीं है। कर्तव्य नहीं है, बस पत्थर और कांच के टकराने से। स्वभाव पत्थर और कांच का ऐसा है कि पत्थर बच जाता है, कांच चकनाचूर हो जाता है। पत्थर चकनाचूर करता नहीं है। लेकिन जब कांच चकनाचूर हो गया, तो उस पत्थर ने कहाः नासमझ कांच, कितनी बार मैंने नहीं कहा कि मेरे रास्ते में कोई न आए, नहीं तो मैं चकनाचूर कर दूंगा। अब कांच के टुकड़े कुछ कह भी नहीं सकते, चकनाचूर हो गए हैं। हारा हुआ क्या कहे?
पत्थर अंदर गिरा है जाकर। ईरानी कालीन बिछे हैं महल में, बहुमूल्य, उस पत्थर ने श्वास ली, विश्राम किया, और कहा, इस घर के लोग अतिथि प्रेमी मालूम पड़ते हैं, लगता है मेरे आने की खबर हो गई, कालीन बिछा रखे हैं। अच्छे लोग हैं, सुसंस्कृत मालूम होते हैं। आखिर मैं कोई साधारण पत्थर भी तो नहीं हूं, आकाश में उड़ने वाला पत्थर हूं। और तभी कांच के टूटने, पत्थर के गिरने से महल का दरबान भागा हुआ भीतर आया है आवाज सुन कर। उसने पत्थर को हाथ में

उठाया फेंकने के लिए वापस। पत्थर ने अपनी भाषा में जोर से कहा, धन्यवाद, धन्यवाद, बहुत-बहुत धन्यवाद। मालूम होता है, भवनपति अपने हाथ में लेकर स्वागत, अभिनंदन कर रहा है। पत्थर वापस फेंक दिया गया। लौटते हुए पत्थर ने यह नहीं कहा कि मुझे वापस फेंका जा रहा है, लौटता हुआ पत्थर बोला, सम्हालो अपना महल, रखो अपना महल, होगा बहुत बड़ा, लेकिन कहां वह मजा आकाश के नीचे अपने मित्रों संगी-साथियों, प्रियजनों, परिवार के साथ होने का। होम सिकनेस मालूम होती है, मैं घर वापस जा रहा हूं।
दिल्ली से फेंके गए कोई आदमी इसी तरह तो लौटते हैं। होम सिकनेस। होम सिकनेस मालूम होती है। घर जा रहे हैं। कहीं से भी कोई फेंका जाता है, वह कहता है, हम जा रहे हैं। वह पत्थर नीचे गिर रहा है, तब वह अपने आस-पास पड़े पत्थरों से कहता है, मैं वापस लौट आया, न मालूम कितने दुश्मनों को नष्ट किया, न मालूम कितने राजमहलों में स्वागत, समारंभ पाया। लेकिन नहीं, तुम्हारी बहुत याद आती थी। मैं वापस लौट आया हूं।
उस पत्थर को "मैं" का भ्रम पैदा हो गया। फेंका गया था, कहा कि जा रहा हूं। कांच टूट गया था, कहा कि तोड़ा है। कालीन बिछे थे, उस पत्थर से कोई प्रयोजन न था, उन कालीनों का कोई संबंध न था, बिछाने वालों को पत्थर का कोई पता भी न था, लेकिन उसने कहा, मेरे लिए बिछे हैं। फेंका गया, लेकिन उसने कहा, मैं लौट रहा हूं। उस पत्थर को मैं पैदा हो गया।
हम भी इसी तरह के मैं से घिरे हैं। जन्म मिलता है, हम कहते हैं, मेरा जन्म! जवानी आती है, हम कहते हैं, मेरी जवानी! श्वास चलती है और हम कहते हैं, मैं श्वास ले रहा हूं! आज तक किसी आदमी ने श्वास नहीं ली है। श्वास चलती है। लेता कोई भी नहीं। अगर हम श्वास लेते हों तब तो मृत्यु दरवाजे पर आ जाए और वह बाहर बैठी हुई कॉलबैल बजा रही है, घंटी बजा रही है और हम श्वास लिए जाते हैं, चले जा रहे हैं, हम श्वास रोकते ही नहीं, तो मृत्यु थक जाए और वापस लौट जाए। लेकिन हम जानते हैं, मृत्यु आती है। और एक श्वास बाहर गई, भीतर न लौटी, तो हम उसे भीतर न ला सकेंगे। गई तो गई। सच तो यह है कि बाहर गई श्वास कि हम भी भीतर नहीं हैं, हम भी गए। भीतर कोई बचा ही नहीं जो श्वास को फिर भीतर ले जाए। हम भी विदा हो गए, हम भी खो गए। हम भी कहीं गए। श्वास हम लेते नहीं, श्वास चलती है, लेकिन कहते हम यही हैं कि श्वास चल रही है। विचार हम करते नहीं, विचार चलते हैं, लेकिन हम कहते हैं, हम विचार करते हैं। जीवन चलता है, लेकिन हम कहते हैं, हम जीते हैं। जीवन घटता है, लेकिन हम कहते हैं, हम जीते हैं। हम मैं को मजबूत किए चले जाते हैं। व्यर्थ ही खाली शून्य पर चारों तरफ से एक पर्त लगाए चले जाते हैं। फिर इतनी पर्तें हो जाती हैं कि ऐसा लगता है भीतर कुछ होगा। जैसे प्याज को कोई छीले, तो ऐसा लगता है भीतर कुछ होगा। छीलते चले जाओ, छीलते चले जाओ और भीतर कुछ भी नहीं है। छिलके ही छिलके, छिलके ही छिलके, आखिर में भीतर शून्य है। ऐसा ही मैं है। पर्त पर पर्त बांधते चले जाते हैं, यह मैं कर रहा हूं, यह मैं कर रहा हूं, यह मैं कर रहा हूं, फिर सब पर्तें इकट्ठी हो जाती हैं, और इस गांठ के भीतर लगता है, कुछ होगा। आखिरी जो गांठ की पर्त है वह साक्षी की है। आखिरी जो पर्त है वह ध्यान की है। उसको भी उखाड़ दो, यह मत कहो कि मैं ध्यान कर रहा हूं। यह मत कहो कि मैं साक्षी हूं, देखो झांक कर भीतर, वहां कोई मैं नहीं है। खाली शून्य है। विराट शून्य है। और जैसे ही मैं छूटा, जैसे ही मैं गया, और वह छलांग, दि जम्प, वह छलांग लग जाती है। आ जाता है वह मोड़, दि टर्निंग, जहां से सब बदल जाता है, दूसरी दुनिया शुरू हो जाती है।
वहां प्रभु का आवास है जहां मैं नहीं हूं। वहां हम मंदिर में ही नहीं, मंदिर के प्राणों के प्राण में, मंदिर की प्रतिमा में, उसमें वह जो प्रभु है, उसमें ही प्रविष्ट हो गए। वहां फिर कोई दो न रहे, वहां फिर मैं और वह नहीं है। वहां फिर अस्तित्व और मैं नहीं हूं, सिर्फ अस्तित्व है। वह जो एक्झिस्टेंस है, वह जो सिर्फ अस्तित्व है, उसे जान कर पता चलता है कि मैं किसी सपने में खो गया था। उसे जान कर पता चलता है कि किसी सपने में खो गया था।
एक आदमी रात सोया है और पाता है नींद में कि टोकियो पहुंच गया, कि टिम्बकटू पहुंच गया, रात परेशान होता है कि टिम्बकटू कितनी दूर है

अहमदाबाद से, बड़ी मुश्किल हो गई, अब कैसे लौटूं? कैसे जाऊं वापस? कहां है एअरपोर्ट? कहां हैं पैसे पास में? टिकट मिल सकेगी कि नहीं? कैसे जाऊं घर वापस, अहमदाबाद बहुत दूर? लड़का बीमार था, दवा लानी थी, मैं टिम्बकटू आ गया हूं, अब बड़ी मुश्किल हो गई। कैसे जाऊं? क्या करूं? बेचैन है सपने में, भागा-भागा खोज रहा है, कहां है एअरपोर्ट, कहां है टिकट, कहां से जाऊं, और सुबह नींद खुल जाती है और वह पाता है कि टिम्बकटू तो कभी गया ही नहीं, वहीं के वहीं पड़ा हूं, वहीं अहमदाबाद में, अपने ही घर में। रात सपने में लेकिन चला गया था। और सपने में लगता था चला ही गया हूं, पहुंच ही गया हूं।
कहीं कोई गया नहीं है। जिस दिन अस्तित्व के साथ मिलन हो जाता है उस दिन पता चलता है, कैसा आश्चर्य, जिससे हम कभी न छूटे थे उससे ही छूट गए मालूम पड़ते थे। कैसा आश्चर्य, जिसे हमने कभी न खोया था वही खो गया मालूम पड़ता था। कैसा आश्चर्य, जो हम स्वयं थे उसी को हम खोजते थे। कैसा आश्चर्य, परमात्मा तो निरंतर साथ था, हम वही थे, वही दूर था, वही मिलता नहीं था, वही खोजे से खोज में नहीं आता था। उसको ही क्रोध में इनकार कर देते थे कि नहीं है, प्रेम में मूर्ति गढ़ लेते थे कि है। मूर्ति भी झूठी थी, क्रोध भी झूठा था, हम तो स्वयं वही थे। लेकिन सपने में खो गए थे।
बुद्ध को जिस दिन ज्ञान हुआ, लोग इकट्ठे हो गए, और उनसे पूछने लगे कि क्या मिला है ज्ञान में? बुद्ध ने कहाः मिला कुछ भी नहीं, जो मिला ही हुआ था, उसका पता चल गया है। मिला कुछ भी नहीं, जो मिला ही हुआ था, उसका पता चल गया है। पूछा किसी ने, छुटकारा हो गया? मुक्ति हो गई? बुद्ध ने कहाः मुक्ति? मुक्ति किसकी? जो मुक्त था, सपने में समझा था कि बंध गया है। सपना टूट गया, मुक्त सदा मुक्त था, पता चल गया।
एक कहानी मुझे याद आती है। एक फकीर, रमजान के दिन हैं, और एक रास्ते के पास से गुजरता है। प्यास लगी है, कुएं के पास गया है, अंदर झांक कर देखा, शांत कुआं है, गहरा जल है, और आकाश का चांद कुएं में झलक रहा है। फकीर ने सोचा, अरे, बड़ी मुश्किल हो गई, यह चांद कुएं में कैसे गिर गया? चांद कुएं में फंसा है, आस-पास कोई बचाने वाला भी नहीं दिखता, चांद को निकालने वाला भी नहीं दिखता। रमजान का महीना है, अगर चांद कुएं में फंसा रहा तो लोग मुश्किल में पड़ जाएंगे, उपवास कब तोड़ेंगे। और चांद यहां फंसा है, किसी को पता भी नहीं कि इस जंगल के कुएं में चांद गिर गया है। उस फकीर ने कहाः कुछ न कुछ मुझे करना पड़ेगा। कहीं से ढूंढ-ढांढ कर रस्सी लाया, रस्सी अंदर डाली, फंदा बनाया चांद को निकालने के लिए। रस्सी भीतर गई, किसी चट्टान से फंस गई। फकीर ने कहाः बड़ी मुश्किल है, चांद बड़ा वजनी है, अकेले से शायद खिंचेगा भी नहीं। लेकिन कोशिश करनी चाहिए। दूसरा कोई दिखाई भी नहीं पड़ता। फकीर ने बड़ी ताकत लगाई। सस्ती रस्सी थी, कच्ची रस्सी थी, सड़ी रस्सी थी, चट्टान मजबूत थी, फंदा टूट गया, फकीर जोर से गिरा। झटकेमें आंख बंद हो गई, सिर पर चोट लगी, पानी छलका, ऊपर रस्सी फिंकी, फिर आंख खोली, देखा, ऊपर चांद आ गया। उसने कहाः चलो निकल आया। बेचारा बच गया। बुरा फंसा था आज, निकलना भी मुश्किल था। थोड़ी चोट अपने को लगी, कोई हर्ज भी नहीं। चांद बाहर है, अब रमजान वाले परेशान न होंगे। अब उपवास तोड़ने में सुविधा रहेगी।
उपवास करने वाला तोड़ने की फिकर में बहुत ज्यादा रहता है। उपवास कम चलता है, तोड़ने का विचार ज्यादा चलता है। अब बेचारे मुक्त हो गए, अब वह उपवास की झंझट से बचे। अच्छा हुआ, कोई फिकर नहीं, थोड़ी चोट आ गई, लेकिन चांद बच गया। फकीर अकड़ से अपने रास्ते पर चल पड़ा है। अब वह अकड़ कर जा रहा है कि उसने चांद को छुटकारा दिला दिया है।
जैसे चांद कुएं में फंस जाता है ऐसे हम फंस गए हैं। चांद तो सदा बाहर है, हम भी सदा बाहर हैं, जो फंस गई है वह केवल परछाया है, वह रिफ्लेक्शन है, परछाईं है। लेकिन बुरी फंस गई है। और हम भूल ही गए हैं कि हम परछाईं के अलावा कुछ हैं।
ध्यान की खोज में परछाईं से हम बाहर निकलना शुरू होते हैं। बाहर निकलना शुरू होते हैं, लेकिन आखिर में बाहर निकलने की कोशिश भी तो अज्ञान है। क्योंकि जो फंसा नहीं उसको बाहर कैसे निकालोगे? साक्षी होने की कोशिश भी अंततः अज्ञान है, चरम अर्थों में अज्ञान है। क्योंकि जब दो नहीं तो कौन

होगा साक्षी? और जब चांद कुएं में फंसा नहीं तो किस रस्सी से निकालोगे? ध्यान की रस्सी से? ध्यान की रस्सी से उसको निकालने की कोशिश चल रही है जो नहीं फंसा है। अंततः जानना ही होगा कि रस्सी झूठ, कुआं झूठ, जो फंसा वह झूठ, जो है वह सदा बाहर है। वह आकाश में भागा चला जा रहा है। उसे पता ही नहीं, कहां का कुआं, कहां का बंधन।
जैसे-जैसे आदमी ध्यान में स्पष्ट और गहरा होता है अंततः पाता है कि ध्यान भी बाधा है। अब इसे भी छोड़ दो, अब इससे भी छूट जाओ, अब इससे भी मुक्त हो जाओ, अब कूद जाओ वहां जहां कुछ भी नहीं है।
एक छोटी सी कहानी, अपनी बात मैं पूरी करूंगा।
एक आदमी दुनिया के अंत की खोज में निकला है। जानना चाहता है दुनिया कहां खत्म होती है। कुछ लोग ऐसे होते हैं जिन्हें अपनी फिकर कम होती है दुनिया की फिकर ज्यादा होती है। अब उसे यह भी पता नहीं कि मैं कहां शुरू होता हूं, कहां खत्म होता हूं। इसकी फिकर नहीं है। वह इस फिकर में है कि दुनिया कहां शुरू होती है, कहां खत्म होती है। मैं दुनिया का अंत जानना चाहता हूं। खोजने निकला है। बहुत लोगों ने रोका कि यह खोज कभी पूरी नहीं हुई। दुनिया कहीं खत्म ही नहीं होती। उसने कहाः लेकिन जो भी चीज है वह जरूर कहीं न कहीं खत्म होती होगी। मैं तो खोज कर रहूंगा। जितना लोगों ने रोका उतनी उसकी जिद बढ़ती गई। रोकने से जिद बढ़ती है। अगर घर में कोई संन्यासी होना चाहता हो और आपको उसको संन्यासी बनाना ही हो, तो सब मिल कर रोकने लगना, वह संन्यासी हो जाएगा। अगर कोई शादी न करना चाहता हो और आप चाहते हों कि शादी न करे, तो आप सब समझाना कि शादी कर लो, फिर वह कभी शादी नहीं कर सकेगा।
जिद बढ़ती गई। दुनिया भर के लोगों ने कहा, पागल हो गए हो, दुनिया का अंत कोई खोज पाया कभी? जितना लोगों ने कहा उतनी उसको यह लगी कि कोई नहीं खोज पाया, उसे तो मैं खोज कर ही रहूंगा। अहंकार को बड़ा रस आने लगा। एवरेस्ट पर कोई नहीं चढ़ा, मैं चढ़ कर रहूंगा। प्रशांत महासागर में कोई नीचे तक नहीं उतरा, मैं उतरूंगा। चांद पर कोई नहीं पहुंचा, मैं पहुंचूंगा। दुनिया का अंत किसी ने नहीं पाया, मैं पाऊंगा। अहंकार और पागल होकर दौड़ने लगा, और बड़े आश्चर्य की बात, एक दिन वह ऐसी जगह पर पहुंच गया, जीवन के अंतिम क्षणों में, बुढ़ापे में, जहां एक तख्ती लगी थी, जहां लिखा थाः हियर एण्ड्स दि वर्ल्ड, यहां दुनिया खत्म होती है। थोड़ी ही दूर जाकर दुनिया खत्म हो जाती थी। वह आखिरी पड़ाव था। वह आखिरी सूचना थी कि आगे मत बढ़ो, सावधान! आगे दुनिया खत्म हो जाती है।
लेकिन उस आदमी ने कहाः मैं तो बढूंगा, मैं तो इसी की खोज में आया। वह आदमी और थोड़े कदम आगे गया, और दस-बीस कदम के बाद दुनिया खत्म हो जाती थी। हर चीज खत्म हो जाती है। जो चीज शुरू होती है वह खत्म हो जाती है। जो चीज जन्मती है वह मर जाती है। जिसका प्रारंभ है उसका अंत है। जिसका होना है उसका न होना है। जो है वह नहीं हो जाएगी। दुनिया खत्म हो गई है। अनंत खड्ढ आ गया। इटरनल एबिस है। नीचे कोई पार नहीं, ऊपर कोई पार नहीं, आगे शून्य का कोई हिसाब नहीं। घबड़ा गया, सिर घूम गया, झांक कर देखा, कभी बड़े पहाड़ से झांक कर नीचे देखा है? पर वह तो बड़े पहाड़ का कोई हिसाब ही लगाना मुश्किल है, वहां तो नीचे कोई फिर बॉटम ही न थी, कोई नीचे तलहटी न थी, नीचे शून्य था, शून्य था, शून्य था, शून्य के नीचे महाशून्य था, ऊपर भी वही, चारों तरफ वही, उस आदमी का सिर घूम गया, वह भागा लौट कर कि बचाओ मुझे, दुनिया का अंत तो मिल गया, लेकिन मैं अंत नहीं होना चाहता हूं। वह भागा लौट कर तख्ती के पास, तख्ती से भाग कर आगे आखिरी मंदिर है, वह रास्ते में पड़ा था, उसका पुजारी सामने मिला था, उस पुजारी ने कहा भी था कि मत जाओ, वहां जो भी जाता है लौट आता है, वहां बहुत घबड़ाहट है, वहां आगे जाना खतरनाक है। लेकिन नहीं रुका था, जाकर सीढ़ियों पर मंदिर की गिर पड़ा, वह पुजारी पंखा झलने लगा, पानी छिड़कने लगा, होश आया, पूछा कि लौट आए? उसने कहाः हे भगवान! क्या देखा? सब अंत हो जाता है, लौट आया। वह पुजारी कहने लगा, काश, एक कदम और आगे चले जाते। वह आदमी बोलाः पागल हो गए हो, इतने में ही मुश्किल हो गई, एक कदम आगे और, फिर लौटता कैसे, फिर तो सब समाप्त हो जाता।

उस पुजारी ने कहाः तुझे पता नहीं, तूने हिम्मत खो दी, अब फिर जन्म-जन्म
लग जाएंगे, तब तू उस तख्ती के पास फिर पहुंच पाएगा, बहुत मुश्किल है उस तख्ती के पास पहुंचना। तूने तख्ती के उस तरफ भी पढ़ा था? तख्ती के इस तरफ लिखा थाः हियर एण्ड्स दि वर्ल्ड। तूने उस तरफ भी देखा था? उसने कहाः घबड़ाहट में मैंने उस तरफ तो देखा ही नहीं, एकदम भागा। उसने कहाः उस तरफ लिखा था, हियर बिगिंस दि गॉड। इधर तख्ती के एक तरफ थाः गुजरात राज्य समाप्त होता है, तो उधर राजस्थान शुरू होगा न? उस तरफ भी पढ़ा था? न, उस तरफ तो घबड़ाहट में नहीं पढ़ा। उसने कहाः अब तू फिर खोज। उस तख्ती के दूसरी तरफ लिखा थाः यहां परमात्मा शुरू होता है। और अगर तू छलांग लगा जाता, तो दुनिया तो खत्म हो जाती, लेकिन परमात्मा शुरू हो जाता।
शून्य में छलांग। अहंकार आखिरी सीमा है। हियर एण्ड्स दि वर्ल्ड। वह
जो दि ईगो है, वह जो अहंकार है, वह जो मैं है, वह आखिरी तख्ती है, जिस पर लिखा हैः यहां खत्म होती है दुनिया। उसके उस तरफ शुरू होता है प्रभु। उसके उस तरफ शुरू होता है परमात्मा। लेकिन हम यहीं से वापस लौट आते हैं। धनी भी लौट आता है यहीं से, यशस्वी भी लौट आता है यहीं से, लेकिन वे क्षमा किए जा सकते हैं। धनी लौट आए, धन की गति कितनी? यशस्वी लौट आए, महत्वाकांक्षी लौट आए, उसकी गति कितनी? लेकिन ध्यानी भी अटक जाता है उसी जगह, योगी भी अटक जाता है उसी जगह। वह मैं की आखिरी सूक्ष्म रेखा, मैं साक्षी, मैं दृष्टा, मैं ब्रह्म, अहं-ब्रह्मास्मी, मैं ब्रह्म हूं, बस वह वहीं फिर अटक जाता है। एक छलांग, एक कदम, और बच रहता है कि मैं नहीं हूं। आइ एम नॉट। वह एक छलांग और लग जाए तो प्रभु में प्रवेश हो जाता है। जो शून्य होने को तैयार है, वह पूर्ण होने का अधिकारी हो जाता है। जो मिटने को राजी है, वह होने की पात्रता पा जाता है। बीज जब टूटता है और खोता है तो वृक्ष हो जाता है। बूंद जब मिटती है और विलीन होती है तो सागर हो जाती है। और जब यह छोटे से मैं की बूंद और मैं का बीज टूटता है, मिटता है, खोता है, समाप्त हो जाता है, वाष्पीभूत हो जाता है, तो वही रह जाता है जो है, जो सदा से है, जो कभी कहीं गया नहीं, वहीं है जहां था, जो सदा वहीं होगा जहां है। जिसके ऊपर बहुत सपने आते हैं और जाते हैं, लेकिन जो सपने के बाहर है। चांद आकाश में है, कुएं में फंसा नहीं। बहुत कोशिश हम कर रहे हैं निकालने की। विश्वास से निकालना चाहते हैं, नहीं निकलता; विचार से निकालना चाहते हैं, नहीं निकलता; ध्यान से निकालना चाहते हैं... निकलता भी है तो भी नहीं निकलता। और फिर शून्य में खो जाते हैं और पाते हैं वह निकला ही हुआ है।
वह कभी फंसा ही नहीं था, वह सदा बाहर है। अस्तित्व में खो जाना है परिपूर्णता से। लेकिन वही खो सकता है जो स्वयं के मैं की शून्यता को, नथिंगनेस को न होने को अनुभव कर लेता है। बस उसके आगे फिर कुछ कहने को शेष नहीं। उसके आगे कोई शब्द काम नहीं करते। उसके आगे कोई अर्थ नहीं, कोई दर्शन नहीं, कोई फिलॉसफी नहीं। उसके आगे कोई शास्त्र नहीं। शास्त्र वहीं तक हैं जहां तक परमात्मा नहीं हैं। शब्द वहीं तक हैं जहां तक परमात्मा नहीं हैं। सिद्धांत वहीं तक हैं जहां तक परमात्मा नहीं है। सिद्धांत, शास्त्र, शब्द, सब अहंकार की सीमा के भीतर हैं। और वह बाहर है, वह सपने की सीमा के बाहर हैं।
उसकी खोज में ये चार बातें मैंने कहीं। अंततः सब छोड़ कर, सब, स्वयं को भी, जो साहस जुटाता है वह उसे पा लेता है। उसे पा लेना अमृत है। उसे पा लेने पर फिर जन्म नहीं, मरण नहीं। उसे पा लेना आनंद है। उसे पा लेने पर फिर सुख नहीं, दुख नहीं, आनंद है। उसे पा लेने पर फिर कुछ पाने को शेष नहीं। उसे पा लेने पर फिर कुछ जानने को शेष नहीं। धन्य हैं वे जो मिट जाते हैं, क्योंकि वे उसे पा लेते हैं। और अभागे हैं वे जो मजबूत सख्त गांठ बन जाते हैं और सपने में ही डूबे रह जाते हैं और सत्य से उनका कभी कोई संबंध नहीं हो पाता है। प्रभु करे आप मिट सकें, ताकि प्रभु को पा सकें।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना उससे बहुत अनुगृहीत हूं।
और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

प्रभु मंदिर के द्वार पर
आठवां प्रवचन

स्वयं की खोज

चार दिनों की चर्चाओं के संबंध में बहुत से प्रश्न पूछे गए हैं। चार दिनों में बहुत से प्रश्न बिना उत्तर के भी रह गए हैं। तो आज मैं छोटे-छोटे प्रश्नों को और बहुत थोड़े-थोड़े में चर्चा करना चाहूंगा, ताकि ज्यादा से ज्यादा प्रश्नों के उत्तर आप तक पहुंच जाएं।

एक मित्र ने पूछा है कि यदि कोई ईश्वर को न माने और करुणा से जीए, तो क्या इतना पर्याप्त नहीं है?

इसमें दो बातें समझ लेनी जरूरी हैं। पहली बात तो यह, मैंने कभी कहा नहीं कि कोई ईश्वर को माने। ईश्वर को मानना आस्तिक का लक्षण नहीं है। ईश्वर को मानना सिर्फ अपने भीतर के नास्तिक को छिपाने की तरकीब है। सवाल ईश्वर को मानने का नहीं, जानने का है। और यह भी ध्यान रहे, कि जो उसे न जान ले उसके जीवन में सच्ची करुणा कभी भी नहीं हो सकती है। उसे जानने से ही करुणा का स्रोत खुलता है, प्रकट होता है।

एक और मित्र ने भी पूछा है कि करुणा, सेवा, समाज का कल्याण, यह सब करके क्या हम धार्मिक नहीं हो सकते हैं? परमात्मा को नहीं पा सकते हैं?

तो ठीक से समझ लेना जरूरी है कि सेवा तभी परिपूर्ण अर्थों में सेवा हो सकती है जब जीवन में प्रभु की तरफ संबंध जुड़ गया हो। अन्यथा सेवा भी स्वार्थ ही होगी। सेवा भी अहंकार की ही तृप्ति होगी, यश की कामना होगी। और सेवा के रास्ते से भी आदमी मालिक बनने की ही कोशिश करेगा।
इस देश में हम भलीभांति जानते हैं कि कितने सेवक किस भांति मालिक बन
गए हैं। और हर सेवक इस कोशिश में है कि कब मालिक बन जाए। सेवक ऊपर से होगा, भीतर तो मालिक होने की तलाश होगी। और या फिर यह भी हो सकता है कि सेवा इस जगत का कोई स्वार्थ न बने तो सेवा आगे के किसी जगत के लिए स्वार्थ बनेगी। करपात्री जी ने एक किताब लिखी है, और उस किताब में उन्होंने समाजवाद
के खिलाफ यह दलील दी है कि अगर समाजवाद आ गया और गरीब न रहे, भिखमंगे न रहे, तो दान किसको दोगे? और बिना दान के मोक्ष नहीं हो सकता है। तो मोक्ष जाना हो तो गरीबी रखनी बहुत जरूरी है, बचानी पड़ेगी। और मोक्ष जाना हो तो भिखमंगे बहुत आवश्यक हैं, वे ही सीढ़ियां हैं, जिनके सिर पर पैर रख कर मोक्ष जाया जा सकता है।
सेवा करने से मोक्ष मिलता है, अगर ऐसा हो, तो फिर ऐसे लोग बचाने होंगे जिन्हें सेवा की जरूरत है। नहीं, सेवा तो कोई कर ही नहीं सकता। जब तक उसका अहंकार विसर्जित न हो जाए, जब तक उसका मैं न मिट जाए। और जिसका मैं मिट जाता है वह प्रभु को जान लेता है। प्रभु को जान लेने पर ही, मैं और तू की दीवाल हट जाने पर ही सेवा संभव है। क्योंकि तब दूसरे का सुख मेरा सुख है, दूसरे का दुख मेरा दुख है। तब न मैं हूं, न दूसरा है, तब ही सेवा अर्थपूर्ण, सार्थक और गहरी हो सकती है। अन्यथा ऊपर से सिखाई गईं सेवाएं बड़ी खतरनाक हैं, और बहुत महंगी पड़ सकती हैं।
मैंने सुना है, एक स्कूल में एक पादरी बच्चों को समझाता है कि अगर तुम्हें स्वर्ग जाना है, ईश्वर के दर्शन करने हैं, तो सेवा करो। रोज एक सेवा का कृत्य तो करना ही चाहिए। वे बच्चे पूछते हैं, हम क्या सेवा करें? वह कहता है, अगर कोई पानी में गिर जाए, तो उसे बचाओ। किसी के घर में आग लग जाए, तो चाहे जान में जोखिम हो, उसे निकालो। किसी बूढ़े की, किसी बीमार की, जो भी सेवा बन सके, करो।
सात दिन बाद वह लौटा है उन बच्चों के पास और पूछता है, तुमने कोई सेवा की?

तीन बच्चे तीस में से हाथ हिलाते हैं। वह कहता है, फिर भी ठीक है, तीस में से तीन ने की, कोई हर्ज नहीं। पहले से पूछता है, क्या सेवा की तुमने? वह बच्चा कहता है, मैंने एक बूढ़ी औरत को रास्ता पार करवाया। वह कहता है, बहुत अच्छा किया। बूढ़े आदमियों को जरूर रास्ता पार करवाना चाहिए। दूसरे से पूछता है, बेटे तुमने क्या किया? वह भी कहता है, मैंने भी एक बूढ़ी औरत को रास्ता पार करवाया। उस पादरी को थोड़ा शक होता है, फिर ख्याल आता है, कोई हर्ज नहीं, बहुत बूढ़ी औरतें हैं, इसने भी करवाया होगा। वह तीसरे से पूछता है कि तूने क्या किया? वह कहता है, मैंने भी एक बूढ़ी औरत को रास्ता पार करवाया। वह पादरी कहता है, तुम तीनों को तीन बुढ़िया मिल गईं? वे तीनों कहते हैं, नहीं, तीन बुढ़ियां नहीं थीं, बूढ़ी तो एक ही थी, हम तीनों ने मिल कर ही पार करवाया है। वह पादरी कहता है, क्या बूढ़ी इतनी अशक्त थी कि तीन को पार करवाना पड़ा? वे तीनों कहने लगे, अशक्त? बूढ़ी बड़ी ताकतवर थी। बामुश्किल पार हुई। असल में वह पार होना ही नहीं चाहती थी। लेकिन आपने कहा कि सेवा करना जरूरी है, तो सेवा का कृत्य करना पड़ा।
दुनिया में सेवा करना अगर जरूरी बन जाए तो सेवा खतरनाक हो जाती है। और सेवक जितने मिसचिवियस सिद्ध हुए हैं, जितने उपद्रवी, उतना कोई उपद्रवी सिद्ध नहीं हुआ। दुनिया को सेवकों से भी बचाने की बड़ी जरूरत है। जितना दुनिया में, इतना उप्रदव फैला हुआ है, उसमें नब्बे परसेंट सेवकों के द्वारा है। ईसाई भी सेवा कर रहा है, मुसलमान भी सेवा कर रहा है, हिंदू भी सेवा कर रहा है, जैन भी सेवा कर रहे हैं। सब तरह के साधु सेवा कर रहे हैं, नये-नये तरह के स्वयं-सेवक सेवा कर रहे हैं। और सारी मनुष्य-जाति को अजीब-अजीब जालों में ढाल रहे हैं, उन्हें सेवा करनी है। और सेवा करनी बहुत जरूरी है, क्योंकि स्वर्ग जाने के लिए सेवा आवश्यक है।
नहीं, मैं नहीं कहता हूं, आप किसी की सेवा करें। जब तक आपको यह ख्याल
है कि मैं किसी की सेवा कर रहा हूं, तब तक मैं ही मजबूत होगा। इसलिए मैं नहीं कहता हूं कि सेवा से कोई परमात्मा को जान लेगा। हां, यह बात जरूर है कि कोई परमात्मा को जान ले, तो जीवन सेवा बन जाती है। लेकिन तब सेवा धंधा नहीं होती। और न तब सेवा सचेत होती है, और न तब सेवा का पता होता है कि मैं सेवा कर रहा हूं। न सेवा अहंकार बनती है। न सेवा पूजा की मांग करती है। और न सेवक मालिक होने की कोशिश करता है। तब सेवा ऐसी होती है जैसे श्वास चलती है, आदमी चलता है, जैसे उसकी छाया चलती है। ऐसे ही उस आदमी की जिसके जीवन में प्रभु की तरफ थोड़ी भी गति हुई है, सेवा भी उसके पीछे-पीछे चलने लगती है। सेवा धर्म नहीं है, लेकिन धार्मिक हो जाना जरूर सेवक हो जाना है। सेवा से कोई धर्म तक नहीं पहुंचता। लेकिन धर्म तक पहुंचा हुआ व्यक्ति का समग्र जीवन सेवा बन जाता है।
इन दोनों बातों को ठीक से समझ लेना चाहिए। और करुणा भी, करुणा भी उस हृदय में ही उत्पन्न होती है जिसका अहंकार विसर्जित हुआ हो। अहंकार के सिवाय और कोई कठोरता नहीं है। अहंकार के सिवाय, ईगो के सिवाय और कोई क्रूरता नहीं है। जितनी कठोरताएं, क्रूरताएं हैं, वे सब अहंकार से ही फलित हुई हैं।
एक आदमी धन इकट्ठा किए चला जा रहा है, क्या यह संभव है कि वह अपने चारों तरफ देखता हो कि धन के इकट्ठे होने से कितनी दीनता, कितनी दरिद्रता चारों तरफ पैदा हो रही है? नहीं, लेकिन वह आदमी करुणा कह कर धर्मशाला बनवाता है, मंदिर बनवाता है, यज्ञ करवाता है, हवन करवाता है। साधुओं का एक आश्रम खोल देता है। एक तरह का पिंजरा, पोल बना देता है। आदमियों का भी, गऊंओं का भी, और इसको, इसको करुणा, दान, दया, सेवा समझता है। और दूसरी तरफ धन खींचता चला जाता है। इस आदमी के जीवन में करुणा कहां है? करुणा हो तो यह धन खींचना कैसे संभव हो? फिर इस लाखों को खींचता है, थोड़े बहुत दान भी करता है। और दोनों... इस जगत में भी सुख की व्यवस्था करता है, उस जगत में भी सुख की व्यवस्था करता है।
नहीं, करुणा तो हो सकती है उस हृदय से प्रवाहित, वहां से बह सकती है, वहां से प्रवाहित हो सकती है जहां अहंकार का केंद्र टूट गया हो। और वह सिर्फ धार्मिक व्यक्ति का ही टूटता है।

इसलिए यह मत पूछें कि अगर हम करुणावान हैं, और धार्मिक न हों तो हर्ज क्या है? आप करुणावान बिना धार्मिक हुए हो ही नहीं सकते हैं। यह असंभव है। और अगर आप करुणावान हैं, तो मेरी दृष्टि में धार्मिक आप हो गए हैं। धार्मिक होने का यह अर्थ नहीं है कि कोई मंदिर में पूजा कर रहा है तो धार्मिक हो जाएगा। और न धार्मिक होने का यह अर्थ है कि किसी ने सुबह उठ कर गीता की कुछ पंक्तियां पढ़ ली हैं तो धार्मिक हो जाएगा। न धार्मिक होने का यह अर्थ है कि कोई हज कर आता है, काबा हो आता है, काशी हो आता है, तीर्थ कर आता है, धार्मिक होने का यह अर्थ नहीं है। सच तो यह है तीर्थों में और मंदिरों में अधार्मिक लोगों के सिवाए कोई भी जाता हुआ दिखाई नहीं पड़ता है। धार्मिक आदमी को वहां जाने की क्या जरूरत है? धार्मिक आदमी जहां है, वहीं मंदिर है, वहीं तीर्थ है।
रामकृष्ण के पास एक बार एक आदमी गया और कहने लगा कि मैं गंगा स्नान को
जा रहा हूं। आप मुझे आशीर्वाद दें कि मेरे पाप सब गंगा में बह जाएं। रामकृष्ण ने कहाः गंगा का इसमें क्या कसूर है? पाप तूने किए, गंगा का इससे क्या संबंध? तू गंगा पर क्यों नाराज? उस आदमी ने कहाः नाराज नहीं, मैंने सुना है, गंगा में नहाने से पाप सब बह जाते हैं। रामकृष्ण ने कहाः बह जाते होंगे। लेकिन एक बात ध्यान रखना, गंगा के किनारे बड़े-बड़े वृक्ष लगे हैं वे देखे हैं? जब तू पानी में डूबेगा, पाप निकल कर वृक्षों पर बैठ जाएंगे। लेकिन तू डूबा कब तक रहेगा, आखिर तू निकलेगा पानी के बाहर, वह पाप फिर तेरे ऊपर सवार हो जाएंगे। तो अगर तू गंगा में डूबा ही रहा, निकला ही नहीं, तब तो ठीक है; लेकिन निकला कि पाप फिर सवार हो जाएंगे। बेकार मेहनत मत कर, बेकार गंगा को तकलीफ भी मत दे। पाप करते वक्त किसी से पूछने नहीं गया--न गंगा से, न मंदिर से, न भगवान से, तो पाप को धोते वक्त भी किसी से पूछने जाने की जरूरत क्या है?
लेकिन आदमी बेईमान है। पाप खुद करेगा, धोने के लिए तीर्थ जाएगा। अशांत खुद होगा, शांत होने के लिए मंदिर को खोजेगा। गलती है यह। अशांति के कारण खोजने पड़ेंगे। अशांति मिटानी पड़ेगी, जैसे अशांति बनाई है। और पाप किया है मूर्च्छा में तो मूर्च्छा तोड़नी पड़ेगी कि पाप छूट जाए। गंगा और तीर्थ से कुछ होने वाला नहीं है।
अगर इसको आप समझते हों धार्मिक होना, तो धार्मिक होने की कोई भी जरूरत नहीं है। लेकिन यह धर्मिक होना ही नहीं है। धार्मिक होना तो बात ही और है। धार्मिक होना तो इस सत्य की खोज है कि यह जो शरीर दिखाई पड़ता है, यही सब कुछ है, या इससे ज्यादा भी कुछ है। यह जो बाहर फैलाव दिखाई पड़ता है, यही सब कुछ है या इस फैलाव के भीतर गहराई में भी कुछ है? धार्मिक होने का अर्थ है इस सत्य की खोज कि यह जीवन की जो चरम सातत्य चल रहा है, यह जो जीवन की कंटीन्यूटी है, यह जो अस्तित्व का अनंत प्रवाह है, इसका अर्थ क्या है? इसकी गहराई क्या है? इसका प्रयोजन क्या है? मैं कौन हूं? इस पूरे अस्तित्व से मेरा क्या संबंध है? धर्म की खोज क्रियाकांड और पाखंड की खोज नहीं है, धर्म की खोज अत्यंत वैज्ञानिक खोज है, वह सुप्रीम साइंस है, वह परम विज्ञान है, उससे बड़ा कोई विज्ञान नहीं है। जीवन के आखिरी गहरे से गहरे सत्य को खोजे बिना जो आदमी जीता है, वह आदमी कभी पूरे अर्थों में नहीं जीता, वह अधूरा जीएगा, ऊपर-ऊपर जीएगा, अपने भीतर वह जानता ही नहीं है, कौन है? क्या है? हमें सिवाय वस्त्रों के और कोई पहचान नहीं है। हम अपने कपड़ों के सिवाय और कुछ पहचानते हैं भीतर?
मैंने सुना है, एक तीर्थ में बड़ी भीड़ थी। एक फकीर भी उस तीर्थ में आकर ठहरा हुआ है। वह रात एक धर्मशाला में ठहरा है। बहुत भीड़-भाड़ है। धर्मशाला के मालिक ने कहा है, एक कमरे में एक आदमी ठहरा है, उसी में तुम भी ठहर जाओ। वह फकीर उसमें ठहर गया। वह पगड़ी बांधे है, कमीज पहने है, कोट पहने है, जूते पहने हैं, वह सब कपड़े पहने हुए बिस्तर पर लेट गया। उस कमरे में जो दूसरा मेहमान है, उसने कहाः आप इतने कपड़े पहने हुए सोएंगे, नींद न आ सकेगी। उस फकीर ने कहाः वह मैं भी जानता हूं, लेकिन कपड़े उतारना बहुत मुश्किल है। अपरिचित आदमी ने ज्यादा बात करनी ठीक न समझी। फिर वह फकीर रात में करवटें बदलने लगा, नींद उसे आती नहीं है--जूते पहने हुए है, पगड़ी पहने हुए है। कई

लोग जूते, पगड़ी पहने हुए सो रहे हैं। और इसलिए रात भर नींद नहीं आ रही। कई लोग दिन भर का कसाव साथ में लिए सो रहे हैं। कई लोग दिन भर का नाटक साथ में लिए सो रहे हैं, अभिनय साथ में लिए सो रहे हैं। वह आदमी भी सब कपड़े लिए सो गया है। पड़ोसी ने बार-बार कहा कि माफ करिए, आपको भी नींद नहीं आती, आप करवट बदलते हैं, मुझे भी नींद नहीं आती, आप कृपा करके ये कपड़े उतार दें, तो नींद आ जाए।
वह फकीर उठ कर बैठ गया, उसने कहाः वह मैं भी जानता हूं, लेकिन कपड़े उतारना बहुत मुश्किल है। अगर मैं अकेला होता तो दरवाजे बंद करके कपड़े उतार कर सो जाता, लेकिन आप भी यहां हो, और मैं कपड़ों के सिवाय मेरी पहचान नहीं, अगर कपड़े मैंने उतार दिए तो सुबह पता कैसे चलेगा, कौन कौन है? मैं मैं हूं कि तुम मैं हो, कौन कौन है? कपड़ों के सिवाय मैं किसी को पहचानता नहीं। बस यह कपड़ों से ही अपनी पहचान है। उस आदमी ने कहाः तो फिर ऐसा करो, कपड़े तो उतार दो, एक पास में एक घुनघुना पड़ा था, कोई पहले मेहमान ठहरे होंगे उनके बच्चे का, उस पड़ोसी ने कहा, इस घुनघुने को अपनी टांग से बांध लो, यह तुम्हारी पहचान रहेगी कि तुम ये रहे। सुबह उठ कर अपने कपड़े पहन लेना। फकीर ने कहाः यह बात जंचती है। बिना पहचान के आदमी खो सकता है। कोई रिकग्निशन चाहिए, कोई पहचान चाहिए। इसलिए तो आदमी अपने नाम लिखता है। ये- ये नाम, फिर एम ए है, बी टी है, एल एल बी है, डी लिट है, पद्मश्री है, रायबहादुर, ये सब घुनघुने हैं। जिनको बांध कर आदमी पहचानता है कि ये मैं हूं। बांध ले घुनघुना। उस आदमी ने घुनघुना बांध दिया। फकीर कपड़े उतार कर सो गया।
उस आदमी को रात मजाक सूझी। उसने चार बजे उठ कर वह घुनघुना फकीर के पैर
से निकाल कर अपने पैर में बांध लिया। सुबह छह बजे के करीब फकीर उठा और घबड़ा गया। घुनघुना पैर में नहीं है, बड़ी मुश्किल हो गई। मैं कौन हूं? उसने पड़ोसी को जोर से हिलाया और कहाः मुश्किल हो गई, इसी से मैं डरता था, वही हो गया। तुम्हारे पैर में घुनघुना है, इससे सिद्ध होता है कि तुम फकीर हो, लेकिन मैं कौन हूं? यह मुश्किल हो गई। अब मैं अपने को कैसे पहचानूं?
वह फकीर गहरी मजाक कर रहा होगा। वह सारी मनुष्यता पर हंस रहा था। हम
भी अपने को ऊपर के वस्त्रों और घुनघुनों के अतिरिक्त और कुछ जानते हैं? अगर कोई पूछे, कौन हैं आप? तो कह सकते हैं, अपना नाम, नाम बचपन में बांधा गया घुनघुना है, नाम लेकर कोई आता नहीं। नाम तो झूठा है, कल्पित है, ऊपर से चिपकाया गया है। आप तो नाम के बिना हैं, मैं तो नाम के बिना हूं, नाम तो लेकर कोई आया नहीं। आज मैं चाहूं अपना नाम बदल लूं, तो भी मैं नहीं बदल जाऊंगा। नाम बदल जाएगा। फिर डिग्रियां हैं, पदवियां हैं, यश है, मान है, सम्मान है, यह सबका सब बाहर से जुड़ा हुआ है। वस्त्रों से ज्यादा नहीं। भीतर मैं कौन हूं? वह कौन है जो जन्मा? वह कौन है जो जी रहा है? वह कौन है जो मृत्यु में विदा होगा? उसकी कोई पहचान नहीं है। धर्म की खोज उसकी खोज है, उस सत्य की जो हमारे जीवन का केंद्र और आधार है। अगर उसका हमें पता नहीं, तो हम धार्मिक नहीं हैं। चाहे हम मंदिर जाएं, चाहे हम पूजा करें, प्रार्थना करें, हमारा प्रभु के मंदिर में प्रवेश ही नहीं हो सकता। क्योंकि जिसे अभी यह ही पता नहीं कि मैं कौन हूं, वह क्या कह कर मंदिर में प्रवेश करेगा? वह क्या कह कर प्रभु के सामने जाएगा? वह क्या सूचना करेगा कौन आता है? उसे कुछ भी पता नहीं है। हम आदमियों के मकानों में जा सकते हैं, आदमियों के मंदिरों में जा सकते हैं, प्रभु के मंदिर में तो उसे खोज कर जाना पड़ेगा जो वस्तुतः मैं हूं।
स्वप्नहार, एक जर्मन विचारक, एक रात एक बगीचे में घूमने चला गया। आधी रात है, बगीचे के माली ने देखा कि कोई जोर-जोर से बातें कर रहा है, शायद दो लोग हैं बगीचे में। वह माली हैरान हुआ, आधी रात कौन आ गया? भाला उठा कर, लालटेन लेकर गया बगीचे में, जोर से चिल्लाया कौन है? स्वप्नहार जोर से हंसने लगा और उसने कहाः बड़ी मुश्किल में डाल दिया, यही तो मैं अपने से पूछ रहा हूं कि मैं कौन हूं? और कोई उत्तर नहीं मिलता। मैं तुझे क्या बताऊं, मुझे खुद ही अभी तक कोई उत्तर नहीं मिल सका है।

जरूर समझा होगा माली ने कि आदमी पागल है। लेकिन पागल कौन था? स्वप्नहार पागल था कि माली पागल था? कि हम पागल हैं? पागल कौन है? जिसे यह भी पता नहीं कि मैं कौन हूं, वह पागल नहीं है। हम सब पागल हैं। और स्वप्नहार बुद्धिमान था। कम से कम इतना तो उसे पता चल गया है कि मुझे यह भी पता नहीं कि मैं कौन हूं? इतना भी जिसे पता चल जाए कि मुझे पता नहीं मैं कौन हूं? उसकी एक खोज एक अन्वेषण, एक यात्रा शुरू हो जाती है। इस यात्रा का नाम तीर्थयात्रा है। तीर्थ भीतर है।

पूछा है एक मित्र नेः कहां है भगवान?

यह मत पूछें। पहले अपने को तो खोज लें। और मैं आपसे कहता हूं, जो अपने
को खोज लेता है वह फिर कभी नहीं पूछता कहां है भगवान? क्योंकि जहां स्वयं मिला वहीं भगवान भी मिल जाता है।
मैंने एक कहानी सुनी है। मैंने सुना है, जब पृथ्वी बनी, सारा सब कुछ बन गया, आदमी बना, आदमी को बनाते ही भगवान चिंतित हो गया। और उसने देवताओं से पूछा, मैं बड़ी मुश्किल में पड़ा हूं, यह आदमी बना तो दिया है, लेकिन यह हजार प्रश्न लेकर रोज दरवाजे पर खड़ा हो जाएगा। मैं इससे बचना चाहता हूं। मुझे कोई ऐसा जगह बताओ जहां मैं छिपा रहूं और यह आदमी मेरे पास न आ सके। देवताओं ने कहाः जाओ, एवरेस्ट पर छिप जाओ। भगवान ने कहाः तुम्हें पता नहीं, बहुत जल्दी हिलेरी पैदा होगा, तेनजिंग पैदा होगा, वे एवरेस्ट पर चढ़ जाएंगे। तो उन्होंने कहाः ऐसा करो, चांद पर चले जाओ। उन्होंने कहाः कुछ काम नहीं बनेगा, बहुत जल्दी रूस और अमरीका के अंतरिक्ष यात्री चांद पर पहुंच जाएंगे। इससे काम नहीं बनेगा। यह तो पल दो पल की बात है, थोड़े ही समय की बात है। आदमी मुझे पकड़ लेगा। मुझे कुछ ऐसी जगह बताओ जहां आदमी पहुंच ही न सके। तो एक देवता ने कान में भगवान के कहा, और भगवान मान गया। उस देवता ने कहाः फिर आप आदमी के भीतर छिप जाइए। वहां आदमी कभी नहीं पहुंचेगा। और भगवान वहां छिप कर बैठ गया है। कभी-कभी कोई आदमी पहुंचता है, आमतौर से कोई वहां नहीं पहुंचता। एक जगह छोड़ कर हम सब जगह जाते हैं, खुद को छा.ेड कर हम सब जगह हो आते हैं। जो निकटतम है वह सबसे दूर हो गई है जगह, जो अपने ही भीतर है वही सबसे दूर, बाहर हो गई है। जो मैं स्वयं हूं, उसे ही छोड़ कर सब इकट्ठा कर लेता हूं। खुद को खो देते हैं और सब पा लेते हैं। क्या है अर्थ इस पाने का जिसमें सब पा लिया जाए और स्वयं खो जाए? ऐसे ज्ञान का क्या मूल्य है जिसमें मैं अपने को न जान पाऊं और सब जान लूं?
स्वामी राम जापान गए हुए थे। एक मकान में आग लग गई है, हजारों लोग इकट्ठे हैं, बड़ा मकान है, टोकियो के बड़े धनपति का मकान है, लोग सामान ले-ले कर बाहर आ रहे हैं, मकान आग में जकड़ता चला जा रहा है। राम भी खड़े होकर देखते हैं, मकान का मालिक बाहर बेहोश खड़ा है, चार आदमी सम्हाले हुए हैं। उस आदमी की आंखें पथरा गई हैं, उसे कुछ सूझ नहीं रहा है। फिर आखिर में घर के भीतर से कुछ लोग आते हैं और उस मकान मालिक को कहते हैं कि कुछ और जरूरी चीज रह गई हो, तो आप बता दें? हम सब कागजात निकाल लाए हैं, तिजोरियां निकाल लाए, फर्नीचर निकाल लाए, सब निकाल लाए, जो भी मूल्यवान था हम ले लाए, अब कोई और जरूरी चीज रही हो तो बता दें। क्योंकि अब यह आखिरी मौका है कि हम भीतर जा सकें। फिर इसके बाद लपटों के भीतर जाना असंभव है। वह मालिक कहता है, मुझे कुछ भी याद नहीं आता, तुम खुद एक बार जाकर और भीतर देखो, जो जरूरी लगे वह और ले आओ।
वे लोग भीतर जाते हैं और फिर छाती पीटते हुए बाहर आते हैं। साथ में एक बच्चे की लाश लिए हुए हैं। और वे सब रोकर कहते हैं कि बड़ी गलती हो गई, हम तो सामान बचाने में लग गए और मकान मालिक का इकलौता बेटा भीतर ही सोया रह गया। मकान का मालिक, असली मालिक, जो कल होने वाला मालिक था, वह जल गया। और सामान सब बचा लिया।
राम ने अपनी डायरी में लिखाः आज जो देखा यही तो सब दुनिया में हो रहा है। आदमी अपने को छोड़ कर सब बचा लेता है। खुद जल जाता है, मालिक जल जाता है, सामान बच जाता है। आखिर में सामान का ढेर रह जाता है और आदमी खो जाता है।

धर्म कहता है, अपने को पहले बचाओ। वह जो स्वयं है पहले उसे जानो और खोजो, फिर बाकी सब गौण है, बाकी सब बाहर है, बाकी सब नॉन-एसेंशियल है, बाकी सब सारभूत नहीं है। सारभूत स्वयं है। धर्म का संबंध इससे है। इसलिए कोई यह न कहे कि हम धर्म से बच जाएं, तो हर्ज क्या है? धर्म से कोई भी नहीं बच सकता। धर्मों से बच जाएं, तो बड़ा फायदा है। धर्म से मत बचना, धर्मों से जरूर बच जाना। धर्मों से यानी हिंदू से, मुसलमान से, ईसाई से, जैन से, पारसी से, इनसे बचना। इनसे जो घिरेगा वह धर्म से परिचित न हो पाएगा। धर्मों में जो भटकेगा वह धर्म से बच जाएगा। और जिसे धर्म में जाना हो उसे धर्मों को नमस्कार कर लेना चाहिए। धर्मों से धर्म का कोई भी संबंध नहीं है। रिलीजंस जब तक जमीन पर हैं रिलीजन पैदा नहीं हो सकेगा। जब तक धर्मों की भीड़ है, तब तक धर्म का जन्म बहुत मुश्किल है। लेकिन जब भी किसी आदमी को खोजना हो, धर्मों को छोड़ कर धर्म की खोज में जाना चाहिए। क्यों मैं यह कहता हूं? मैं इसलिए यह कहता हूं कि धर्म तो एक ही हो सकता है।

एक मित्र ने पूछा है कि आप हिंदू, मुसलमान, ईसाई इनके खिलाफ क्यों बोलते हैं?

मैं इनके खिलाफ इसलिए बोलता हूं कि धर्म तो एक ही हो सकता है। धर्म हजार नहीं हो सकते। सत्य हजार नहीं हो सकते। यह ख्याल रखना, असत्य अनेक हो सकते हैं, सत्य एक ही हो सकता है। बीमारियां अनेक हो सकती हैं, स्वास्थ्य एक ही होता है। हम इतने लोग हैं यहां, अगर हम सब बीमार होने का तय करें, तो मैं अपने ढंग से बीमार हो जाऊंगा, आप अपने ढंग से, जितने आदमी हैं उतनी बीमारियां होंगी। हर आदमी अलग-अलग ढंग से बीमार हो जाएगा, लेकिन अगर हम सारे लोग स्वस्थ हो जाएं, परिपूर्ण स्वस्थ हो जाएं, तो मेरे स्वास्थ्य में और आपके स्वास्थ्य में रत्ती भर फर्क नहीं होगा। स्वास्थ्य बिल्कुल एक जैसा होगा। स्वास्थ्य का अनुभव तो एक होगा, बीमारी के अनुभव अनेक हो सकते हैं। धर्म का अनुभव तो एक है, चाहे बुद्ध को हो, चाहे महावीर को, चाहे मोहम्मद को, चाहे जीसस को, चाहे कृष्ण को, धर्म का अनुभव तो एक है। लेकिन धर्मों की ये अलग-अलग जमातें क्यों खड़ी हैं? ये धर्म के अनुभव पर नहीं खड़ी हैं, ये मनुष्य की धर्म की जो प्यास है, उसके शोषण पर खड़ी हैं। धर्मों का कोई संबंध परमात्मा से नहीं है। धर्मों का संबंध पुरोहित से है। और पुरोहित और परमात्मा के बीच कभी कोई दोस्ती नहीं रही, यह ख्याल रखना। पुरोहित और शैतान के बीच तो दोस्ती है, लेकिन पुरोहित और परमात्मा के बीच कोई दोस्ती नहीं है। हो भी नहीं सकती। परमात्मा और आदमी के बीच किसी एजेंट की, दलाल की कोई जरूरत नहीं है। सत्य और मनुष्य के बीच किसी की जरूरत नहीं है। खुद की आंखें खुली हों तो सत्य सामने हो जाता है। लेकिन जितनी बेईमानी का काम हो, चोरी का, शरारत का, उतने दलालों की जरूरत पड़ती है। अधर्म के लिए दलालों की जरूरत है।
मैंने सुनी है एक घटना, कि एक पादरी भागा चला जा रहा है तेजी से एक रास्ते के किनारे, एक चर्च में जाकर उसे व्याख्यान देना है। पड़ोस की खाई से जोर से आवाज आती है कि सुनिए, मैं मर रहा हूं, किसी ने मुझे छुरे मार दिए हैं, मुझे बचाइए। वह पादरी नीचे झांक कर देखता है, एक आदमी लहू में सराबोर पड़ा है, कोई ने छुरा भोंक दिया है, छुरा भी पास में पड़ा है। लेकिन पादरी को जल्दी जाना है चर्च में। वहां उसे प्रेम के ऊपर व्याख्यान देना है। और अगर वह इसकी बातों में उलझ गया, इसके इलाज में, तो झंझट में पड़ जाए, और कौन जाने, बचाने जाए और खुद उलझ जाए कि तुम्ही ने मारा है, या कोई और मुसीबत आ जाए। पादरी जोर से भागा। लेकिन वह आदमी चिल्लाया, उसने कहाः पादरी, मैं तुझे भलीभांति जानता हूं, उसी गांव का रहने वाला हूं, जिस गांव में तू भाषण करने जा रहा है। अगर मैं बच गया तो मैं गांव में खबर कर दूंगा कि यह प्रेम पर व्याख्यान देने की जल्दी में था और मैं मर रहा था, मुझे बचाने को भी नीचे नहीं उतरा। पादरी डरा, पादरी उतर कर नीचे गया, उस आदमी का मुंह पोंछा, मुंह पोंछते ही देखा कि यह तो पहचानी हुई शक्ल है। पादरी कुछ घबड़ाया, पादरी ने कहाः तुम पहचाने हुए मालूम पड़ते हो। उस आदमी ने कहाः जरूर मालूम

पडूंगा, पादरियों से अपना पुराना संबंध है, मैं शैतान हूं। तुम्हारे चर्च में मेरी तस्वीर भी लटकी हुई है। उस पादरी ने कहाः हे भगवान! मैंने तेरे खून में अपने हाथ डुबा कर बड़ा अपवित्र काम किया, तुझे बचाने का सवाल ही नहीं, तू तो मर जा तो अच्छा। तुझे मरने के लिए ही तो हम सारी कोशिश करते हैं। वह खिलखिला कर शैतान हंसने लगा, उसने कहाः नासमझ पादरी, तुझे कुछ पता नहीं है, जिस दिन मैं मर जाऊंगा, उसी दिन तू भी मर जाएगा। जब तक शैतान है, तब तक पादरी का धंधा है। जब मैं मर जाऊंगा, तू क्या करेगा? मुझे जल्दी बचा, भगवान के मरने से तुझे कोई नुकसान होने वाला नहीं है, लेकिन मैं अगर मर गया, तू तो गया। अगर मैं नहीं रहूंगा, तू क्या करेगा?
पादरी को ख्याल आया, बात तो सच है, अगर लोग बुरे न रहें तो उनको भले बनाने की कोशिश करने वालों का क्या होगा? उस पादरी ने उसको कंधे पर उठा लिया और कहाः भाई मर मत जाना, मैं तुझे ले चलता हूं अस्पताल, तुझे ठीक करने की कोशिश करता हूं। तूने अच्छा याद दिला दिया, यह तो बिल्कुल ठीक है। हमारा काम भगवान से क्या है? अगर सारे लोग भगवान को उपलब्ध हो जाएं, तो पादरी मर जाएगा। लेकिन सारे लोग शैतान के चक्कर में रहें, तो पादरी का काम चलेगा।
इसलिए दुनिया में जितनी बुराई फैलती है, चरित्रहीनता फैलती है, अधर्म फैलता है, उतना साधु-संन्यासी का धंधा ठीक से चलता है। यह मौसम, सी.जन आ जाता है। सी.जन की बातें हैं। आदमी बीमार पड़ता है, डाक्टर का सी.जन आ जाता है। आदमी की आत्मा बीमार पड़ती है, पादरी, पुरोहित, साधु-संन्यासी, महात्मा, सबका सी.जन आ जाता है। बड़े अजीब सी.जन हैं। और दिखता उलटा है, दिखता ऐसा है कि डाक्टर मरीज को ठीक करने के लिए जिंदा है, बिल्कुल इसी कोशिश में रहता है। ऊपर से डाक्टर बेचारा मरीज को ठीक करता है, भीतर से रोज भगवान से प्रार्थना करता है कि मरीज बढ़ते रहें। उलटे काम में लगा है डाक्टर भी। दिन-रात मरीज की सेवा करता है और भीतर से चाहता है कि मरीज बढ़ते रहें, बढ़ते रहें।
मैंने सुना है, एक होटल में एक रात बड़ी देर तक कुछ मित्र बैठ कर शराब पीते रहे, मांस खाते रहे। दो बजे रात विदा हुए, बहुत बड़ा बिल उन्होंने चुकाया। दुकानदार ने, शराब के मालिक ने अपनी पत्नी से कहा कि ऐसे दिलदार लोग रोज आने लगें, तो हमारी किस्मत चमक जाए। जाते हुए ग्राहकों ने कहाः हमें क्या है, हम तो रोज आएं, भगवान से प्रार्थना करो हमारा धंधा ऐसा ही रोज चमके, तो हम रोज आएं। उसने कहाः हम भगवान से प्रार्थना करेंगे, लेकिन पहले यह तो बता दो तुम्हारा धंधा क्या है? उस आदमी ने कहाः मैं मरघट पर लकड़ी बेचने का काम करता हूं। लोग रोज ज्यादा मरें, हमारा धंधा रोज चले, हम रोज आएं।
पादरी-पुरोहित का धंधा क्या है, साधु-संन्यासी का धंधा क्या है? आदमी बुरा है, आदमी चरित्रहीन है, आदमी भटका हुआ है, अंधेरे में है, इसको रास्ते पर लाना उनका धंधा है। शैतान से उनकी सांठ-गांठ है। पुरोहित ने खड़े किए हैं धर्म, धर्मों का यह जाल, पुरोहित का जाल है। हिंदू और ईसाई और मुसलमान पुरोहित के फासले हैं। आदमी कहीं बटां हुआ नहीं। भगवान आदमी को कैसे बांटेगा? भगवान अगर है कहीं कोई अनुभव वैसा, तो आदमी जुड़ेगा, इकट्ठा होगा। आदमी आदमी ही नहीं जुड़ेगा, आदमी पशु-पक्षी जुड़ेंगे; आदमी पशु-पक्षी ही नहीं, आदमी पत्थर और फूल भी जुड़ेंगे। जोड़ बढ़ता चला जाएगा। परमात्मा है अनंत का जोड़। लेकिन धर्मों के नाम पर आदमी खंडित है। खंड-खंड है, जरूर कहीं कोई गड़बड़ है। जरूर कहीं कोई गड़बड़ है। और वह गड़बड़ यह है कि धर्मों को हम धर्म समझ रहे हैं, वह भूल है। अगर आदमी को धार्मिक बनाना हो, तो उसे हिंदू, मुसलमान, ईसाई, सबसे मुक्ति चाहिए, उसका मनुष्य होना पर्याप्त है।

एक मित्र ने पूछा है कि आप जो बातें कहते हैं, वे नकारात्मक, निगेटिव मालूम पड़ती हैं।

निश्चित ही मैं जो बातें कहता हूं, वे नकारात्मक हैं। और नकारात्मक बातों के द्वारा ही आपके भीतर स्वयं की बुद्धि पैदा की जा सकती है, और कोई

रास्ता नहीं है। एक मूर्तिकार मूर्ति बना रहा हो, आप उसके पास खड़े होकर देखें वह क्या कर रहा है? मूर्ति बना रहा है, मूर्ति नहीं बनाता, सिर्फ छैनी-हथौड़ा उठा कर पत्थर के किनारों को तोड़ता है। आप उससे कहेंगे, तुम यह क्या कर रहे हो? मूर्ति बनाओ। तुम तो सिर्फ पत्थर के छिलके तोड़ रहे हो। तुम तो पत्थर के किनारे तोड़ रहे हो। वह आदमी कहेगा, मूर्ति तो पत्थर में छिपी है, मैं सिर्फ व्यर्थ पत्थर को झाड़ दूंगा, मूर्ति प्रकट हो जाएगी। मूर्ति बनानी नहीं पड़ती, सिर्फ व्यर्थ पत्थर को झाड़ना पड़ता है। मूर्ति तो भीतर छिपी है, वह प्रकट हो जाएगी। जब मैं नकारात्मक बातें कहता हूं, तो कुल कोशिश इतनी है कि वह जो व्यर्थ सबके चारों तरफ जुड़ गया है, सबकी प्रतिभा के आस-पास जो व्यर्थ जुड़ा है पत्थर, वह झड़ जाए, गिर जाए। उस पर छैनी-हथौड़े से चोट करनी है। और जो प्रकट होगा वह तो सबके भीतर है। उसे कोई दूसरा नहीं दे सकता। प्रतिभा कोई किसी को नहीं दे सकता। लेकिन प्रतिभा के आस-पास जो जाल है, वह तोड़ा जा सकता है।
समस्त शिक्षा का एक ही अर्थ है कि प्रत्येक के भीतर जो प्रतिभा छिपी है, वह कैसे अनकॅवर हो सके? वह ढंकी है, वह कैसे उघड़ सके? प्रतिभा तो सबके भीतर है, प्रतिभा किसी को देनी नहीं है। और अगर प्रतिभा देनी हो, तो फिर काम असंभव है। प्रतिभा कोई किसी को दे नहीं सकता। ज्ञान कोई किसी को दे नहीं सकता। सिर्फ अज्ञान छीना जा सकता है, तोड़ा जा सकता है, खंडित किया जा सकता है। अज्ञान छिन जाता है, ज्ञान प्रकट होता है।
मैं जो नकारात्मक बातें कह रहा हूं, जान कर कह रहा हूं, विचारपूर्वक
कह रहा हूं। सच तो यह है, धर्म की पूरी प्रक्रिया ही निगेटिव है, नकारात्मक है। क्योंकि धर्म आपके जो भीतर है उसे प्रकट करना चाहता है। धर्म आपको कुछ देना नहीं चाहता। धर्म आपसे कुछ छीन लेना चाहता है। आपसे कुछ तोड़ देना चाहता है, जो व्यर्थ है, ताकि सार्थक भर भीतर रह जाए। और सार्थक चमक जाए, व्यर्थ अलग हो जाए। हम सब व्यर्थ और सार्थक का जोड़ हैं। और हमारे ऊपर व्यर्थ की भारी परंपरा है। इतना व्यर्थ हमारे ऊपर थोपा गया है। इतनी किताबें, इतने संस्कार, इतनी परंपराएं, इतनी रूढ़िया हमारे मस्तिष्क पर बैठी हैं कि उस बोझ के कारण आदमी की आत्मा का उठना ही असंभव हो गया है। इस आदमी को व्यर्थ से मुक्ति दिलानी जरूरी है।
और ध्यान रहे, नकारात्मक के अतिरिक्त और कोई मुक्ति नहीं हो सकती। नकारात्मक मार्ग ही मुक्ति का मार्ग है। तोड़ना है, छोड़ना है, व्यर्थ को हटाना है, क्योंकि जो सार्थक है वह तो तोड़ा ही नहीं जा सकता। उसे कोई कितना ही तोड़े, तो भी वह नहीं टूटता। इसलिए बेफिकर रहो। नकारात्मक प्रक्रिया से गुजर कर सार्थक ही बच जाता है। जैसे सोने को हम आग में डाल दें, सोना नहीं डरता, हां, कोई नकली सोना बना लिया हो किसी वैद्य ने, तो मामला गड़बड़ हो सकता है। सोना नहीं डरता, लेकिन कोई आयुर्वेदिक चमत्कार से कोई तरकीब और होशियारी से, अगर कोई नकली सोना बना लिया हो तो, सोना डर भी सकता है, आग में जाने से। सोना नहीं डरता, सोना तो कहेगा डाल दो आग में, अच्छा है कचरा जल जाएगा, मैं बाहर निकल आऊंगा। जो हमारे भीतर सत्य है, वह नकार से नहीं डरता, निगेशन से नहीं डरता, आग से नहीं डरता। लेकिन जो असत्य है वह डरता है। वह कहता है नकारात्मक में तो मैं मर जाऊंगा। मुझे आग से बचाओ। सोना आग से निखर कर बाहर आता है। कचरा जल जाता है।
निगेशन जो है, नकार जो है, निषेध जो है, उससे गुजर कर आत्मा में जो व्यर्थ है वह हट जाता है और जो सार्थक है, जो सत्य है, वह शेष रह जाता है। इसलिए जिस व्यक्ति को भी सत्य की खोज में जाना हो, उसे नकार से गुजरना ही पड़ता है।
इसलिए मैं कहता हूं, जो नास्तिक नहीं हो सकता, वह कभी आस्तिक नहीं हो सकता है। नास्तिक हुए बिना कभी कोई आस्तिक नहीं हो सकता है। नास्तिकता की आग से गुजर कर आस्तिकता निखरती है। उसमें तेज आता है, उसमें बल आता है। आस्तिकता साफ-सुथरी होती है, आस्तिकता स्पष्ट होती है।
लेकिन हम इतने डरे हुए लोग हैं कि नास्तिकता से डरते हैं। और झूठे आस्तिक बन कर बैठ जाते हैं। सारी पृथ्वी पर दो तरह के लोग हैं, झूठे आस्तिक हैं, इनकी संख्या भारी है, इनकी संख्या इतनी बड़ी है कि सारी पृथ्वी को

उन्होंने खतरे में डाल दिया है। झूठे आस्तिक, जो नास्तिक होने से डर गए। नास्तिकता से गुजरने से डर गए। ऐसा सोना जिसने आग में जाने से इनकार कर दिया। वह सोना तभी दीन-हीन हो गया जब आग में जाने से इनकार कर दिया। दूसरे कुछ थोड़े से नास्तिक हैं, जो नास्तिकता पर ही रुक गए हैं। अगर... सोना आग से गुजरना चाहिए, आग में रुक नहीं जाना चाहिए। आग में रुक गया सोना, तो बेमानी हो गया। आग से गुजरना है, रुकना नहीं है। नास्तिकता में रुक गया जो, वह भी व्यर्थ हो गया। नास्तिकता से गुजरना है ताकि वह शेष रह जाए और बाहर आ जाए, जो आस्तिकता है, जो सत्य है, जो वास्तविक है, जो नहीं जलता, जो नहीं मिटता। दो तरह के लोग हैं, एक जो आग से गुजरते ही नहीं, एक जो आग में ही बैठ कर
रह जाते हैं, और पृथ्वी परेशानी में पड़ गई है। आग से प्रत्येक को गुजरना चाहिए। मैंने जो चार दिन बातें कहीं, वह निषेध की, इसीलिए कहीं कि प्रत्येक की प्रतिभा इस आग से गुजरे। डरते क्यों हैं हम? डरता वही है जिसने कुछ असत्य पकड़ रखा है। सत्य हो फिर डर की कोई वजह नहीं है, कोई भय नहीं है। निषेध मार्ग है विधेय को पाने का। निगेशन... वह पाजिटिव जो है, उसको पाने का रास्ता है। निषेध से गुजरना ताकि विधेय को पा सको। इनकार करना सीखना, ताकि किसी दिन हां कह सको। जिसने कभी "नो" नहीं कहा, उसके "यस" का कोई मूल्य नहीं। उसका यश एकदम इंपोटेंट होगा। उसके यश में कोई बल नहीं हो सकता। उसके यस में कोई सामर्थ, कोई शक्ति, कोई साहस नहीं हो सकता। कहना, इनकार करना, ताकि किसी दिन हां कहने की शक्ति आ सके। और जब इनकार कहने वाला किसी दिन हां भरता है, उसका हां उसके जीवन का रूपांतरण हो जाता है। क्रांति हो जाती है।

एक मित्र ने पूछा हैः पंडितों, गुरुओं, रूढ़ियों, इन सबके विरोध में आप बोलते हैं, लेकिन कहीं ऐसा तो न हो जाए कि आपकी भी एक रूढ़ी बन जाए? एक संप्रदाय बन जाए?

यह डर वास्तविक है। यह खतरा पक्का है। यह खतरा इसलिए पक्का है कि आदमी बिल्कुल पागल है। आदमी इतना अजीब है कि जिन्होंने रूढ़ियां तोड़ने की कोशिश की उनकी भी उसने रूढ़ियां बना ली हैं। बुद्ध ने लोगों को समझाया कि तुम स्वयं हो जाओ, और करोड़ों लोग बौद्ध बने बैठे हैं। अगर बुद्ध कहीं होंगे, तो अपना सिर ठोकते होंगे कि यह क्या पागलपन है? मैंने समझाया कि तुम स्वयं हो जाओ, अपने दीये बनो, और वे कहे रहे हैं कि हम "बुद्धं शरणं गच्छामि" हम बुद्ध की शरण जाते हैं। बुद्ध कहते हैंः तुम किसी की शरण मत जाना, क्योंकि तुम्हारे भीतर वह बैठा है जिसको किसी की शरण जाने की कोई जरूरत नहीं, वह स्वयं आत्म-शरण है। वे कह रहे हैंः बुद्धं शरणं गच्छामि। बुद्ध कहते हैं, किसी की पूजा मत करना, किसी की मूर्ति मत बनाना। दुनिया में बुद्ध की जितनी मूर्तियां हैं उतनी किसी और की नहीं। उर्दू में तो शब्द बन गया है, बुत। बुत शब्द बुद्ध का ही अपभ्रंश है। इतनी मूर्तियां बन गईं कि जब अरब मुल्कों में मूर्तियां पहुचीं, तो वे बुद्ध की ही मूर्तियां थीं, लोगों ने पूछाः यह क्या है? तो लोगों ने कहाः बुद्ध। तो वे समझे कि बुद्ध यानी मूर्ति। इसलिए बुत शब्द बन गया। बुद्ध का ही रूप है बिगड़ा हुआ बुत। बुतपरस्ती, बुद्धपरस्ती का ही रूप है। और जिस आदमी ने मूर्ति का विरोध किया, उसकी इतनी मूर्तियां बन गईं!
चीन में एक मंदिर है, दस हजार बुद्धों का मंदिर। उसमें, एक मंदिर में
दस हजार बुद्ध की मूर्तिंयां हैं। अगर बुद्ध कहीं होंगे, तो उनकी क्या हालत होती होगी? कि यह क्या हो रहा है? महावीर नग्न रहे, सब छोड़ दिया, कुछ भी पास न रखा; महावीर के अनुयायियों के पास जाकर देखें, जितना पैसा इस मुल्क में उन्होंने इकट्ठा कर रखा है, उतना किसी के पास नहीं है। आश्चर्यजनक है! हैरान करने वाली बात है!
मैं जिस गांव में रहता हूं, मेरे एक परिचित हैं, उनकी एक दुकान है। महावीर तो नग्न रहे, तो उनकी नग्नता के कारण उनको दिगंबर कहा गया--कि जिनका आकाश ही वस्त्र है। मेरे मित्र हैं, मेरे गांव में उनकी दुकान का नाम पता है? उनकी दुकान का नाम हैः दिगंबर क्लॉथ स्टोर। नंगों की कपड़ों की दुकान।

महावीर की याददाश्त में वे दुकान खोले हुए हैं कपड़ों की। वह बेचारा नंगा रह कर मर गया और ये कपड़े बेच रहे हैं? थोड़ा आश्चर्यजनक है। लेकिन ऐसा ही हुआ है, ऐसा ही हुआ है। इस्लाम का अर्थ हैः शांति का धर्म। इस्लाम शब्द का अर्थ हैः शांति, पीस। और इस्लाम मानने वालों ने जितनी अशांति दुनिया में फैलाई, उतनी किसी और ने नहीं फैलाई। आश्चर्य! यह क्या होता है दुनिया में? जीसस कहते हैं कि तुम्हारे गाल पर कोई एक चांटा मारे, तुम दूसरा उसके सामने कर देना। लेकिन जितनी तलवार ईसाईयों ने चलाई, जितनी आग ईसाईयों ने लगाई, जितने लोगों को उन्होंने मारा, उसका हिसाब लगाना मुश्किल है कि उन्होंने कितनी हत्या की। कुछ है बात ऐसी, आदमी इतना नासमझ है कि जिस बात को तोड़ने के लिए कहा जाए, वह उसी को मजबूत करता चला जाता है। अब तक यही हुआ है। लेकिन आगे यह नहीं होना चाहिए। यह बहुत घातक सिद्ध हुआ है। और जिन चीजों से हम परेशान होते हैं, जिनसे हम दुखी होते हैं, हम हैरान होते हैं कि हम फिर उसी तरह की चीजें बना लेते हैं, फिर उसी तरह की भ्रांति कर लेते हैं।
अमरीका में एक मनोवैज्ञानिक ने तलाक के ऊपर अध्ययन किया है। डाइवोर्स पर। उसने एक आदमी के पूरे जीवन का अध्ययन किया, जिसने आठ बार तलाक दिए। पहली बार पत्नी बदली, फिर छह महीने बाद दूसरी पत्नी लाया, फिर वह... ऐसा आठ बार उसने जिंदगी में पत्नियां बदलीं। और आठ बार के निरंतर अध्ययन से जो पता चला, वह बड़ी हैरानी की बात थी। वह यह थी कि हर बार पत्नी से परेशान होकर उसने पत्नी बदली, और दूसरी बार उसने जो पत्नी चुनी वह फिर वैसी की वैसी थी जैसी उसकी पहली पत्नी थी। तब मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि वह चुनने वाला आदमी वही है न, वह तो बदलता नहीं, पत्नी बदल लेता है, लेकिन वह चुनने वाला तो वही है, फिर वैसी हीेपत्नी चुन लाता है। फिर पत्नी बदल देता है। लेकिन चुनने वाला फिर वही है। वह फिर वैसी ही पत्नी चुन लाता है। आदमी वही है। अगर राम को छीन लो, वह बुद्ध को पकड़ लेगा; अगर बुद्ध को छीन लो, वह कृष्ण को पकड़ लेगा। अगर सबको छीन लो, जीसस को, मोहम्मद को, तो वह स्टैलिन को पकड़ लेगा, माओ को पकड़ लेगा, किसी न किसी को पकड़ लेगा। वह आदमी का दिमाग पकड़ने वाला है।
मैं जो कह रहा हूं वह यह नहीं कह रहा हूं कि आप दूसरों को छा.ेड दें और मेरी बात को पकड़ लें। मैं यह कह रहा हूं कि पकड़ना गलत है। पकड़ें ही मत। आप अकेले काफी हैं। किसी को पकड़ने की किसी को कोई जरूरत नहीं है। लेकिन भूलें हम ऐसी करते हैं।
मैंने सुनी है एक कहानी, एक बहुत अदभुत फकीर हुआ है, मुल्ला नसरुद्दीन। वह अपने झोपड़े में बैठा हुआ है, उसकी पत्नी उस पर बहुत नाराज हो रही है। वह उससे कह रही है कि तुमने जिंदगी गंवा दी, न मेरे लिए एक नई साड़ी ला पाते हो, न एक नया गहना खरीद पाते हो। जिंदगी खराब हो गई। यह क्या भगवान की पूजा-प्रार्थना लगा रखी है? अगर किसी आदमी की भी नौकरी करते, तो भी कुछ मिलता, यह भगवान की नौकरी में कुछ भी तो नहीं मिला? मुल्ला नसरुद्दीन कहता है, पागल, कैसी बातें कर रही है, सब भगवान के वहां बैंक में मेरा जमा होता जाता है, जब चाहूंगा ले लूंगा। अभी लिया नहीं इसलिए नहीं मिला। उसकी औरत उसको गुस्से में ला देती है, और कहती है, अच्छा, आज ले ही आओ। जाओ कुछ तो लेकर आओ, मैं समझूं कि भगवान की दुनिया से भी कुछ मिलता है। मुल्ला ताव में आ गया है, वह बाहर निकल आया, उसने जोर से आकाश की तरफ हाथ करके कहा कि बहुत दिन हो गए, इतना जमा हो गया, एक हजार रुपये फौरन भेज! बगल में सेठ है, वह सारी बकवास सुन रहा है, पति और पत्नी की। उसको हंसी सूझी, मजाक सूझा। उसने सोचा, हजार रुपये क्यों न फेंक दूं, बड़ा मजा आ जाएगा। हजार रुपये की थैली बगल के पड़ोसी ने उसके आंगन में फेंक दी। मुल्ला ने थैली उठाई और भगवान से कहाः धन्यवाद! बाकी जमा रखना। जब जरूरत होगी ले लेंगे।
थैली लेकर भीतर गया। पत्नी भी चकित हो गई, कि आश्चर्य! हजार रुपये उसने सामने पटक दिए, कि ले! बगल के पड़ोसी ने सोचा कि दस-पंद्रह मिनट मजा ले लेने दो, फिर जाकर कह देंगे कि मजाक किया। लेकिन दस पंद्रह मिनट में तो देखा कि मुल्ला का नौकर बाजार से बैलगाड़ियों में सामान लादे हुए, खरीदे

चला आ रहा है। तो वह सेठ डरा कि यह तो... कहीं लंबी मुश्किल न हो जाए? वह भागा हुआ आया उसने कहाः भई, बहुत हो गई मजाक, रुपये वापस कर दो। रुपये मैंने फेंके हैं।
मुल्ला ने कहाः पागल हो गए हो, तुमने बराबर सुना होगा, मैंने भगवान से कहा, हजार रुपये भेजो, फिर मैंने धन्यवाद दिया। तुमने कैसे फेंके? उस सेठ ने कहाः मजाक, मजाक की बात है, बात खत्म करो, रुपये वापस करो। कहीं भगवान रुपये फेंकता है? मुल्ला ने कहाः आश्चर्य, मेरे अपने जमा थे, वे मैंने लिए हैं, तुम कहां से बीच में आ गए? सेठ को लगा कि मुल्ला पैसे वापस देगा नहीं। सेठ ने कहाः तो फिर काजी के पास चलो। हजार रुपये का मामला है। सिर्फ मजाक में मैंने फेंके थे।
मुल्ला ने कहाः मैं ऐसे काजी के पास नहीं जा सकता। मैं गरीब आदमी, मेरे कपड़े फटे हुए। तुम शानदार घोड़े पर बैठ कर पगड़ी-कोट डांट कर जाओगे। काजी तुमसे प्रभावित हो जाएगा। न्यायाधीश हमेशा पैसे वालों से प्रभावित हो जाता है। मैं ऐसे नहीं जाऊंगा। वह कहेगा, यह गरीब आदमी, इस पर हजार रुपये कहां से आएंगे? झूठ बोल रहा है। तुम्हारी बात मान ली जाएगी। मैं नहीं जा सकता। अगर तुम अपने कपड़े मुझे दो और घोड़ा मुझे दो, तो मैं चल सकता हूं। सेठ ने कहाः अच्छी बात है, हजार रुपये वापस लेने हैं, तो यह भी करना पड़ेगा।
कपड़े मुल्ला को दिए, मुल्ला के कपड़े सेठ ने पहने। सेठ के घोड़े पर मुल्ला सवार हुआ, सेठ पैदल चला। अदालत में पहुंचे। मुल्ला ने चिल्ला कर नौकरों को कहाः घोड़े को सम्हालो; पानी रखो, घास डालो, ताकि अंदर मजिस्ट्रेट ठीक से सुन ले कि जो आदमी आया है वह घोड़े वाला है, वह साधारण आदमी नहीं है।
अदालतें घोड़ों से प्रभावित होती हैं, आदमियों से थोड़े ही प्रभावित होती हैं। वह भीतर गया, सेठ बेचारा गरीब हैसियत में उसके बगल में जाकर खड़ा हो गया। मुल्ला ने कहाः कहो, क्या अदालत से कहना चाहते हो? अदालत तो वैसे ही डर गई। सेठ ने कहा कि हजार रुपये मैंने मजाक में फैंके हैं। यह आदमी भगवान से कह रहा था कि हजार रुपये भेजो। कहीं भगवान रुपये भेजता है? मैंने मजाक में फेंक दिए कि थोड़ी देर का मजा होगा, फिर वापस ले आऊंगा। यह आदमी बदल गया। यह कहता है कि रुपये मेरे हैं, भगवान ने ही फेंके हैं। मजिस्ट्रेट ने पूछा कि आप क्या कहते हैं? मुल्ला से पूछा। मुल्ला ने कहा कि मैं और क्या कहूं, इतना ही कह सकता हूं कि इस सेठ का दिमाग खराब हो गया है, यह हर चीज अपनी बताता है। पूछिए, ये कपड़े किसके हैं? यह घोड़ा किसका है? यह कहेगा, इसी के हैं। सेठ ने कहाः और क्या तेरे हैं, मेरे तो हैं ही। मजिस्ट्रेट ने कहाः मुकदमा बरखास्त, सेठ तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। वह सेठ यह न समझ पाया कि जो आदमी हजार रुपये भगवान की अदालत से वसूल करता है, ऐसा बेईमान और चालाक आदमी। जो आदमी हजार रुपये मजाक में लिए अपने बताता है, उसको घोड़ा और कोट देना और भी खतरनाक है, यह भी चला जाएगा।
जिन गलतियों में हम एक बार गुजरते हैं, भूल जाते हैं कि उन्हीं गलतियों में हम गुजरते ही चले जाते हैं। हमें याद ही नहीं रहता कि हम पुनरुक्तियां कर रहे हैं उन्हीं गलतियों कीं। और आदमी पुनरुक्ति ही किए चला जाता है। जिन धोखों में हम कल फंसे थे, उन्हीं धोखों में हम फिर आज फंस जाते हैं। नाम बदल जाता है धोखे का और हम फंस जाते हैं। शक्ल बदल जाती है धोखे की और हम फंस जाते हैं। धोखेबाज बदल जाता है और हम फंस जाते हैं। तरकीब बदल जाती है और हम फंस जाते हैं।
कुछ समझ लेना चाहिए कि हम किन-किन धोखों में आज तक फंसे हैं? मनुष्यता किन-किन में फंसी है? और आगे भी फंस सकती है। पहली बात, मनुष्यता संगठन के धोखे में फंसती रही है हमेशा से। ऑर्गनाइजेशन का धोखा। जब भी संगठन होगा, आदमी खतरे में पड़ेगा। संगठन हमेशा खतरनाक है। वह किसी का भी संगठन हो--वह हिंदू का हो, मुसलमान का हो, गांधीवादी का हो, साम्यवादी का हो, संगठन खतरनाक है। क्यों? क्योंकि संगठन व्यक्ति को मिटाता है और भीड़ को खड़ा करता है। व्यक्ति की आत्मा को पोंछता है और यंत्र को मजबूत बनाता है। वह कहता है कि तुम नहीं हो, मुसलमान है; तुम नहीं हो कम्युनिस्ट है; तुम नहीं हो,

व्यक्ति नहीं है, हिंदू है, ब्राह्मण है, जैन है। व्यक्ति को पोंछता है संगठन। व्यक्ति की आत्मा को पोंछता है। भीड़ को इकट्ठा करता है। यंत्र को मजबूत करता है। व्यक्ति को डुबाता है, यंत्र को बढ़ाता है।
आज तक आदमी संगठनों में फंस कर नष्ट हुआ है। आदमी ने अपनी आत्मा खोई
है संगठनों में जाकर। दुनिया में जितना उपद्रव संगठनों के कारण हुआ है किसी और कारण नहीं हुआ। कभी सोचें आप, अगर ऐसी दुनिया बन सके जिसमें संगठन न हों--हिंदू, मुसलमान, कम्युनिस्ट, सोशियलिस्ट फैसिस्ट न हों--कोई संगठन न हो, व्यक्ति हों दुनिया में, तो दुनिया में युद्ध हो सकते हैं? व्यक्ति हों दुनिया में, तो दुनिया में कत्लेआम हो सकते हैं? व्यक्ति हों दुनिया में, तो हिंदुस्तान-पाकिस्तान हो सकते हैं? व्यक्ति हों दुनिया में, तो मस्जिद और मंदिर की दुश्मनी हो सकती है? व्यक्ति हों दुनिया में तो प्रेम हो सकता है।
संगठन जब तक दुनिया में होंगे, घृणा होगी, और कुछ भी नहीं हो सकता। उसका कारण है, क्योंकि संगठन घृणा पर जीता है। संगठन बिना घृणा के खड़ा ही नहीं होता। ध्यान रहे, प्रेम का कोई संगठन नहीं होता, सब संगठन घृणा के संगठन हैं। हालांकि मुसलमान कहते हैं कि हम एक-दूसरे को प्रेम करते हैं, इसलिए इकट्ठे हैं। हिंदू कहते हैं, हम एक-दूसरे को प्रेम करते हैं, इसलिए इकट्ठे हैं। भारतीय कहते हैं, हम एक-दूसरे को प्रेम करते हैं, इसलिए इकट्ठे हैं। लेकिन ये झूठी बातें हैं।
ध्यान रहे, भारत पर चीन का हमला हो जाए, फिर देखो, संगठन कैसा मजबूत होता है? चीन का हमला होता है तो भारतीय संगठित होते हैं, पाकिस्तान का हमला होता है तो भारतीय संगठित होते हैं। फिर हमला खत्म हुआ, संगठन ढीला हुआ। फिर गुजराती और मराठी नहीं लड़ते जब चीन का हमला होता है, तब गुजराती- मराठी भाई-भाई हो जाते हैं। फिर चीन का हमला खत्म हुआ, फिर गुजराती मराठी से लड़ता है, हिंदी गैर-हिंदी से लड़ता है। क्यों? घृणा पैदा हो गई। चीन दुश्मन है, कॉमन एनिमी है, एक सामान्य दुश्मन है, उससे लड़ो, घृणा पैदा हो गई, हम इकट्ठे हो गए। घृणा खत्म हो गई, संगठन खत्म हो गया। संगठन जारी रखना हो, घृणा जारी रखो।
एडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्म-कथा में लिखा हैः अगर कोई भी संगठन बनाना हो, तो घृणा पैदा करो, खतरा पैदा करो, दुश्मन पैदा करो। अगर असली दुश्मन न मिले, नकली दुश्मन पैदा करो। असली खतरा न हो, नकली खतरा पैदा करो। ऐसे ही तो खतरे पैदा किए जाते हैंः इस्लाम खतरे में है! पता ही नहीं चलता इस्लाम पर क्या खतरा हो सकता है? हिंदू धर्म खतरे में है! क्या खतरा हिंदू धर्म पर हो सकता है? और खतरे में है तो होने दो, जाने दो, फायदा क्या है? डूबने दो हिंदू को भी, मुसलमान को, ईसाई को भी। नहीं, लेकिन इस्लाम खतरे में है! खतरा पैदा करो, मुसलमान को घबड़ाओ, बताओ कि दुश्मन मौजूद तैयारी कर रहा है। हिंदू छुरे पर धार रख रहा है। बस फिर मुसलमान भी छुरे पर धार रखेगा, संगठित हो जाएगा। फिर संगठन झगड़े लाएंगे, उपद्रव लाएंगे।
हम संगठन बदल लेते हैं लेकिन संगठन को नहीं मिटाते। पुराना संगठन छोड़ते हैं नये संगठन में खड़े हो जाते हैं। पर संगठन जारी रहता है। क्या ऐसी दुनिया नहीं बन सकती जहां संगठन न हों? इसका यह मतलब नहीं है कि रेलवे का संगठन न हो, पोस्ट-आफिस का संगठन न हो, वह संगठन नहीं है। वह तो सिर्फ कामचलाऊ व्यवस्थाएं हैं। लेकिन आइडियोलॉजी के संगठन नहीं होने चाहिए। सिद्धांत के संगठन नहीं होने चाहिए। संगठन एक जड़ रही है आदमी को नष्ट करने की। उसमें आदमी मिट जाता है, व्यक्ति समाप्त हो जाता है, भीड़ रह जाती है। यह मिटाना होगा, एक।
दूसरी बात, यह माना जाता रहा है, यह अब तक माना जाता रहा है कि हर आदमी
को किसी ढांचे में बंधा हुआ होना चाहिए, किसी पैटर्न में। किसी आदमी को मुक्त नहीं होना चाहिए। और जो आदमी भी जितना ढांचे में बंधा होगा, उतना ही जड़ होगा। उतनी ही उसके भीतर चेतना कम होगी। रूढ़ियों का मतलब हैः ढांचे। और ढांचों में बंधने का आग्रह इतना पुराना है कि बच्चा पैदा हुआ कि हमने ढांचा बिठालना शुरू किया। हम किसी बच्चे को वही नहीं बनने देना चाहते जो वह बन सकता है। हम कहते हैं, हम तुम्हें जो बनाएं, वह तुम बनो। हम बच्चे से

कहते हैं, गांधी जैसे बनो। क्यों? किसी बच्चे का कोई कसूर है? वह क्यों गांधी जैसा बने? महावीर जैसे बनो, बुद्ध जैसे बनो। कोई बुद्ध ने या महावीर ने कोई ठेका ले रखा है कि हर आदमी उन जैसा बने। और कोई चाहे तो भी बन सकता है। महावीर बहुत अदभुत हैं, गांधी भी बहुत अदभुत हैं, राम भी बहुत अदभुत हैं, लेकिन कोई दूसरा राम जैसा क्यों बने? क्या जरूरत है? और अगर बहुत राम होंगे, तो ध्यान रहे, राम अकेले राम होने का मजा भी चला जाएगा।
एक गांव में, सोचें अहमदाबाद में, सब राम जैसे हो गए, तो ऐसी जिंदगी बोरिंग हो जाएगी, इतनी घबड़ाहट होने लगेगी, जहां जाओ वहीं धनुषबाण लिए हुए राम मिल जाएं, ऐसी घबड़ाहट हो जाएगी कि वे सब राम मिल कर तय करेंगे कि हम आत्महत्या कर लें, क्योंकि यहां जीना बहुत मुश्किल हो गया है। राम का अकेला होना ही सुंदर है। राम की भीड़ खड़ी करने की कोई जरूरत नहीं। और कोई कितनी ही कोशिश करे, राम की भीड़ खड़ी हो भी नहीं सकती है। सच बात यह है कि एक आदमी जैसा दूसरा आदमी कभी भी नहीं हो सकता है। लेकिन होने की कोशिश में आदमी मर जाता है, नष्ट हो जाता है, मुर्दा हो जाता है, जीवंत नहीं रह जाता। कितने हजार वर्ष हुए राम को हुए? कितने लोग राम हो गए? राम-राम जप कर कितने लोग राम हो गए? हां, कुछ लोग राम हो जाते हैं, रामलीला के राम, उनसे कोई मतलब नहीं है, उनका कोई प्रयोजन नहीं है। लेकिन राम, राम अकेला है। सब दुनिया में हर व्यक्ति अपने जैसा ही है। बच्चे को यह कहना कि तू कोई ढांचा स्वीकार कर और ऐसा हो जा, बच्चे की हत्या करनी है। मां-बाप जितना अनाचार बच्चों के साथ किए हैं उतना दुनिया में कोई दूसरे ने किसी पर अनाचार नहीं किया है। समाज जितना आने वाले व्यक्तियों पर, नई पीढ़ियों पर अनाचार करता है, उसका हिसाब लगाना मुश्किल है। सब ढांचे में ढालने की कोशिश चलती है। अगर रूढ़ियों से बचना हो और एक मुक्त चेतना पानी हो, तो कभी भी दूसरे जैसे बनने की कोशिश मत करना। आप जैसा आदमी कभी हुआ ही नहीं। आप बिल्कुल पहली दफे हुए हो। आप अनूठे हो, एक-एक आदमी बेजोड़ है। एक-एक आदमी के अंगूठे का निशान उसके ही जैसा है, सारी दुनिया में घूमने पर वैसा अंगूठे का निशान नहीं मिल सकता। वैसे ही एक-एक आदमी की आत्मा भी उसके ही जैसी है, वैसी आत्मा कहीं खोजने से नहीं मिल सकती। लेकिन अगर कोई ढांचा बिठाया, तो आत्मा भीतर मरने लगेगी, और ढांचा सब तरफ से काट-छांट करने लगेगा, और धीरे-धीरे भीतर एक लोथड़ा रह जाएगा मांस का, आत्मा नहीं।
यही हो गया है सारी दुनिया में। हम रूढ़ियों में, ढांचों में, पैटर्न में, आइडियालॉजी में, अतीत से, शास्त्रों में बंधे हुए लोग जिंदा नहीं रह गए हैं, मुर्दा हो गए हैं। यह मुर्दापन तोड़ना जरूरी है। इस मुर्दापन के खिलाफ बगावत जरूरी है। इस मुर्दापन को बिल्कुल ही मिटा देना जरूरी है, ताकि जीवन की किरण, जीवन की आशा, जीवन का सपना, जीवन का भाव उदय हो सके। लेकिन हम अपने देश में यह कहते हैं, हम यह कहते हैं कि सिद्धांत तो सत्य हैं, शास्त्र सत्य हैं, ढांचे सत्य हैं, आदर्श सत्य हैं, गलत है तो आदमी है। और मैं आपसे कहना चाहता हूं, आदमी गलत बिल्कुल नहीं है, गलत हैं तो ढांचे हैं, गलत हैं तो सिद्धांत हैं, गलत हैं तो शास्त्र हैं। असल में ढांचे का होना ही गलत है। एक-एक आदमी को बढ़ने दो, उसकी शाखाएं निकलने दो, उसके फूल निकलने दो, उसको पानी दो, खाद दो, लेकिन उसके लिए बंधा हुआ पैटर्न मत दो, ढांचा मत दो; उसे सम्हालो, उसे बढ़ाओ, उसकी रक्षा करो, लेकिन बताओ मत कि शाखा पूरब जाए कि पश्चिम, कि कितनी दूर जाएगी कि न जाए। यह सब मत बताओ, उसको गति दो, प्राण दो, जीवंतता दो; फलने दो, फूलने दो, उसे अपने ही जैसा होने दो। लेकिन नहीं, हम उलटा मानने वाले हैं।
मैंने एक कहानी सुनी है। मैंने सुना है, एक सम्राट अपने महल में बैठा हुआ है, गर्मी के दिन हैं। नीचे एक पंखा बेचने वाला निकलता है। और वह चिल्लाता है, अदभुत पंखे हैं, ऐसे पंखे न कभी देखे गए, न सुने गए। राजा नीचे झांक कर देखता है, उसके पास अच्छे-अच्छे पंखे हैं, और सड़े पंखे बेच रहा है वह गरीब आदमी दो-दो पैसे के। उसे ऊपर बुलाता है और कहता है, पागल हो गया है, इन पंखों में क्या खूबी है? वह कहता है, महाराज, ये देखने में साधारण हैं, बाकी भीतर बहुत असाधारण हैं। राजा ने कहाः पंखे भी भीतर और बाहर, क्या मतलब है तेरा? उस आदमी ने कहाः इन पंखों का दाम सौ रुपया है। ये साधारण

पंखे नहीं हैं। राजा ने कहाः खूबी क्या है? उसने कहाः ये सौ साल चलते हैं। सौ साल की गारंटी है। राजा ने कहाः पागल आदमी, किसको धोखा दे रहा है पता है तुझे? उसने कहाः मालिक, मुझे अच्छी तरह पता है, रोज नीचे पंखे बेचता हूं, आप खरीद लें, अगर गड़बड़ हो जाए मैं जिम्मेवार हूं। रुपये वापस कर दूंगा। सौ रुपये दे दिए गए, पंखा खरीद लिया गया।
दो दिन बाद पंखा टूट गया, पंखा बिल्कुल साधारण था। राजा ने देखा कि वह पंखा वाला निकला है सुबह फिर, धोखा नहीं दे रहा। पंखे वाले को ऊपर बुलाया। पूछा कि कैसा पंखा दिया, दो दिन में टूट गया? उस पंखे वाले ने पंखे को देखा, फिर राजा को देखा और कहा कि महाराज, मालूम होता है आपको पंखा झलना नहीं आता। कृपया कर जरा पंखा झलिए, कैसा झलते हैं? हद कर दी, सौ साल चलने वाली चीज दो दिन में तोड़ दी? राजा ने कहाः तो कसूर मेरा है? क्या मुझे पंखा झलना नहीं आता? उसने कहाः आप पंखा झल कर बताइए। राजा ने पंखा झल कर बताया। वह हंसने लगा, उसने कहाः बस हो गई गलती, यह कोई ढंग है? फिर क्या ढंग है? उसने कहाः पंखे को हाथ से पकड़ कर रखिए और सिर को हिलाइए। पंखा सौ साल चलेगा। पंखा गारंटीड है। आपको पंखा करना ही नहीं आता। पंखे को हिला रहे हैं, पंखा टूट जाएगा।
उस आदमी ने बड़ी ठीक बात कही। यही ठीक बात, हमारे पंडित, पुरोहित, साधु- संन्यासी, नेता कह रहे हैं। वे कह रहे हैं, हमारे पास सिद्धांत तो बिल्कुल ठीक हैं, मानने वाला नहीं मिलता कोई। शास्त्र बिल्कुल सही हैं। कलयुग आ गया, आदमी गलत पैदा हो गया है। हमारे पास बड़े उच्च आदर्श हैं, लेकिन आचरण करने वाले लोग नहीं हैं।
मैं कहता हूं, यह बात गलत है। आदमी बुरा नहीं है, और आदमी किसी युग का बुरा और भला नहीं होता है। न कलयुग होता है, न कोई सतयुग होता है। आदमी की आत्मा सदा एक सी है। आदमी एकदम अच्छा पैदा होता है। आदमी खालिस अच्छा पैदा होता है। लेकिन जो ढांचे हम उस पर थोपते हैं, वे गलत हैं। वे ढांचे गलत हैं, और वे ढांचे आदमी को विकृत करते हैं, और परेशान करते हैं, और तोड़ते हैं, और मोड़ते हैं। और आखिर में आदमी एक विकृति होकर खड़ा हो जाता है। आदमी नहीं रह जाता, सिर्फ एक खंडहर हो जाता है। सारे आदमी खंडहर हो गए हैं। अगर आदमी की आत्मा मुक्त न की जा सकी, तो ये सारे खंडहर पागल हो जाएंगे, ये पागल होते चले जा रहे हैं। इनके सारे जीवन का रस और आनंद खो गया है। सब संगीत खो गया है, सब खो गया है। क्या इसको ऐसे ही बरदाश्त करते चले जाना है या आदमी की आत्मा के लिए नये मार्ग खोजने हैं? नई दिशाएं, नये आकाश, नये आयाम, या कि पुरानी जो पुनरुक्ति थी कल तक उसको ही वापस दोहराए चले जाना है? अगर हम वापस उसी को दोहराए चले गए, तो हम काफी मर चुके हैं, शायद जीवन की आखिरी झलक भी हमारी डूबने को, टूटने को है।
लेकिन ऐसा लगता है कि अब भारत सोचेगा, सोचना शुरू हुआ हैः नई पीढ़ी, नये लोग, नये ख्याल से भरे हैं, नये सपनों से भरे हैं। वे पुनर्विचार करेंगे। वे एक-एक चीज को फिर से परखेंगे। वे देखेंगे कि कहीं पंखा ही तो कमजोर नहीं है? कहीं ऐसा तो नहीं है कि पंखा ही गलत है? गारंटी झूठी है? कहीं ऐसा तो नहीं है कि हमने जो सिद्धांत निर्मित किए हैं वे आदमी को बांधने वाले हैं, मुक्त करने वाले नहीं? हमने जो सिद्धांत निर्मित किए हैं वे आदमी को जड़ बनाने वाले हैं, डायनेमिक, गतिमान बनाने वाले नहीं? कहीं ऐसा तो नहीं है कि हमने जो समाज के लिए धारणा बनाई है वह समाज को मारती है, जिलाती नहीं? कहीं ऐसा तो नहीं है कि हमने जो विश्वास कायम किए हैं वे जीवन को पीछे की तरफ ले जाते हैं, आगे की तरफ नहीं? और जीवन सदा आगे की तरफ जाता है, पीछे की तरफ कभी नहीं जाता है। जो कौम पीछे की तरफ देखती है, वह नष्ट हो जाती है। निरंतर देखना है आगे, और आगे। और निरंतर छोड़ना है पीछे को, ताकि हम आगे जा सकें। पीछे का कदम जब छूटता है तभी आगे का कदम उठता है। पीछे की सीढ़ी छूटती है तब आगे की सीढ़ी मिलती है। लेकिन हम अब तक अतीत को पकड़े बैठे हुए हैं, छाती से लगाए बैठे हुए हैं, सब मरे हुए मुर्दों को छाती पर रखे बैठे हैं।
उन्हें हटाते नहीं। बड़ा डर लगता है।
एक छोटी सी कहानी और अपनी चर्चा मैं पूरी कर दूंगा।

एक गांव है और उस गांव में एक पुराना चर्च है। वह पुराना चर्च गिरने
के करीब आ गया। कोई उस चर्च में जाता नहीं। चर्च के पादरी भी उसके भीतर नहीं जाते हैं, क्योंकि वह कभी भी गिर सकता है। लेकिन गांव में पादरी लोगों को समझाता है कि आओ, प्रार्थना करने आओ। नष्ट हो जाओगे, नास्तिकों कहां जा रहे हो? लेकिन कौन मरने जाए चर्च में? वह चर्च ऐसा डराता है, हवा का झोंका आए गिर सकता है। पादरी भी भीतर नहीं जाता। और पादरी भी मन ही मन सोचता है कहीं उपासक आ न जाएं, नहीं तो भीतर जाना पड़े। समझाता है लोगों को, लेकिन जानता है, न कोई आएगा, न कोई झंझट है। फिर चर्च की कमेटी मिलती है, सोचती है क्या करें? वह कमेटी भी बाहर मिलती है, चर्च के भीतर नहीं। दूर बैठती है जहां चर्च की छाया भी न पड़े। और वह कमेटी विचार करती है, क्या करें? वह कमेटी चार प्रस्ताव करती है। पहला प्रस्ताव करती है कि पुराना चर्च गिराना पड़ेगा, यह हम सर्व-सम्मति से स्वीकार करते हैं। दूसरा, एक नया चर्च बनाना चाहिए, यह भी हम सर्व-सम्मति से स्वीकार करते हैं। तीसरा, हम नया चर्च पुराने जैसा ही बनाएंगे, पुरानी नींव पर ही बनाएंगे, पुरानी ईंटें लगाएंगे, पुराने दरवाजे लगाएंगे, पुराना ही आकार होगा, सब कुछ पुराना होगा, नये चर्च में नया कुछ भी नहीं होगा, सब पुराने सामान को पुराने जैसा ही फिर से जोड़-तोड़ कर खड़ा कर देंगे, कोई कह भी न सके कि यह नया चर्च है, जानने वाले आकर यही कहें कि यह पुराना ही चर्च है। इसे भी सर्व-सम्मति से वे स्वीकार करते हैं। और चौथा प्रस्ताव वे स्वीकार करते हैं कि जब तक नया चर्च बन न जाए तब तक हम कभी भी पुराने को गिराएंगे नहीं।
वह नया चर्च नहीं बनेगा कभी भी, पुराना गिरने वाला नहीं है। ऐसी ही मनोदशा इस देश की है। पुराने को हम गिराएंगे नहीं, नया बनेगा नहीं। पुराने को गिराने की हिम्मत करनी जरूरी है। क्योंकि वही हिम्मत नये के निर्माण की हिम्मत भी बनती है। समाज के संबंध में भी, सभ्यता के संबंध में भी, संस्कृति के संबंध में भी पुराने को गिराने की हिम्मत चाहिए। और अपने संबंध में भी अपने पुराने को, अपने पुराने व्यक्तित्व को, अहंकार को गिराने की हिम्मत चाहिए। जो व्यक्ति अपने पुराने को गिरा देता है वह नया हो जाता है। प्रभु से मिल जाता है। और जो समाज अपने पुराने को गिरा देता है, वह भी नया हो जाता है। और प्रभु के रास्ते पर गतिमान हो जाता है।
धर्म व्यक्ति को भी नया करना चाहता है, समाज को भी। धर्म व्यक्ति को
भी जोड़ना चाहता है सनातन से, सत्य से; समाज को भी, संस्कृति को भी।
हम दोनों ही अर्थों में पिछड़ गए हैं। न धर्म समाज के लिए है, न व्यक्ति
के लिए रह गया है। क्योंकि धर्म पुराने को पकड़ने वाला रह गया है। धर्म चाहिए नित-नूतन, रोज नया, ताजा, जैसे सूरज सुबह उगता, सुबह नये फूल खिलते, ऐसा ही नया-नया रोज सत्य चाहिए। नया सत्य ही रूपांतरण करता है और क्रांति देता है।
इन चार दिनों में इस नये सत्य की खोज के लिए कुछ बातें मैंने कहीं, उन बातों को मान नहीं लेना है। मैं कोई गुरु नहीं, कोई उपदेशक नहीं, कोई पुरोहित नहीं, मैं कोई आप्तवचन देने वाला नहीं, मैं कोई ऑथेरिटी नहीं। अपनी बात मैंने कही, मेरी बात को जो चुपचाप मान लेगा वह मेरा दुश्मन हुआ। मेरी बात को चुपचाप मत मान लेना। सोचना, लड़ना-झगड़ना, विचार करना, तर्क करना, खंडन करना, और जब कोई रास्ता न मिले और मेरी बात में कहीं कोई सत्य दिखाई पड़े, सोच-विचार, चिंतन-मनन, ध्यान, समाधि पर कुछ भी सत्य दिखाई पड़े, तो फिर वह मेरा नहीं रह जाएगा, वह आपके विचार से आता है तो फिर आपका हो जाता है। और जो सत्य आपका है, वही सत्य है। जो सत्य आपका है, वही मुक्त करता है। जो सत्य दूसरे का है, वह बांधता है और जंजीर बन जाता है।

मेरी इन बातों को इन चार दिनों में इतनी शांति, इतने प्रेम, इतने मौन
से सुना, उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।